

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186276

UNIVERSAL
LIBRARY

MANIA UNIVERSITY LIBRARY

H
370.193 Accession No. P. G. H 2421

S535

शर्मा वेदगीमाहाव शर्मा
सामाजिक अध्ययन की

This book should be returned on or before the date
marked below.

दिनांक

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा

['सोशल स्टडीज' पढ़ाने की विधि]

लेखक

वेणीमाधव शर्मा

प्रिन्सिपल, सनातन धर्म कालेज,

बनारस

प्रकाशक

नन्दकिशोर ऐराड ब्रदर्स

बनारस

मिश्रित

[थम बार]

१९५२

[मूल्य २।।)

प्रकाशक—
नन्दकिशोर ऐण्ड ब्रदर्स
बनारस



Checked 1969

मुद्रक—
विश्वनाथ भार्गव
मनोहर प्रेस, जतनवर, बनारस

पुस्तक के विषय में

भारतीय शिक्षा क्षेत्र में सामाजिक अध्ययन की शिक्षा का प्रवेश अभी प्राथमिक अवस्था में है। अभी अनेक विद्यालयों में इस विषय की शिक्षा की व्यवस्था नहीं है और जहाँ है भी वहाँ सामाजिक अध्ययन का विकृत रूप ही सामने आता है। आज हम इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि सामाजिक अध्ययन ऐसी शिक्षा की हमें आवश्यकता है। अध्यापकों के सामने तो बहुत बड़ी समस्या है। आज हमें इस बात से बड़ा असंतोष है कि हम शिक्षालय के कार्य, और युग-धर्म के अनुसार जो विचार धारा प्रवाहित है, उसमें संबंध नहीं स्थापित कर पा रहे हैं। शिक्षालय और जीवन के कार्य में कोई आपसी संबंध नहीं। यह अभाव, यह विशृंखलता, हमें अशांत करती है। यदि हम यह चाहते हैं कि विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधों और वृत्तियों का कार्य भार ग्रहण करने के पूर्व युवक कुछ और अधिक समय तक शिक्षालय में रहें तो हमें या तो शिक्षा की वस्तुओं और पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना होगा या अपने शिक्षा के प्रकार और दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा। संभव है हमें दोनों में परिवर्तन करने की आवश्यकता हो।

किशोरों का शिक्षालय में अधिक समय व्यतीत हो यह कोई बहुत अच्छी बात तब तक नहीं है जब तक हम उनके अधिक समय का उपयुक्त रीति से उपयोग न करें। जहाँ शिक्षा कार्य सामाजिक उपादेय कार्य के अभाव से पीड़ित रहता है वहाँ तो शिक्षा की अवधि बढ़ाने से लाभ के स्थान पर हानि अधिक होगी। इन समस्याओं के कारण हमें शिक्षा की प्राचीन परम्पराओं के संबंध में पुनः विचार करना होगा और हमें यह देखना होगा कि इन परम्पराओं से हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है या नहीं।

यदि एक किशोर, किशोरावस्था की चेतना के अभाव में विकसित होता है और उस स्थिति की बातों को नहीं समझता तो संभव है वह जीवन भर किशोरावस्था के गुणों का अभाव पूरा न कर सके। विद्यार्थियों को उपयुक्त रीति से निरीक्षण, अध्ययन, मनन, आलोचनात्मक दृष्टि से विवेचन करने की शक्ति ही हमें नहीं प्रदान करना है। हमें तो उनमें उस जिज्ञासा का बीज बोना है जिसकी सहायता से वे उच्च कोटि के निरीक्षक, आलोचक और चिंतक हो सकें। शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह शिक्षार्थी को समय की सबसे बड़ी समस्या—जीवन यापन की समस्या—के संबंध में मार्ग प्रदर्शन करे। जब तक शिक्षा विद्यार्थी को जीवन यापन की कला की शिक्षा नहीं देती तब तक वह अपने ध्येय की, अपने आदर्श की, और अपने लक्ष्य की, पूर्ति नहीं कर सकती।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि मनुष्य का मस्तिष्क उपयुक्त पोषण तत्व प्राप्त करता रहता है तो कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसका निरन्तर विकास न होता रहे। यदि मनुष्य के मस्तिष्क को पोषण तत्व से विहीन रखा जायगा तो संसार की कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसका ध्वंस न हो जाय। अतः हमें समाज के एक सजग प्रहरी के समान मनुष्य के मस्तिष्क के लिए पोषण तत्वों की व्यवस्था करनी होगी।

यदि किसी शिक्षालय के प्रश्न पत्रों को उठाकर आज हम देखें तो हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि उन प्रश्न-पत्रों में संभवतः एक दो प्रश्न ही ऐसे होंगे जिनका संबंध हमारे दैनिक जीवन से है। जितनी ऊँची कक्षाओं के प्रश्न-पत्रों को हम देखें उतना ही वे हमारे जीवन से पृथक् होते जाते हैं। उनका साधारण जीवन से उतना ही अधिक संबंध विच्छेद होता जाता है। कक्षा में आप को अनेक ऐसे विद्यार्थी मिलेंगे जिन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य, शेरशाह, अकबर आदि की शासन व्यवस्था के संबंध में बहुत कुछ पढ़ा है, बहुत कुछ सुना है, परन्तु यदि उनसे आज की शासन व्यवस्था के संबंध में कुछ पूछें तो वे मुँह ताकने

लगेगे । उन्हें संभवतः यह भी शत न होगा कि उनके नगर की शासन व्यवस्था किसके हाथ में है ? वे यह जानते हैं कि द्रविण जाति और आर्य जाति के लोग किस तरह जीवन यापन करते थे परन्तु उन्हें यह शत नहीं है कि हम किस प्रकार जीवन यापन करते हैं ।

संभव है शिक्षा की व्यवस्था करने वाले शिक्षा-शास्त्रियों ने बालकों के जीवन-भवन का निर्माण करने के लिए गहरी नींव की व्यवस्था की हो लेकिन हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभिक अवस्था के संबंध में हमारी धारणाएँ ही अशुद्ध हैं । संभव है हमारे जीवन-यापन की परम्परा, हमारे विचारों की शृंखला की प्रथम कड़ी, चन्द्रगुप्त मौर्य अथवा अकबर के समय में प्रारंभ हुई हो, परन्तु हमें तो उस कड़ी का ज्ञान पहले होना चाहिये जो हमारे सामने है, जो हमारे हाथ में है । अतः इतिहास अथवा भूगोल की शिक्षा की व्यवस्था करने वाले शिक्षा शास्त्रियों को भी इनकी शिक्षा उसी स्थान से देनी होगी जहाँ से हमारा जीवन प्रारंभ होता है । हमारा जीवन बीसवीं शती में व्यतीत हो रहा है । अतः हमें पहले बीसवीं शती की बातों का जानना आवश्यक है । वे शिक्षा सिद्धान्त अब पुराने हो चुके जो 'शत से अशत की ओर' जाने की बातें किया करते थे । इस लिए हमारी शिक्षा इतिहास के उन धुंधले रूपों से नहीं प्रारंभ होनी चाहिये जो गौतम बुद्ध अथवा शंकराचार्य की बातों का बखान करते हैं । हमें तो अपना कार्य अपनी शिक्षा, अपने समय, अपने युगधर्म की, पीठिका पर प्रारंभ करनी चाहिये । हमें अपने जीवन-यापन की शिक्षा का प्रारंभ अपने युग के महापुरुषों के आधार पर करना चाहिये ।

हमारे तर्क की आलोचना हो सकती है यह हम स्पष्ट रूप से समझते हैं । हम यह भी अनुभव करते हैं कि कुछ शिक्षा शास्त्री ज्ञान की पीठिका और शिक्षा की पुष्ट नींव देने की बातें कहेंगे और यह भी दलील वे सामने रख सकते हैं कि हमें अपनी परम्पराओं से लाभ उठाना चाहिये तथा इन परम्पराओं द्वारा गहरी नींव दी जा सकती है । उनसे

हमारा यह विनम्र निवेदन है कि पिछली दो शतियों का इतिहास हमें यह कहने के लिए बाध्य करता है कि हम गहरी नींव देने में इतने व्यस्त रहे हैं और इस कार्य में हमने इतना समय व्यय किया है कि भवन-निर्माण के लिए हमारे पास समय ही नहीं बच सका। हम जिस भवन के निर्माण के लिए ढड़ नींव की व्यवस्था करते रहे हैं उस भवन का निर्माण अब तक न हो सका। वह नींव आज तक ऊपर न आ सकी। इन सब प्रयत्नों का परिणाम रहा है, निराशा और अपूर्णता।

शिक्षालयों में कार्य करते समय केवल पैतृक परम्पराओं पर विचार करना मात्र पर्याप्त नहीं होता। हमें दृष्टि खोलकर अपने भावी युग की रूपरेखा का भी ज्ञान प्राप्त करना होगा। जब तक हमारे वर्तमान का भूतके अनुभवों, और भविष्य की संभावनाओं के साथ सम्पर्क न होगा तब तक हमारा वर्तमान सुखद न होगा।

शिक्षालय के कार्यों और वातावरण के प्रति ही यह असंतोष हो, यह बात नहीं। आज एक साधारण नागरिक भी जीवन की स्थितियों से असंतुष्ट है। वह अभावजन्य कटुता, युद्धों की विभीषिका, हिंसा का युद्ध, देख रहा है, उसमें योग दे रहा है परन्तु उसे यह ज्ञान नहीं है कि वह यह सब क्यों करता है, और इसका उसके लिए क्या परिणाम होगा। कभी-कभी वह यह अनुभव अवश्य करता है कि यदि उपयुक्त शिक्षा उसे दी गयी होती तो वह संभवतः इन कार्यों को और भी अच्छी तरह करता। आज का सामाजिक चेतना युक्त प्राणी इस बात से अत्यधिक असंतुष्ट है कि लोक-प्रिय विचार धारा की बलि देकर संघटनात्मक परिवर्तन उत्पन्न किये जा रहे हैं। वे यह देखते हैं कि आज का संघटन नियंत्रण, केन्द्रीकरण, आदेशों आदि पर आधारित है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का नियंत्रण, केन्द्रीकरण, व्यक्ति को उत्तरदायित्व की भावना से दूर रखते हैं। ऐसी स्थितियों में एक व्यक्ति अपना कुछ भी उत्तरदायित्व नहीं समझता। ये समाज शास्त्री यह भी अनुभव कर रहे हैं कि जीवन की जटिलता के कारण जनता में यह भावना न उत्पन्न हो जाय

कि समाज की व्यवस्था हमारी शक्ति के बाहर है और अब समाज की व्यवस्था का कार्य केवल राजनीतिशों का ही काम है। ऐसी विषम स्थितियों में व्यक्ति समाज के हित की चिंता से विमुक्त होकर केवल वैयक्तिक अथवा अपने हित की बात ही सोचने लगेगा। इसका यह भी परिणाम होगा कि हम जनता के राज्य की अथवा राम राज्य की जो कल्पनाएँ करते हैं वह केवल रोटी और कपड़े की समस्या हल करने में ही समाप्त हो जायँ।

उस युग में जिसमें व्यक्ति को और वैयक्तिक निधि को महत्व था, व्यक्तिगत लाभालाभ की बातों को महत्व देना बुरा नहीं था। समाज का संघटन भी कुछ वैयक्तिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ था। परन्तु इस प्रकार के वैयक्तिक सिद्धान्त किसी विशेष सामाजिक प्रसंगों में ही उपयुक्त समझे जाते थे। परन्तु युग की चेतना और समय की पुकार ने, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों ने, आज हमें इस बात के लिए बाध्य किया है कि हम अपने व्यक्तिगत हिताहित और लाभालाभ की भावनाओं को छोड़ कर प्रबुद्ध हों और समाज के लिए अपने कुछ हितों का त्याग करें। सर्वभूत हितैरतः की भावना पहले चाहे रही हो। परन्तु इधर कुछ दिनों से केवल अपने ही हित में रत रहने की भावना ही सर्व प्रधान हो गयी है। इसका कारण यह है कि हमारा धर्म पर से विश्वास उठ चुका है और धर्म के द्वारा हमारे जीवन का जो संघटन था वह छिन्न-भिन्न हो चुका है। अतः आज कुछ ऐसी शक्तियों की खोज होना स्वाभाविक है जो हमें जीवन-यापन के लिए समाज और देश की व्यवस्था बनाये रखने के लिए संघटित रख सकें। सामाजिक अध्ययन द्वारा हम इसी संघटन की भावना उत्पन्न करना चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति इतना प्रबुद्ध हो जाय कि वह उन साधारण हितों और बंधनों को समझ सके जिसके कारण हम एक साथ रहते हैं, एक साथ विचार करते हैं।

कोई युग था जब कि नीति और भावुकता के कारण लोगों के हृदय

में वसुधैव कुटुम्बकता की भावना उत्पन्न हुई थी। संभव है उस समय धर्म के भय के कारण सौहार्द की भावना व्याप्त रही हो परन्तु आज तो इस वसुधैव कुटुम्बकता की भावना का आधार हमारी आर्थिक वास्तविकता है। यदि हम आज सामाजिक सौहार्द की उपेक्षा करते हैं तो इसके द्वारा हम अपना ही सर्वनाश करते हैं।

सामाजिक विषमता, और आर्थिक संकट की अनुभूति प्राप्त होने पर, और उनके शिकार बने रहने पर भी, हम सामाजिक सौहार्द के पाठ को बड़े मंद गति से पढ़ रहे हैं और इस क्षेत्र में हमारी प्रगति बड़ी ही मंद है। आज हम गहियों पर बैठ कर उन राजनीतिक चक्रों पर बड़ी गंभीरता के साथ विचार करते हैं जो विश्व को दो दलों में बाँट कर युद्ध कराने का प्रयत्न कर रहे हैं, आज हम इन साधनों पर भी कभी-कभी विचार कर लेते हैं जिनके द्वारा विश्व की संहारक शक्तियों पर नियन्त्रण रखा जा सके। परन्तु हमारे पास आर्थिक बातों पर सामाजिक नियन्त्रण रखने अथवा सफलता प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन उत्पन्न करने का समय नहीं है।

हमारे सामने जो संस्थाएँ हैं अथवा जो भी संघटन हैं उनकी विचार-धारा की जड़ें अठारहवीं अथवा उन्नीसवीं शती में स्थित हैं और हमारे सामने ऐसे व्यक्ति हैं जो सामाजिक संघटन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते। वे आज भी व्यक्तिगत आधार पर सब बातें सोचते और समझते हैं। वे धैर्यपूर्वक यह नहीं देखना चाहते कि उनके व्यक्तिगत कार्य का क्या सामाजिक महत्व है अथवा उनका व्यक्तिगत कार्य समाज का कितना हित करता है। वे इस शती की प्रगति से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं और उन्हें इस समय की प्रगति में किसी प्रकार की रुचि नहीं है। इन्हीं सब कठिनाइयों का यह फल है कि आज भी घृणित प्रचार और गंदी गालियों से युक्त बातों के सामने तर्कयुक्त बातें नहीं ठहर पाती और दलबन्धियों की रक्षा और उनका हित सत्य से भी ऊपर रहता है।

शिखा प्रणाली और समाज, जिसका शिखा एक अंग है, उसके

संबंधों के विषय में दृढ़ बराबर लोग अपने विचार व्यक्त करते रहे हैं। शिक्षा के लिए प्रयोग में आनेवाली वस्तु और प्रणाली का समाज के आदर्शों के अनुरूप निर्माण और उपयोग होता है। विभिन्न राष्ट्र के लोगों ने इसी रूप में शिक्षा की सामग्री और प्रणाली का उपयोग किया भी है परन्तु अब समय बदला है। हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी शिक्षा सामग्री और प्रणाली पर पुनः विचार करें। भावी युग की आवश्यकताओं को देखते हुए हमें अपनी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। इस पीढ़ी के युवकों के सामने आगे चलकर अनेक समस्याएँ उठेंगी। हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उन्हें इस प्रकार की शक्तियाँ प्रदान कर दें जिससे वे अपने समय की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

शिक्षालय के पाठ्यक्रम में तब तक किसी नये विषय का आगमन नहीं होता जब तक बाहरी दुनिया को उसकी आवश्यकता न हो अथवा जब तक बाहरी दुनिया का दबाव नहीं पड़ता। कुछ लोग भले ही यह कहें कि योग्य शिक्षा शास्त्रियों की चिंतना के फलस्वरूप नये विषयों का उपयोग शिक्षालय में होता है, परन्तु हम यह नहीं सोचते कि ये शिक्षाशास्त्री भी तो समय की आवश्यकता समझकर कोई नवीनता उत्पन्न करना चाहते हैं। वे अपने कार्य में अधिकतर सफल भी इसलिए होते हैं कि उनकी विचारधारा समय के दृष्टिकोण से मेल खाती है। सार्वजनिक शिक्षा कोई दैवी प्रसाद नहीं है अथवा किसी की उदारता के कारण सार्वजनिक शिक्षा का रूप नहीं विकसित हुआ है। इस सार्वजनिक शिक्षा के भी अनेक कारण थे। जीवन में अनेक प्रकार के कार्यों की विविधता, व्यापार, उद्योग-धंधों के कार्य संचालन के हेतु और उनका लेखा-जोखा रखने के लिए शिक्षा का इतनी तीव्र गति से प्रसार और प्रचार हुआ है। हम इन आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। अतः शिक्षा का सार्वजनिक रूप सामने आया। लेकिन यह रूप केवल 'लेखक' उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। इस शिक्षा के द्वारा इसके अतिरिक्त कोई रचनात्मक कार्य नहीं हो सकता है।

जिस प्रकार उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में 'लेखकों' की आवश्यकता ने शिक्षा के प्रसार में योग दिया उसी प्रकार बीसवीं शती की कुछ आवश्यकताओं ने हमें बाध्य किया है कि हम शिक्षा की सामग्री और प्रणाली के संबंध में पुनः विचार करें और अपनी नीति को बदलें । आज हमारे देश में लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की स्थापना हो रही है । सम्पूर्ण देश लोकतंत्रात्मक भावना का वास्तविक रूप समझने के लिए संघर्ष कर रहा है । आज हम इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि यदि लोकतंत्रात्मक व्यवस्था को सफल बनाना है तो हमें अधिक विचारवान और प्रबुद्ध व्यक्तियों की आवश्यकता होगी जिससे उपयुक्त रीति का जनमत उत्पन्न किया जा सके ।

हमें इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी कि लोकतंत्रवाद की नींव हिलानेवाले अनेक वाद किसी प्रकार पनप न सकें । लोकतंत्रवाद की स्थापना सच्चे रूप में तब होगी जब प्रत्येक व्यक्ति उसके महत्व को, उसके प्रति अपने कर्तव्य और अधिकार को, ठीक से समझ सके । और वादों की तरह लोकतंत्रवाद लादा नहीं जा सकता । यदि इसे हम ऊपर से लादकर निश्चित हो गये तो निश्चित है कि एक न एक दिन विप्लव होगा और हमारी सब योजनाएँ खटाई में पड़ जायँगी ।

राष्ट्रिय आधार पर जब उद्योगों और व्यापारों का संघटन होता है तब संघटन और उसके संचालन की व्यवस्था किसी व्यक्ति विशेष अथवा समूह विशेष के हाथ में नहीं रह जाती । ऐसी स्थिति में तो अनेक प्रकार के सहयोग समितियाँ ही कार्य का संचालन करती हैं । जब इस प्रकार के कार्य का हमें संचालन करना होगा तब हमें उसी प्रकार की मनोवृत्ति की शिक्षा भी देनी होगी । यदि हम इस प्रकार की शिक्षा न देंगे तो व्यक्तिगत स्वार्थ को ध्यान में रखनेवाले लोग राष्ट्रिय कार्यों को आगे न बढ़ने देंगे । जीवन के स्तर को ऊँचा करने के लिए राष्ट्रिय आधार पर ही हमें कार्य करना होगा ।

विज्ञान की प्रगति के कारण आज सामाजिक धारणाओं में बड़ा

अन्तर उत्पन्न हो गया है । आज इस बात की माँग हो रही है कि प्रत्येक बच्चे को उसके स्वभाव, उसकी अभिरुचि और उसकी योग्यता के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाय । इसके कारण अनेक प्रकार के शिक्षालयों का जन्म आवश्यक होगा । आज लोकतंत्रवाद की सैद्धान्तिक शिक्षा के स्थान पर व्यावहारिक शिक्षा की माँग अधिक हो रही है । यह भी सत्य है कि जब तक व्यवहार पद्धत शून्य रहेगा तब तक केवल सिद्धान्तों के अध्ययन अध्यापन द्वारा लोकतंत्र में विश्वास करनेवाला व्यक्ति नहीं उत्पन्न किया जा सकता । आज हम ऐसी शिक्षा की कल्पना करते हैं जिसमें सक्रिय रूप से विद्यार्थी के सहयोग की भी आवश्यकता है । अपनी शिक्षा के संबंध में उन्हें भी निर्णय करना है ।

जब हम बालकों को, शिक्षार्थी को, यह स्वतंत्रता प्रदान करते हैं तब हम उन्हें असीम स्वतंत्रता प्रदान करने की बात कह रहे हैं । इस प्रकार की स्वतंत्रता देकर हम अध्यापक के अधिकारों को छीनने की बात भी नहीं कह रहे हैं । हमारा केवल यही मन्तव्य है कि शिक्षक और शिक्षार्थी जो भी कार्य करें उसकी ऐसी प्रणाली होनी चाहिये कि विभिन्न प्रकार के विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के कार्य करने का अवसर मिल सके ।

हम यह नहीं चाहते कि हमारी शिक्षा का विशाल क्षेत्र केवल पुस्तकीय ज्ञान के कुछ पृष्ठों तक ही सीमित हो जाय । हम यह चाहते हैं कि हमारे अध्यापकों और विद्यार्थियों को जीवन का दर्शन करने का अवसर मिल सके और वे ज्ञान तथा जीवन के संबंध में स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग कर सकें । इस प्रकार की व्यवस्था द्वारा ही हम अपनी शिक्षा के सुखद भविष्य की कल्पना कर सकते हैं ।

भविष्य में हम ऐसे शिक्षालयों की कल्पना करते हैं जिनकी व्यवस्था और जिनके कार्य संचालन की सारी क्रियाएँ लोकतंत्रवादी सिद्धान्तों पर आधारित होंगी और जिन्होंने लोकतंत्रात्मक विचारधारा की जड़ों का सम्बन्ध के साथ सिंचन किया हो । हम भविष्य में ऐसे शिक्षालयों की स्थापना चाहते हैं जो बालकों की अभिरुचि, बालकों की आवश्यकता को महत्व

(औ)

देते हैं और जो मनुष्य के संतुलित विकास में योग देते हैं । हम उन शिक्षालयों का सुखद रूप सामने देख रहे हैं जो सजीव अनुभूतियों पर आधारित होंगे और जिनके पाठ्यक्रम में व्यवहार और सिद्धान्त दोनों का समन्वित रूप विकसित होगा । हमारी यह धारणा है कि भविष्य के शिक्षालयों को नवयुवकों को वह शक्ति प्रदान करनी होगी जिसकी सहायता से वे शिक्षालय से निकलने पर साहसपूर्वक जीवन का सामना करें और अज्ञेय को ज्ञेय रूप प्रदान कर सकें ।

इन आदर्शों और कल्पनाओं के साथ हम ज्ञान को उस नये दृष्टिकोण से देखना चाहते हैं जो उसका पूर्ण तथा सार्थक रूप हमारे सामने उपस्थित करे । हमारी क्या आवश्यकताएँ हैं उनको हमने संक्षेप में निवेदन किया है । अब इन आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होगी और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के क्या संतोषप्रद साधन हैं उन पर हमें विचार करना होगा । 'सामाजिक अध्ययन की शिक्षा' उन्हीं साधनों पर विचार करती है । ये साधन कहाँ तक हमें अपने ध्येय के समीप पहुँचाने में समर्थ होंगे इसका निर्णय तो पाठक अथवा सामाजिक क्षेत्र में कार्य करनेवाला कार्यकर्ता ही कर सकता है

होली, १९५२ ।

वेणीमाधव शर्मा

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
पहला अध्याय—सामाजिक अध्ययन की रूप-रेखा	१
सामाजिक अध्ययन का अर्थ—सामाजिक अध्ययन का शैक्षिक महत्व ।	
दूसरा अध्याय—सामाजिक अध्ययन के उद्गम	११
स्थिति में परिवर्तन होने के कारण—प्राचीन और अर्वाचीन समय के जीवन में अन्तर—असम्बद्ध विषयों की शिक्षा से हानि—शिक्षालय का उपयुक्त पाठ्यक्रम—पुस्तक ही सब कुछ नहीं—समस्याओं के समाधान की क्षमता का प्रश्न—अनुचित स्पर्धा से हानि—वैयक्तिक और सामूहिक जीवन—सामाजिक अध्ययन एक बरदान—सामाजिक अध्ययन के विरुद्ध दलीलें—सहजता और उदारता की आवश्यकता—नये और पुराने शिक्षा-क्रमों के प्रयोग ।	
तीसरा अध्याय—साधारण और विशेष प्रकार की शिक्षा	२७
सामाजिक अध्ययन तथा अन्य विषयों का समन्वय—सामाजिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण ध्येय—वसुधैव कुटुम्बकता की भावना—जीवन और क्रियाशीलता का संबंध—आत्माभि व्यक्ति का महत्व—सामाजिक अध्ययन का क्रियात्मक रूप ।	
चौथा अध्याय—जीवन में प्रेरणा का महत्व	४१
प्रेरणा उत्पन्न करने के मान्य साधन—दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता—प्रेरणा प्रदान करने के कुछ साधारण साधन—सामाजिक अध्ययन की प्रमुख विशेषता—हमारा	

वातावरण और प्रेरणाएँ—उपहास और असफलताओं से बचने के साधन—सामाजिक-अध्ययन के पाठ्यक्रम की विशेषताएँ ।

पाँचवाँ अध्याय—प्रेरणा उत्पन्न करने के प्रकार ५७

सामयिक बातों को महत्व दें—बालकों को रुचि की वस्तुएँ—विकास क्रम का उपयोग—असाधारण तथा चकाचौंध पूर्ण बातों का महत्व—वैयक्तिकता का सतर्कता पूर्ण उपयोग—शिक्षालयों का उचित सहयोग—इन बातों का ध्यान रखें—सम्पूर्ण जीवन का ध्यान रखना आवश्यक ।

छठवाँ अध्याय—असीम क्षेत्र में निश्चित ध्येय का निर्णय ७१

जिज्ञासा की पूर्ति की आवश्यकता—शिक्षालय का कृत्रिम वातावरण—आत्मीयता और प्रश्नों का महत्व—निर्जीवता और शुष्कता के पक्ष की विचित्र दलील—दो महत्वपूर्ण मानवीय तत्व—निश्चित ध्येय की आवश्यकता—हमारे ध्येय का स्पष्टीकरण—विश्लेषण और संश्लेषण—सामग्रियों के उपयोग का उचित रूप ।

सातवाँ अध्याय—अध्यापक का कार्य और उत्तरदायित्व ९१

शिक्षक की स्थिति में परिवर्तन—उपयुक्त पुस्तकालयों का होना आवश्यक—मार्ग-प्रदर्शन का कार्य सरल नहीं—कौन सा अध्यापक उपयुक्त होगा—दलील का दूसरा पक्ष—मानव बुद्धि की विशेषता—पृथक्करण दूर करने के उपाय ।

आठवाँ अध्याय—सामाजिक अध्ययन की प्रारंभिक योजनाएँ १०७

पाठ्यक्रम निर्माण में सतर्कता की आवश्यकता—पाठ्यक्रम की विषय सूची को व्यावहारिक रूप प्रदान करना—दो भिन्न सीमाओं में संबंध स्थापन—शैक्षिक ध्येय के विस्तार की आवश्यकता का कारण—व्यक्ति नहीं सामाजिक व्यक्ति का

महत्त्व—वातावरण तथा स्थान से संबंध—देश के साथ संबंध—संस्कृति और धर्म के साथ संबंध—जीवन और समाज से संबंध—आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक वस्तुओं से संबंध—मनुष्य की संस्कृति का भौतिक जीवन से संबंध—मनुष्य का विभिन्न प्रकार के कार्यों से संबंध—मनुष्य का समाज से संबंध—योजनाओं को व्यवहारिक रूप प्रदान करना—शिक्षा का व्यवहारिक रूप—विनय युक्त स्वतन्त्रता का उपयोग—सफलता की परीक्षा के उपाय—समय और क्षमता के अनुसार शिक्षा का प्रबंध—सामाजिक अध्ययन प्रारंभ करने का समय—सक्रिय कार्यों की प्रधानता—आकस्मिक परिवर्तन हानिकर होगा ।

नवाँ अध्याय—कक्षा में योजना का व्यावहारिक रूप १३८

कार्य की प्रथमावस्था—क्षेत्र का अध्ययन—कार्य की द्वितीयावस्था—कार्य निर्धारण—कार्य की तृतीयावस्था—अनुसंधान तथा अन्वेषण—कार्य की चतुर्थावस्था—विचार विनिमय—कार्य की पंचमावस्था—संकलन और अंकन—कार्य की षष्ठावस्था—पर्यवेक्षण—कार्य की विभिन्न अवस्थाएँ—योजना की प्रथमावस्था का विश्लेषण—वातावरण का सुखद प्रभाव—आलोचना की आवश्यकता नहीं—द्वितीयावस्था का विश्लेषण—सहयोगी कार्यों की प्राथमिक स्थिति—तृतीयावस्था का विश्लेषण—पर्यटन और यात्राओं की उपयोगिता—चतुर्थावस्था का विश्लेषण—पंचमावस्था का विश्लेषण—षष्ठावस्था का विश्लेषण ।

दसवाँ अध्याय—आकृतिक प्रणाली का उपयोग १५९

सामाजिक अध्ययन के लिए आकृतियों का प्रयोग—आकृतियों का प्रयोजन—आकृतिक प्रणाली और लिखने की प्रणाली में अन्तर—आकृतिक प्रणाली लिखने के कार्य का स्थानापन्न

नहीं—आकृतिक प्रणाली की प्रारंभिक व्यवस्था—आकृति निर्माण के साधारण नियम—आकार के अनुरूप स्थान का उपयोग—सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग—आकृति निर्माण में ज्यामिति का प्रयोग—वर्णों का उपयोग—आकृतियों के प्रकार ।

ग्यारहवाँ अध्याय—सामाजिक अध्ययन की विस्तृत योजनाएँ १७२
सचित्र पुस्तकों की आवश्यकता—सामाजिक कार्यों के उदाहरण—व्यक्ति द्वारा अपना अध्ययन—व्यक्ति द्वारा क्रिया शक्ति का विकास—व्यक्ति का जीवन संघर्ष—व्यक्ति द्वारा चरित्र निर्माण का यत्न—व्यक्ति का पारिवारिक जीवन—परिवार के लिए सुरक्षा की आवश्यकता—परिवार का भरण पोषण—परिवार का सामाजिक रूप—पास पड़ोस की भावना का विकास—मनुष्य द्वारा पड़ोस की व्यवस्था—मुहल्ले के जीवन का अध्ययन—पड़ोसियों का सामाजिक जीवन—राष्ट्र और राष्ट्रिय जीवन—राष्ट्र का प्राकृतिक साधनों से संबंध—राष्ट्र-निर्वाह-जनता की व्यवस्था—राष्ट्र की परम्परा और संस्कृति—एशिया महाद्वीप का अध्ययन—एशिया के लोगों द्वारा अपनी भूमि का विकास—विभिन्न राष्ट्रों से सौहार्द्रपूर्ण संबंध—विश्व का अध्ययन ।

बारहवाँ अध्याय—कुछ बातें परीक्षा के संबंध में भी १९१
परीक्षा की व्यवस्था क्यों—परीक्षा का विषय क्या है—परीक्षा का रूप क्या हो—अशुद्धियाँ रेखांकित करने की प्रणाली—समस्यात्मक स्थिति प्रणाली—काल्पनिक योजना प्रणाली—क्यों और कैसे प्रणाली—सामाजिक समस्या प्रणाली ।

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा

पहला अध्याय

सामाजिक अध्ययन की रूप-रेखा

किसी देश का जब संक्रमण काल होता है तब अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, और शैक्षिक, सब क्षेत्रों के मानदण्डों में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। हमारे देश में भी आज ये कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं। उपयुक्त और योग्य शिक्षकों का अभाव, शिक्षण विधियों की असमर्थता, स्थान और साधन के अभाव तो ये ही, आज इनके अतिरिक्त भी शिक्षा में हम एक ऐसी कमी का, एक ऐसे अभाव का, अनुभव कर रहे हैं जिसको हम ठीक से व्यक्त नहीं कर पाते। शिक्षण संबंधी अनेक प्रयोग और विधान आज अक्षम सिद्ध हो रहे हैं। इस समय लोगों की यह मनोवृत्ति हो गयी है कि कम से कम परिश्रम के द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठाया जाय। विद्यार्थी अपने विद्यालयों से बहुत-सी बातों की अपेक्षा करते हैं लेकिन किसी कार्य को जमकर दृढ़ता पूर्वक करने से दूर भागते हैं। इसका फल यह होता है कि शिक्षा का आज कोई सर्वमान्य निश्चित मानदण्ड और स्तर नहीं निश्चित किया जा सकता है।

शिक्षा की निश्चित योजनाएँ, पाठ्यक्रम का सुचारु रूप से संचालन, और अध्यापक की अध्यापन संबंधी योग्यता भी आज वह परिणाम नहीं उत्पन्न करती जिसकी हम आशा करते हैं। बौद्धिक स्तर की हीनता इतनी अधिक बढ़ती जा रही है कि किसी भी संस्था द्वारा शत-प्रतिशत क्या पचास प्रतिशत भी योग्य नागरिक उत्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अध्ययन की ओर लोगों की रुचि ही नहीं है। अध्यापकों को भी अध्ययन और अध्यापन से जो संतोष प्राप्त होता था

वह आज नहीं हो रहा है, क्योंकि वे सदा सशंक रहते हैं और वे कभी इस बात के लिए आश्वस्त नहीं रहते कि उनके अध्ययन-अध्यापन का वही फल प्राप्त होगा जिसकी वे कामना कर रहे हैं।

इस प्रकार की अव्यवस्था और मानदण्ड-हीनता अपरिहार्य है। इसके कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं। संसार का गति-चक्र तथा उसके कारण हमारे देश में हुई क्रान्तियों ने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि उस स्थिति के स्तर तक आने का हम निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। हम अभी समय से और स्थिति से बहुत पीछे हैं अब हमारी दान्ताविक स्थिति तथा अपेक्षित स्थिति के बीच खाई उत्पन्न हो गयी है। हमारे निरन्तर परिवर्तनशील समाज और हमारी संकीर्ण संस्थाओं के बीच गहरी खाई उत्पन्न हो गयी है। आज की संस्थाएँ पुराने मानदण्डों पर प्राश्रित हैं, उनमें परिवर्तनशील और प्रगतिशील समाज के साथ चल सकने और उन्हें शिक्षित करने की क्षमता नहीं रह गयी है। हमारे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक सभी संस्थाओं में यह कमी उत्पन्न हो गयी है। आज इन संस्थाओं द्वारा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। आज की विधान निर्माण करनेवाली संस्थाएँ भी समाज की प्रगति के साथ कदम में कदम मिलाकर नहीं चल पा रही हैं। शिक्षा का क्षेत्र भला ऐसी स्थिति में कैसे अछूता रह सकता था। शिक्षा क्षेत्र में भी वही कठिनाई है और यह कठिनाई हमारी उपेक्षा के कारण निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज शिक्षा क्षेत्र में भी गहरी खाई दीख पड़ती है। आज शिक्षा और जीवन में कोई सामञ्जस्य नहीं रह गया है। यदि जीवन पूर्व की ओर जा रहा है तो शिक्षा पश्चिम की दिशा को जा रही है। यह स्थिति भयंकर से भयंकरतर होती जायेगी यदि इसकी उचित व्यवस्था न की गयी।

जब तक शिक्षा और जीवन की अनुभूतियों का सामञ्जस्य न किया जायगा, जब तक शिक्षा और ज्ञान को जीवन के क्षेत्र की वस्तु नहीं बनाया जायगा, तब तक अव्यवस्था की स्थिति रहेगी और छात्रों का

सामाजिक अध्ययन की रूप-रेखा

सहयोग अध्यापकों के साथ न होगा। इस कमी के कारण छात्र निरन्तर अपने शिक्षकों के साथ असहयोग करेंगे। यह समझना कि शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ाने, उनकी अवस्था सुधारने, उनमें आवश्यक और उपयोगी साधनों के एकत्र कर देने, संस्थाओं के शिक्षार्थियों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने, तथा अध्यापकों की संख्या बढ़ा देने मात्र से यह कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी, यह ठीक नहीं। ये बातें महत्वपूर्ण हैं परन्तु इनके द्वारा केवल पाठ्यक्रम और शिक्षार्थी में घनिष्ठ संबंध स्थापित किया जा सकता है। ये वे साधन हैं जिनके द्वारा पाठ्यक्रम का समाज की महत्वाकांक्षा से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। लेकिन इनके द्वारा नयी स्थिति नहीं उत्पन्न की जा सकती। इनके द्वारा जीवन और शिक्षा के बीच जो खाई उत्पन्न हो गयी है उसे दूर नहीं की जा सकती। इस विपमता को दूर करने के लिए हमें अपने पाठ्यक्रम और शिक्षा के ध्येय के संबंध में पुनः विचार करना होगा। इस खाई को पाटने के लिए हमें शिक्षा के दृष्टिकोण को नयी दृष्टि, नयी भावना से देखना होगा। जब तक इसमें हम आमूल परिवर्तन नहीं करते तब तक खाई को दूर नहीं कर सकते। शिक्षा के कार्य के संबंध में नया दृष्टिकोण निश्चित हो जाने के बाद ही हम अपने पाठ्यक्रम को जीवन के साथ सम्बद्ध कर सकते हैं।

परिवर्तन, आकर्षणशील होता है। उसका संबंध हमारी अनेक आशाओं से होता है लेकिन, केवल नूतनता के लिए परिवर्तन से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक संभावनाएँ हैं। संभव है इस प्रकार की अव्यवस्थित नूतनता से हमारी असफलता और निराशा में अधिक वृद्धि हो। हमें परिवर्तन का स्वागत करना चाहिये लेकिन ये परिवर्तन रचनात्मक तथा उपयुक्त रीति के होने चाहियें। हमें सार्थकता और औचित्य का निरन्तर ध्यान रखना होगा।

सामाजिक अध्ययन हमारी उन संकीर्ण भावनाओं के परिवर्तन के संबंध में कुछ सुझाव रखने का यत्न करेगा, जिनकी सहायता से

शिक्षा पद्धति हमारे सामाजिक क्षेत्र का कार्य और भी सुचारु रूप से कर सके तथा जीवन से उसका जो संबंध विच्छेद हो गया है वह दूर किया जा सके। हम कुछ ऐसी बातें शिक्षा के संबंध में निवेदन करना चाहेंगे जिनकी सहायता से शिक्षक अपनी वृत्ति और अपने कार्य के लक्ष्य और ध्येय को और भी अधिक अच्छी तरह समझ सकें और उन पर दृढ़ता के साथ जमे रहें। हम कुछ ऐसे सुझाव सामने रखना चाहेंगे जिनकी सहायता से छात्रों को वह शक्ति प्राप्त हो जाय जिससे वे और भी अधिक तत्परता और इच्छा के साथ अपने अध्यापकों के कार्य में हाथ बटायें और उनके साथ पूर्ण सहयोग कर जीवन और शिक्षा के रचनात्मक विकास का एक क्षेत्र निर्मित करें।

सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा संबंधी योजनाओं को प्रेषित करना हमारा ध्येय नहीं है। हमारा ध्येय तो केवल यह है कि यदि उपयुक्त रीति से निर्मित सामाजिक अध्ययन की शिक्षा-व्यवस्था की जाय तो उसकी सहायता से आज का किशोर संसार में क्या कर सकता है और उसे इस प्रकार के अध्ययन से क्या लाभ होगा। एक जीवन की यात्रा के लिए तैयारी करनेवाले किशोर को संसार में जीवन व्यतीत करने के लिए आधुनिक युग में किन बातों की आवश्यकता होगी, हम इन्हीं बातों पर विचार करना चाहेंगे। हमें तो अपने भावी नागरिकों की इस प्रकार शिक्षा-व्यवस्था करनी है कि वे जीवन के क्षेत्र में दृढ़ता के साथ उचित कदम उठावें और सन्मार्ग पर चलते हुए दूसरों को सन्मार्ग पर ले चलें और राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करें।

सामाजिक अध्ययन का अर्थ

सामाजिक अध्ययन की परिभाषा और उसकी सीमा के संबंध में अभी कोई निर्णयात्मक मानदण्ड नहीं निश्चित हुआ है। विभिन्न देशों के लोग और विभिन्न शिक्षा शास्त्री इसकी अनेक प्रकार की सीमाएँ निश्चित करते हैं और उन्हें अभी इसकी परिभाषा का रूप भी निश्चित

नहीं किया है। भारत में इतिहास, भूगोल, और समाजशास्त्र अथवा नागरिकशास्त्र के अध्ययन के बीच जो व्यवधान थे उन्हें हटाकर एक कर दिया गया है और इन तीनों विषयों के समन्वित अध्ययन को लोगों ने सामाजिक अध्ययन की अविधा प्रदान की है। वास्तव में यदि देखा जाय तो इन तीनों विषयों का घनिष्ठ संबंध है और इनको काल्पनिक व्यवधानों द्वारा पृथक रखा गया था।

लेकिन सामाजिक शिक्षा अथवा अध्ययन का, यह एक प्रकार से प्राथमिक स्तर है। इन प्राथमिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सामाजिक अध्ययन जब विशाल क्षेत्र में पहुँचता है तब उसकी सार्थकता सिद्ध होती है। सामाजिक अध्ययन का शैक्षिक महत्व है। वह केवल एक पाठ्यक्रम मात्र नहीं है और न इसके द्वारा इतिवृत्तात्मक रूप से शिक्षा देना ही पर्याप्त है। सामाजिक अध्ययन का यह कर्तव्य है कि वह अध्ययन-कर्ता को अपने समय, अपने स्थान, और अपने समाज का अध्ययन करने का अवसर दे और उसे इस बात का ज्ञान कराये कि वर्तमान का भूत से क्या संबंध है और वे क्या तत्व हैं जो वर्तमान को भूतकाल से संबंधित रखते हैं। व्यक्ति का समाज से, समाज का राष्ट्र से, राष्ट्र का अन्य राष्ट्रों की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतनाओं से क्या संबंध रहा है और वर्तमान में क्या संबंध बना हुआ है इसकी शिक्षा देना सामाजिक अध्ययन का ही कार्य है। अन्य काल का, तथा अन्य देशों के जीवन का, उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधाराओं का हम पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका दिग्दर्शन कराना भी सामाजिक अध्ययन का ही काम है। यदि एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक दृष्टियों से एक दूसरे का क्या संबंध है इन विषयों का अध्ययन ही सामाजिक अध्ययन है।

इस प्रकार के अध्ययन द्वारा एक युवक को जीवन के उन आधारों की प्राप्ति होती है जिनकी सहायता से वह अपने जीवन में नूतनता

उत्पन्न करता है और उसे समाज के ज्ञान का भी वास्तविक आधार प्राप्त हो जाता है। जब तक सामाजिक अध्ययन इन बातों पर जोर नहीं देता, जब तक सामाजिक अध्ययन मानव जीवन के इन क्षेत्रों का संस्पर्श नहीं करता, तब तक उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता और न वह अपने ध्येय की प्राप्ति ही कर सकेगा। जब तक सामाजिक अध्ययन इन साधनों का उपयोग नहीं करता तब तक यह निश्चित है कि वह युवकों को उन साधनों से वंचित रखता है जिनकी सहायता से संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है, शक्तियाँ जागृत होती हैं, और इच्छाओं का परिष्कार होता है।

सामाजिक अध्ययन उन उदार सिद्धान्तों पर आश्रित रहता है जिनकी सहायता से मनुष्य को वह ज्ञान, वह अनुभव, और वह अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है जिसकी सहायता से अन्य विषयों के साथ-साथ सहयोग पूर्वक इसका भी अध्ययन हो सके तथा सत्र विषय सहयोगी बनकर मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करे। सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये कि सत्र विद्यालय उससे लाभ उठा सके। जब उदार सिद्धान्तों पर सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम बनाया जायगा तब यह निश्चित है कि उसकी सहायता से सभी विद्यालय लाभान्वित होंगे।

विदेशों में सामाजिक अध्ययन के संबंध में अनेक प्रकार के प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हुई है कि इस विषय के पाठ्यक्रम का अन्य विषयों पर बड़ा ही प्रभावकर प्रभाव पड़ा है। यदि भाषा की शिक्षा और गणित आदि की शिक्षा का कुछ भी संबंध सामाजिक अध्ययन से बनाये रखा जाय तो इन विषयों में भी रोचकता आ जाती है और उनकी शुष्कता के कुफल को दूर किया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन का उदार पाठ्यक्रम विषयों की विशेष योग्यता प्राप्त करने में भी सहायता देता है। यद्यपि कुछ शिक्षा विशेषज्ञों की यह सम्मति है कि इस प्रकार के उदार पाठ्यक्रमों द्वारा अन्य विषयों की विशेष योग्यता नहीं प्राप्त की जा सकती।

सामाजिक अध्ययन में विभिन्न विषयों की शिक्षा का बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण ढंग से समन्वय किया जाता है। इतिहास का अध्ययन करनेवाला विद्यार्थी उसे केवल तिथि क्रम और वंश वृत्तों का ही एक लेखा जोखा नहीं समझता। क्योंकि सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में इतिहास के अध्ययन का क्रमिक विकास होता है। मानवता के पक्ष पर अधिक ध्यान देने हुए विषय आगे बढ़ता है। इतिहास के संकीर्ण पाठ्यक्रम के स्थान पर जब सामाजिक अध्ययन का उदार पाठ्यक्रम रखा गया तो यह अनुभव हुआ कि इस उदार पाठ्यक्रम की सहायता से शिक्षार्थी तार्किक रीति से सोच और समझ सकता है और घटनाओं के प्रभाव और कारणों तथा उनके संबंधों को और भी अधिक अच्छी तरह समझ सकता है। वह इतिहास की सामग्री का और भी अधिक उपयोगी रीति से प्रयोग करता है। कुछ ऐसे भी देश हैं जहाँ औद्योगिक विद्यालयों में मानवीय भावना की शिक्षा के लिए सामाजिक अध्ययन की व्यवस्था की गयी है।

परन्तु सामाजिक अध्ययन की उपादेयता का यह एक पहलू है। यह केवल एक पक्ष है। इसका एक सबसे महत्वपूर्ण कार्य तो एक व्यक्ति का उसके कार्य से पूर्ण परिचय कराना है। विभिन्न देशों के उद्योग-विशेषज्ञों ने यह अनुभव किया है कि यदि एक मजदूर को अथवा कार्यकर्ता को यदि यह ज्ञात हो जाय कि उसके उद्योग का क्या महत्व है, उसके उद्योग से राष्ट्र का क्या लाभ है, उस उद्योग के विकास में उसकी क्या स्थिति है, और उसे क्या स्थान प्राप्त है, तो इन ज्ञानों की प्राप्ति से उसे अपने कार्य में अधिक आनन्द तो प्राप्त होने ही लगता है साथ ही उसकी कार्यक्षमता का भी विकास होता है। इस 'पूर्ण परिचय' प्राप्त कराने की प्रक्रिया का बड़ा महत्व होता है। इसके द्वारा प्रत्येक मजदूर अपने उद्योग-बंधों से अपना संबंध समझता है और अपने कारखाने का देश से क्या संबंध है यह भी समझता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्योग विशारदों की इस शिक्षा का सामाजिक अध्ययन से

घनिष्ठ संबंध है। क्योंकि यह 'पूर्ण परिचय' कराने की विधि उस व्यक्ति को उसकी स्थिति और महत्व के विषय में ज्ञान कराती है।

आधुनिक सामाजिक अध्ययन भी तो मनुष्य को उसकी स्थिति और महत्व का परिचय कराता है। यह सामाजिक अध्ययन उन तथ्यों, कार्यों और संबंधों पर प्रकाश डालता है और हमारा उनसे संबंध बतलाता है जो हमारे पूर्वजों ने प्राचीन समय में स्थापित किये हैं। यह सामाजिक अध्ययन मानवजाति के श्रम, उनकी साहसिकता और उनकी विजय प्राप्ति का संदेश हमें सुनाता है और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाले अनुभवों के उपयोग की शिक्षा भी हमें प्रदान करता है।

यद्यपि सामाजिक अध्ययन में उतना ही समय लगता है जितना तीन भिन्न विषयों के अध्ययन में लगता था लेकिन अब इसकी सीमा का विस्तार हो गया है। अब सामाजिक अध्ययन अपने को केवल इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र की सीमाओं तक ही अपने को सीमित नहीं रखता। आज सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र उदार हो गया है, उसकी सीमाओं का विस्तार हो गया है। आज विभिन्न विषयों के पाठों के रूप में उसका अध्ययन नहीं होता वरन् विभिन्न विषयों के तत्वों का समन्वय कर, उनको एक सूत्र में ग्रथित कर अध्ययन के लिए विद्यार्थी के समक्ष रखा जाता है। सामाजिक अध्ययन सक्रिय अध्ययन के लिए अनेकानेक अवसर प्रदान करता है। इन अवसरों के अतिरिक्त यह विद्यार्थी को पाठ के विषय को अपने समय की स्थिति के साथ संबंधित तथा सहयोगी रूप में अध्ययन करने का भी अवसर देता है।

इस सक्रिय अध्ययन के फलस्वरूप विद्यार्थी उन वस्तुओं के संबंध में स्वयं जिज्ञासु होकर अन्वेषण करने लगता है जिनका वह अध्ययन करता है। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा उसको अध्ययन के प्रति आत्मनिर्भरता की शक्ति प्राप्त होती है। सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह मनुष्य की बौद्धिक साहसिकता का विकास करता है।

प्रश्न उठता है कि हम सामाजिक अध्ययन में क्या पढ़ते हैं ? हम सामाजिक अध्ययन द्वारा किसी समय विशेष अथवा काल विशेष के मनुष्य की स्थिति का अध्ययन करते हैं । उसके स्थान, उसके जीवन, उसकी समस्याओं और उन्हें सुलझाने के उसके प्रयत्नों के संबंध में समझने के लिए हम हर संभव विषयों का उपयोग करते हैं । हम उसकी इन बातों का केवल इसलिए अध्ययन करते हैं कि हम वर्तमान समय की समस्याओं को समझ सकें और उन्हें दूर करने के उपाय ढूँढ सकें । अपने इन प्रयत्नों द्वारा हम अपने देश के भावी नागरिकों को, मानव जाति के तथा उसकी संस्कृति के विकास का वास्तविक ज्ञान प्रदान करना चाहते हैं । अपने इन प्रयत्नों द्वारा हम अपने वंशजों को यह बतलाना चाहते हैं कि किस प्रकार मानव ने कठिनाइयों से संघर्ष किया और अनेक वर्षों तक आपत्तियों का सामना करते हुए उसने ऐसे साधनों का पता लगाया जिनसे उसकी कठिनाइयाँ दूर हो सकीं । हम इस अध्ययन की सहायता से अपने बच्चों को यह सीख देते हैं कि मनुष्य जाति ने किस प्रकार अपने वातावरण पर तथा पृथ्वी के साधनों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया ।

मानव का भूत और वर्तमान काल में अपने आस-पास के वातावरण से संघर्ष, उसका विकास, विभिन्न देशों की संस्कृति और सामाजिक एकता आदि का अध्ययन ही सामाजिक अध्ययन के मुख्य ध्येय हैं । यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं कि इतिहास, भूगोल, हिन्दी साहित्य, आदि विषयों की शिक्षा के संबंध में हमने जो संकीर्ण सीमाएँ बाँध रखी हैं उनको इस शिक्षा द्वारा हम ध्वस्त कर देना चाहते हैं । हम यह देखना चाहते हैं कि बच्चे स्पष्ट रूप से सोच और समझ सकें । उन्हें स्पष्ट रूप से सोचने और समझने का अभ्यास हो । साथ ही उन्हें यह क्षमता प्राप्त हो जाय कि वे ज्ञानराशि का अपनी इच्छानुसार समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयोग कर सकें । उन्हें समय-समय पर जीवन के लिए आवश्यक बातों की सूचना भी मिलती रहे ।

कहने का अर्थ यह है कि सामाजिक अध्ययन, सहज और स्वाभाविक

जिज्ञासा को शान्त करता है, उसे पूर्ण करता है। इसके द्वारा बालकों की कल्पना शक्ति का तीव्र गति से विकास होता है और साथ ही वह प्रत्येक व्यक्ति में व्यक्तिगत अभिरुचियों का भी विकास करता है। इस प्रकारके अध्ययन से उसे रचनात्मक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्राप्त होती चलती है।

सामाजिक अध्ययन वस्तु और मानव जाति के प्रति उदारता और स्वाभाविक स्नेह की भावना उत्पन्न करता है और ऐसी ही भावना का उसके द्वारा पोषण भी होता है। बालकों के मस्तिष्क को उचित मार्ग पर ले चलने में इसके द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। बालकों के हृदय में अपने देश और अपने समाज के प्रति एक सजीव भावना जागृत हो उठती है। वह अपने समाज और देश को अपनत्व की दृष्टि से देखने लगता है।

सामाजिक अध्ययन का शैक्षिक महत्व

सिद्धान्त कथन बड़ा सरल होता है। सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत करना ही सिद्धान्तों की सार्थकता है। हमें यह देखना है कि सामाजिक अध्ययन का व्यवहार क्षेत्र में किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि व्यवहार के सिद्धान्त जब तक दृढ़ नहीं होंगे तब तक हमारा व्यवहार पक्ष भी सुदृढ़ न होगा। सामाजिक अध्ययन से शिक्षा क्षेत्र में क्या लाभ हो सकता है इस पर हम लोगों ने साधारण रूप से संक्षेप में विचार किया लेकिन, कुछ बातें इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण हैं परन्तु वे प्रत्यक्ष रूप में सामने नहीं आतीं। हमें उन सब बातों पर विचार करना होगा जिनके कारण आज शिक्षा क्षेत्र में सामाजिक अध्ययन की इतनी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। यदि हमें अपने देश को आत्मनिर्भर बनाना है, यदि हमें उपयुक्त नागरिक उत्पन्न करना है जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का महत्व समझ सकें, यदि हमें वसुधैव कुटुम्बक की भावना उत्पन्न करनी है तो हमें सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। इस शिक्षा के अभाव में हम अपने देश को तथा इन भावनाओं के लिए अपने युवकों को, नहीं तैयार कर सकते।

दूसरा अध्याय

सामाजिक अध्ययन के उद्गम

गृह बच्चों की शिक्षा का सर्वोत्तम शिक्षालय रहा है। गृह में अपने अभिभावकों के आचार-विचार, रहन-सहन और बात-चीत की नकल कर छोटे बच्चे बहुत-सी बातें सीख लेते हैं। बोलना-चालना और भावों की अभिव्यक्ति की शिक्षा तो उन्हें घर से ही मिलने लगती है। उनकी बुद्धि के साधारण स्तर का विकास भी हो जाता है। इस प्रकार अपने प्रारंभिक अवस्था में ही बालकों को भावी प्रौढ़ जीवन के लिए उपयुक्त सामग्री घर पर ही प्राप्त होती रहती है। यह अनुकरण की प्रवृत्ति शिक्षा का एक महान साधन है। सच तो यह है कि यह अनुकरण की प्रवृत्ति अत्यन्त स्वाभाविक और संतोषप्रद साधन है जो मनुष्य के बच्चे को भावी जीवन के लिए तैयार कर देती है। जब तक घरों में क्रियाशीलता के लिए स्थान रहता है, जब तक जीविका के साधनों का विकास भी गृहों में हो जाया करता था, तब तक ये गृह जीवन की शिक्षा के लिए सर्वोत्तम विद्यालय थे। भारतीय गृह उद्योगों का विकास इन्हीं घरों में ही होता था और बच्चा घर के शिक्षालय में ही हस्तकला कौशल की सहज रूप में सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त कर लेता था। अपने माता-पिता के औद्योगिक और कलात्मक गुणों से युक्त वातावरण का उस पर भी प्रभाव पड़ता था। बच्चे अपने अभिभावकों के कार्यों का निरन्तर अनुकरण करते रहते हैं और उन्हें सदा इस बात की स्पर्द्धा रहती है कि वे कब अपने अभिभावकों के समान ही क्षमतावान हो जायेंगे। वे इस महत्वाकांक्षा में कि, शीघ्रातिशीघ्र वे भी प्रौढ़ व्यक्तियों के समान हो जायँ, बहुत अधिक उत्साह के साथ काम करते हैं।

घर तक ही यह बात सीमित रही हो यह नहीं है। जिस क्षेत्र में, जिस पुरवे में अथवा जिस स्थान पर लोगों का जीवन व्यतीत होता था उस स्थान का समाज भी कुछ इसी प्रकार के कलाकारों और शिल्पियों का क्षेत्र हुआ करता था। हमारे देश का इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि यहाँ के एक-एक पुरवे में, मुहल्ले में, एक ही प्रकार के गृह उद्योग करनेवालों का केन्द्र होता था। यदि किसी मुहल्ले में केवल लुहारी का काम होता था तो वह लुहटिया कहलाता था। यदि किसी मुहल्ले में ठठेरों का काम होता था, बर्तन बनाने का कार्य होता था तो वह 'ठठेरी गली' हो जाती थी। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र का वातावरण ही भिन्न हुआ करता था। इसका परिणाम यह होता था कि प्रत्येक क्षण उस क्षेत्र में रहनेवाले बच्चों को इन्हीं कलाकौशलों को देखने का, उनके विषय में सुनने का, अवसर प्राप्त होता था। यथावसर ये बच्चे कभी-कभी अपने मुहल्ले के लोगों की सहायता भी किया करते थे।

स्थिति में परिवर्तन होने के कारण

यह संघटन वर्तमान समय में बना नहीं रह सका। यांत्रिक सभ्यता के विकास ने उद्योगों के विकेन्द्रीकरण की नीति को भारी हानि पहुँचाई। वे छोटे छोटे गृह उद्योग ध्वस्त हो गये और वे एक ही स्थान पर केन्द्रित होने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि गृह-शिल्प और उद्योग धंधे बन्द हो गये और इधर गत ५०-६० वर्षों के भीतर तो उन्हें मृत्यु की घाटी से ही गुजरना पड़ रहा है। परिणामतः शिक्षा का केन्द्र भी परिवर्तित हुआ, घर शिक्षा के केन्द्र नहीं रह गये। उनके स्थान पर शिक्षालयों की उत्पत्ति हुई। इन शिक्षालयों का रूप भी दूकानदारी का ही रूप रहा। इनसे उद्योगों और शिल्प-कलाओं की सहज और स्वाभाविक शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकी और न आज भी उनमें घर की शिक्षा व्यवस्था के समान सहजता और स्वाभाविकता है। वास्तव में उन दिनों जीवन ही शिक्षा था। शिक्षा और जीवन के बीच में कोई व्यवधान न

था। जीवन के सहज और स्वाभाविक क्रियाशील विकास के साथ शिक्षा का भी विकास होता चलता था। दूसरी बात यह थी कि बच्चे जो कुछ भी यह में सीखते थे उसे तत्काल महत्व प्राप्त हो जाता था। उन्हें समाज से अपने कार्यों का पुरस्कार प्राप्त होता रहता था। सच्ची बात तो यह है कि बिना किसी शिक्षा के आडम्बर के तेरह चौदह वर्ष की अवस्था को पहुँचने के पूर्व ही अपनी जिज्ञासा के फलस्वरूप ही बालक अनेक कला-कौशलों का ज्ञान प्राप्त कर लेता था। यह कार्य केवल उत्साह और जिज्ञासा के कारण ही स्वतः पूरा हो जाया करता था। उसे अपने समाज का, दूसरे व्यवसाय के समाजवालों के साथ संबंध का, कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता था। अपने समाज के लोगों की आपसी बातचीत के फलस्वरूप और उनके साथ रहने के परिणाम-स्वरूप उसे अपने समाज के, घर के, व्यवसाय के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें ज्ञात हो जाया करती थीं। वर्तमान समय के औद्योगिक शिक्षालयों में इस प्रकार के सहज और स्वाभाविक वातावरण का नितान्त अभाव रहा है।

यह-शिक्षालय की यह विशेषता थी कि वह बच्चे में, वातावरण और उसके बीच क्या संबंध है, इस संबंध में पर्याप्त जागरूकता उत्पन्न कर देता था। यह शिक्षालय उसे इतना ज्ञान प्रदान कर देता था कि वे आत्मनिर्भर हो सकें। उन्हें अपने पर विश्वास हो सके। बड़े बड़े रईसों और श्रीमानों के जो बच्चे शिक्षालय में शिक्षा प्राप्त करने जाया करते थे, वे शिक्षालयों में साक्षरता की शिक्षा अवश्य प्राप्त करते थे लेकिन उन्हें भी जीवन की शिक्षा घर पर ही प्राप्त होती थी। घर की क्रियाशीलता पर ही उनके ज्ञान की क्रियाशीलता केन्द्रित थी। उस समय शिक्षालय एक विलास की, (यदि विलास न कहना चाहें तो आभूषण भी कह सकते हैं) सामग्री समझी जाती थी। उसकी कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी। साक्षरता के लिए तो वह बहुत ही आवश्यक था परन्तु मनुष्य बनने के लिए इन शिक्षालयों की आवश्यकता न थी। हमारे प्राचीन गुरुकुलों की बात जाने दीजिये। उनका तो संघटन

ही गृह-वातावरण के आधार पर आचार्यों के निवास स्थान पर हुआ करता था। लेकिन इस युग के प्रारंभ काल से ही गुरुकुलों की बात का कोई महत्व नहीं रहा। कान उनकी कहानी भले ही सुनते रहे हों, परन्तु उनका हमारे जीवन से बहुत पहले ही सम्पर्क टूट चुका था।

प्राचीन और अर्वाचीन समय के जीवन में अन्तर

प्राचीन समय में घरों में जिन कला-कौशलों की शिक्षा मिलती थी उनके द्वारा शिक्षित और आज-कल के नगर के साधारण बच्चे की दयनीय स्थिति की तुलना कीजिए। आज बालक नित्य प्रति यह देखता है, और अनुभव करता है, कि उसका पिता आज कहीं ऐसे स्थान पर कार्य करने जाता है जहाँ न तो वह जा सकता है और न उन कार्यों की देख-भाल कर सकता है जिसे उसका पिता करता है। एक वह युग था जब कि परिवार का यही व्यक्ति अनेक कला-कौशलों से युक्त प्राणी था। उसके बच्चे को कहीं जाना नहीं पड़ता था। घर में ही हर प्रकार की शिक्षा व्यवस्था हो जाया करती थी। आज घर में कपड़े नहीं बनते कहीं बाहर से आते हैं। आज घर में भोजन की सामग्री नहीं रहती वह भी कहीं से आती है। एक समय वह था जब कि घर की बड़ी बूढ़ी अवकाश के समय इतना सूत कात लिया करती थीं जिनसे परिवार के कपड़ों की व्यवस्था हो जाया करती थी। पुराने समय के यातायात—घोड़े और बैलगाड़ी—के स्थान पर आज नवीन यंत्रों द्वारा संचालित यातायात के साधनों का उपयोग होने लगा है। आज वातावरण में कोई ऐसी बात नहीं दीख पड़ती जिसे बच्चा देखे और उसका अनुकरण करे। जहाँ पहले अनेक प्रकार की क्रिया-शीलता थी, जहाँ पहले रचनात्मक कार्य को उत्साहित करने के लिए अनेक साधन थे, वहीं आज समाज संकीर्णताओं और यांत्रिक शुष्कताओं में इतना बँधता चला जा रहा है कि जीवन में सरसता के लिए कोई स्थान ही अवशिष्ट नहीं रहा। आज का साधारण परिवार सामाजिक संबंध से पूर्णरूप से अनभिज्ञ रहकर अपना

मंदगति से विकास करता है। बालक की तो और भी दयनीय स्थिति होती है, वह परिवार के एक साधारण सदस्य के रूप में अपने आस-पास के लोगों से पूर्ण अपरिचित रहकर अपने जीवन का विकास करता है। पास के कुछ लोगों से उसका भले ही परिचय हो जाय परन्तु इसके अतिरिक्त उसके लिए सम्पूर्ण विश्व ही अनजान है।

आमोद-प्रमोद, हास्य और व्यंग्य पहले समाज से, गृह से, संबंधित थे। उनके द्वारा सामाजिक जीवन और पारिवारिक जीवन में सरसता उत्पन्न होती थी। आज इन आमोद-प्रमोदों का स्थान बाह्यक्षेत्र में है। उनका घर से कोई संबंध नहीं। आज घर से बाहर सिनेमा, विभिन्न प्रकार के खेलों द्वारा, रेडियो आदि की सहायता से जीवन को सरस बनाने का यत्न किया जाता है। स्वाभाविक आमोद-प्रमोद और मनोरंजन का जीवन में कोई स्थान ही नहीं प्रतीत होता। आज एक गृहस्थ के लिए घर केवल निवास की सुविधा प्रदान करानेवाला एक साधनमात्र है। जीधन के लिए आवश्यक सब सामग्रियों की प्राप्ति वहाँ नहीं होती। वह अब जीवन के लिए आवश्यक सब सामग्रियों का नीड़ न होकर केवल धर्मशाला मात्र रह गया है। यह पाश्चात्य जीवन की रहन-सहन प्रणाली और विचारधारा की देन है। इन वस्तुओं के अभाव का फल यह है कि घर के बालक को उन सभी साधनों से वंचित रखा जाता है जिनके द्वारा वह अनुकरण कर सामाजिक जीवन की शिक्षा प्राप्त करता था।

असम्बद्ध विषयों की शिक्षा से हानि

यदि बालक को शिद्दालय में असम्बद्ध रूप में अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है तो इसके द्वारा वह बहुत सी बातें भले ही सीख ले लेकिन उसकी अज्ञानता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं उत्पन्न होगा। सामाजिक और सम्बद्ध जीवन की शिक्षा समाज के अङ्ग के रूप में ही प्राप्त की जा सकती है। समाज के अंग के रूप में जिन चारित्रिक

गुणों का विकास होता है उनका उस स्थिति में पूर्ण रूप से अभाव रहेगा जिस स्थिति में आज बच्चों को शिक्षा दी जा रही है। व्यक्ति और समाज का क्या सम्बन्ध है, समाज के लिए व्यक्ति की क्या व्यक्तिगत देन है इसकी शिक्षा समाज में ही रहकर प्राप्त हो सकती है। असम्बद्ध विषयों की शिक्षा द्वारा शिक्षालय सामाजिक प्रेरणा कभी भी प्रदान नहीं कर सकते। यह का जो महत्वपूर्ण स्थान था उसका स्थान अब शिक्षालयों ने ले लिया है। इसके कारण बालकों को बड़ी असुविधाएँ हो गयी हैं। आज के शिक्षालयों का महान् उत्तरदायित्व हो गया है। वे घर के वातावरण के भी प्रभूक हो गये हैं। आज इन शिक्षालयों को बच्चों के लिए सम्पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था करनी है। आज इन शिक्षालयों को छात्रों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। शिक्षालयों का यह कर्तव्य है कि वे छात्रों की सम्पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था के लिए, उनमें ज्ञान, चेतना, कौशल, सांस्कृतिक विचारधारा, जीवन के प्रति वास्तविक मानदण्ड, समाज के प्रति आत्मीयता की भावना उत्पन्न करें। जब तक शिक्षालय सम्पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था न करेंगे तब तक वर्तमान विश्व के जीवन का पुनर्संघटन न होगा। जब तक सम्पूर्ण शिक्षा को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जायगी तब तक शिक्षालयों द्वारा कोई सामाजिक लाभ न होगा। विषयों की अन्यतम शिक्षा भी इनकी पूर्ति नहीं कर सकती। पुराने समय में जब कि सामाजिक शिक्षा के लिए घर केन्द्र थे तब विभिन्न असम्बद्ध विषयों की शिक्षा से भले ही ज्ञानार्जन हो जाता रहा हो क्योंकि उस समय यह द्वारा उपयुक्त पीठिका तैयार कर दी जाती थी परन्तु आज के युग में जब यह का महत्व गौण हो गया है तब असम्बद्ध विषयों की शिक्षा कदापि प्रयास नहीं हो सकती।

शिक्षालय का उपयुक्त पाठ्यक्रम

वर्तमान समय में एक ऐसा पाठ्यक्रम जिसमें सामाजिक शिक्षा

की व्यवस्था नहीं है अथवा जिसमें सामाजिक शिक्षा के तत्वों का समन्वय नहीं किया गया है वह अपने क्षेत्र में अपूर्ण रूप से कार्य कर रहा है। ऐसा पाठ्यक्रम कदापि लाभप्रद नहीं हो सकता। विभिन्न विषयों की शिक्षा की बातों को भी ग्रहण करने और समझने के लिए एक उदार पीठिका की आवश्यकता होती है। असम्बद्ध पाठ्यक्रम द्वारा यह आवश्यकता पूरी नहीं होती। वर्तमान समय में इस कमी को पूरा करने के लिए सामाजिक अध्ययन की शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। सामाजिक शिक्षा के अभाव को, अथवा उसके अभाव की पूर्ति के लिए आयोजित सामाजिक अध्ययन की शिक्षा दी जा रही है क्योंकि आज के युग में साधारण विद्यार्थी के लिए स्वाभाविक सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती है। आज भी घर को, बालक के जीवन के लिए महत्वपूर्ण कार्य करना है। उसका महत्व आज भी है लेकिन वर्तमान स्थिति में परिवर्तन हो जाने के कारण आज उसे पहले से अधिक शिक्षालयों की सहायता की आवश्यकता है। शिक्षालय यह सहायता सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा प्रदान कर सकते हैं। यदि शिक्षालयों को तत्परता और उपयुक्त रीति से यह के प्रपूर्क के रूप में कार्य करना है तो उन्हें सामाजिक शिक्षा की अनुपयुक्त व्यवस्था से संकीर्ण अर्थ में ही हानि नहीं होती वरन् उसका प्रभाव विस्तृत क्षेत्र में भी पड़ता है। सामाजिक चेतना में शक्तिशाली नैतिक प्रभाव भी होता है। जिन बालकों में इस प्रकार की सामाजिक चेतना का अभाव होगा वे समाज-विरोधी तत्वों द्वारा शीघ्रता के साथ प्रभावित हो सकते हैं। वास्तविक स्थिति तो यह है कि हम अपने बच्चों की शिक्षा में सामाजिक तत्वों का ठीक से उपयोग नहीं करते। एक प्रकार से हम उनकी उपेक्षा करते हैं। शिक्षालय के शिक्षाकाल में हम बालक के जीवन में उस सामाजिक शिक्षा की नींव ठीक के नहीं डालते जिसकी उसे लोकतांत्रिक सामाजिक जीवन में आवश्यकता होती है। हमारे शिक्षालय नागरिकता से, सामाजिकता से, कोसों दूर हैं। सामाजिक

तत्वों के उपयोग द्वारा, सब विषयों की सहायता से सामाजिक चेतना उत्पन्न करने का कार्य लिया जा सकता है लेकिन ये विषय तब तक उपयुक्त रीति से कार्य नहीं कर सकते जब तक उनका व्यावहारिक रूप से उपयोग न किया जाय। उनकी व्यावहारिकता का एक समन्वित रूप निश्चित कर जब हम एक विशेष पाठ्यक्रम की योजना बनायेंगे तब वे बालक की सामाजिक धारणाओं के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

पुस्तक ही सब कुछ नहीं

सम्पूर्ण सृष्टि एक विशाल पुस्तक और अध्ययन क्षेत्र की अभूत पूर्व सामग्री है। हमारा जीवन, हमारी रहन-सहन, हमारी सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धारणाएँ सब हमें अध्ययन और मनन के लिए अगाध सामग्री प्रस्तुत करती हैं। परन्तु हम उनपर ध्यान नहीं देते। हम पोथी को अधिक महत्व देते हैं। जो कुछ पुस्तक में लिखा है वह बाबा वाक्य है, वही प्रमाण है, वही सब कुछ है, हमारी ऐसी अशुद्ध धारणा हो गयी है। पुस्तकों और पुस्तकों के अध्ययन के लिए संकोर्ण प्रकारों पर हम इधर अधिक ध्यान देते रहे हैं अतः शिक्षार्थी के सामने एक साधारण समस्या उत्पन्न होती है। वह सोचता है कि जो कुछ हम देख रहे हैं, सुन रहे हैं, वह सत्य है या जो कुछ हम पुस्तकों में पढ़ रहे हैं वह सत्य है। पुस्तकों के अध्ययन से अथवा अध्ययन क्षेत्र में पुस्तकों को जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है उसके कारण बालक यह सोचता है कि जो कुछ भी छपा है, अथवा जो कुछ भी पुस्तक में है, वही सत्य है। ज्ञान के क्षेत्र के प्रयोग पूर्ण हो चुके हैं और उसे उन्हीं प्रयोगों के निष्कर्षों को अपने मस्तिष्क में स्थान देना है। जिसने पुस्तक लिखी है वह ज्ञान का अक्षय भंडार है और शिक्षार्थी उसके संबंध में कुछ नहीं जानता। उसे केवल उस ज्ञान को पी जाना है। इस पद्धति का यह प्रभाव पड़ता है कि बच्चा हतोत्साहित होकर नये प्रयोगों की ओर आकृष्ट ही नहीं होता। वह केवल तेली के बैल के समान एक निर्दिष्ट मार्ग पर चलने

वाला एक अन्धभक्त मात्र हो जाता है। इस अन्ध भक्ति के कारण बड़ी हानि होती है।

वर्तमान युग प्रचार और विज्ञापन का युग है। छुपी बातों को ही अन्धभक्ति के साथ ब्रह्म वाक्य समझनेवाले किस प्रकार आज के युग में पथ भ्रष्ट किये जा सकते हैं इसके अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। इन प्रचार और विज्ञापन के हथकंडों से साधारण स्तर के अन्धभक्त विद्यार्थी को बचा सकना कठिन हो जायगा। यदि सतर्कता पूर्ण रीति से मानव ज्ञान की शिक्षा देने का ध्येय हो तो वह किसी विषय के द्वारा भी दी जा सकती है परन्तु इस प्रकार के ज्ञान के हस्तान्तरण में विद्यार्थी का योग नहीं होता। वह स्वतः ज्ञान की जिज्ञासा और उसके लिए खोज नहीं करता। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा में इतना लचीलापन है कि वह विद्यार्थी को अपने अनुभवों द्वारा अपनी क्रियाशीलता द्वारा उन्हीं ज्ञान की बातों का निस्तर अनुभव करने का, सीखने का, और खोज करने का, अवसर प्रदान करती है। सामाजिक अध्ययन के प्रयोगों द्वारा विद्यार्थी यह अनुभव करता है कि उसके अध्यापक और पुस्तकें सब प्रयोगावस्था में हैं। वे भी गलती कर सकते हैं, उनमें भी कुछ बातों का अभाव है। वह यह समझता है कि सत्य एक ऐसा पुरस्कार है जिसकी धैर्य के साथ निरन्तर खोज करना है। वह यह समझता है कि ज्ञान एक सतत प्रयत्न और साहसिक कार्य है जिसमें वह भी अध्यापक और पुस्तकों की तरह ही समान रूप से योग दे सकता है।

समस्याओं के समाधान की क्षमता का प्रश्न

ज्ञान एक सतत प्रयोग और साहसिक कार्य है जिसमें विद्यार्थी समान रूप से योग दे सकता है यह एक महत्वपूर्ण अनुभूति है। इस अनुभूति से ही संबंधित दो बातें हैं जिनका हमें निरन्तर ध्यान रखना चाहिये। विद्यार्थी में प्रेरणा और अपना उत्तरदायित्व समझने की भावना का विकास करना

आवश्यक है। किसी भी प्रयोग के लिए प्रेरणा और उत्तरदायित्व समझने की भावना का विकास आवश्यक है। पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित इतिवृत्तात्मक रूप से अध्ययन करनेवाला विद्यार्थी पराश्रित होता है। वह सदा पका-पकाया भोजन चाहता है। वह प्रशस्त मार्ग पर चलकर स्वतः जीवन-दर्शन नहीं करना चाहता। वह किसी पगदंडी से, किसी छोटे मार्ग से शीघ्रातिशीघ्र निकल भागना चाहता है। वह यह सोचता है कि जीवन की सभी समस्याओं का समाधान कहीं न कहीं पुस्तक में वर्तमान है। बालक इतने पराश्रित हो चुके हैं; हमारा समाज इतना पराश्रित हो चुका है, कि उसकी प्रेरणा की प्रवृत्ति का पूर्णरूप से इनन हो चुका है। आज का विद्यार्थी अपनी सभी कठिनाइयों का उत्तर तत्काल चाहता है। वह उस उत्तर की प्राप्ति के लिए यत्न नहीं करना चाहता। परन्तु सामाजिक अध्ययन की शिक्षा से स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। जब विद्यार्थी सामाजिक अध्ययन के कार्यों को हाथ में लेते हैं तब उनकी स्थिति भिन्न हो जाती है। वे आत्मावलम्बी हो जाते हैं और अपनी समस्याओं का, अपनी कठिनाइयों का, उत्तर प्राप्त करने में भी उनमें आत्म-निर्भरता आ जाती है। जब इस प्रकार की आत्म-निर्भरता उत्पन्न हो जाती है, जब एक व्यक्ति यह विश्वास करता है कि उसमें किसी कार्य को पूर्ण कर सकने की क्षमता है, तब उस स्थिति में वह अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का भी अनुभव करेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि सामाजिक अध्ययन के कार्य में लगे बोदे लड़के अपने बुद्धि के स्तर का अतिक्रमण कर जायेंगे। इसका केवल यही अर्थ है कि उनकी कार्य-क्षमता का विकास उनकी बुद्धि के साधारण स्तर तक अवश्य हो जायगा।

हमारा दुर्भाग्य है कि आज शिक्षा का प्रकार इतना निष्क्रिय है, हम बालकों को इस प्रकार का एक मिट्टी का लोढ़ा समझते हैं, कि उसका जो स्वरूप भी हम चाहें बनाते रहें। उसे इस प्रकार की शिक्षा दी गयी है कि समस्याओं के सम्मुख भी वह निर्जीव मूर्ति के समान केवल

भोता मात्र रहे। यदि वह थोड़ा भी सक्रिय हो तो यह निश्चित है कि वह अपनी समस्याओं को हल कर लेगा, उनपर अपना अधिकार स्थापित कर लेगा, परन्तु दुर्भाग्य यही है कि उसे सक्रिय होने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता।

अनुचित स्पर्धा से हानि

हमने यह अनुभव किया है कि शिक्षालय में अधिकांश लड़के स्पर्धा के वशीभूत होकर कार्य करते हैं। जिस समय पढ़ाई होती है वे अधिकाधिक व्यक्तिगत लाभालाभ की बातें सोचते हैं। वे निरन्तर इस बात का यत्न करते रहते हैं कि वे किस प्रकार अपने साथी से अधिक अंक प्राप्त कर लें। उन्हें सहयोग पूर्ण रीति से कार्य करने की शिक्षा नहीं प्रदान की जाती। केवल कभी-कभी खेल के मैदान में अथवा उत्सवों के अवसर पर वे सहयोग पूर्वक कार्य करते हैं। परन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। शिक्षालय के शिक्षाक्रम के बाहर उन्हें इस सहयोग की शिक्षा दी जाती है। संभवतः इसी का फल है कि हमलोग अपने जीवन के कार्यक्षेत्र में बड़े ही शुष्क और अपने लाभ का ही ध्यान रखनेवाले प्राणी हो गये हैं और अपनी उदारता और सरसता का केवल घर पर, और साधारण सामाजिक जीवन के अवसर पर प्रयोग करते हैं। कार्यक्षेत्र में हम सहयोग को महत्व नहीं देते। वहाँ हम कक्षा के समान ही अपने अहमत्व को प्रधान समझते रहते हैं। इस प्रकार के द्वन्द्वयुक्त व्यक्तित्व से लाभ के स्थान पर हानि अधिक हुई है।

इस प्रकार का द्वन्द्वयुक्त व्यक्तित्व उस समय भले ही लाभप्रद रहा हो जब कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास द्वारा ही समाज का हित समझा जाता था। एक युग पूर्व, इस प्रकार की धारणाएँ समाज में वर्तमान थीं। उस समय लोगों की यह धारणा थी कि यदि एक व्यक्ति अपना पूर्ण रूप से विकास करता है तो उसके द्वारा समाज का भी पूरा लाभ हो जायगा। परन्तु आज के युग में इस प्रकार के व्यक्तिगत विकास

के लिए कोई स्थान नहीं। आज तो प्रत्येक कार्य में सहयोग की अपेक्षा प्रतीत होती है। इस प्रकार के सहयोगी संबंध की आवश्यकता आज स्पष्ट है। आज तो राष्ट्रों का विकास और उनके स्थायित्व की बात ही सहयोगी जीवन पर आश्रित हो गया है।

वैयक्तिक और सामूहिक जीवन

यदि व्यक्तिगत रुचि और क्षमता को अवसर प्रदान करना है, यदि उनके विकास के लिए अवसर देना है तो शिक्षालय का कुछ कार्य वैयक्तिक हो सकता है, उसके द्वारा व्यक्ति को प्रधानता दी जा सकती है। परन्तु उस व्यक्तिगत भावना के संतुलन के लिए सामाजिक अध्ययन की शिक्षा बहुत ही उपयोगी होगी क्योंकि इसका आधार ही सहयोग है। उदाहरणार्थ यदि बच्चों द्वारा किसी प्रदेश के व्यापार विशेष का कार्य सामाजिक अध्ययन के लिए लिया गया है तो उसका कई समूहों में विभाजन किया जा सकता है। एक समूह उन क्षेत्रों का मानचित्र बना सकता है जहाँ वह व्यापार विशेष होता है। इस चित्र में यह दिखलाया जा सकता है कि प्रारंभिक काल से लेकर आज तक उस व्यापार विशेष का किस रीति से विकास हुआ। दूसरा समूह पुस्तकों की सहायता से उस व्यापार विशेष का इतिहास तैयार कर सकता है, तीसरा समूह उस व्यापार के साधनों के संबंध में अध्ययन कर सकता है, चौथा समूह उस व्यापार विशेष के जन्मदाता और विकास में योग देनेवाले लोगों के विषय में अनेक बातें संग्रहीत कर सकता है। इस कार्य का क्रम से जैसे-जैसे विकास होता जाता है वैसे ही वैसे उनके महत्व का पता एक दूसरे के साथ संबंध स्थापित करने पर ही लगता है। सम्पूर्ण कार्य की दृष्टि से ही विभिन्न विभागों का महत्व होगा। इस प्रकार विभिन्न समूहों में कार्य करनेवाले एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं और सहयोग करने के लाभ का महत्व समझने लगते हैं। इस प्रकार के कार्य सामूहिक सफलता प्राप्ति के द्वारा व्यक्तिगत सफलता का अनुभव

कराने में सक्षम होते हैं। ऐसे कार्यों द्वारा व्यक्तिगत सफलता का आनन्द भी प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का ज्ञान और इस प्रकार का सामूहिक और व्यक्तिगत अनुभव आज के नागरिक के लिए आवश्यक अनुभव और ज्ञान है।

सामाजिक अध्ययन एक वरदान

विभिन्न समूहों के वे विद्यार्थी जो अपेक्षाकृत कमजोर होते हैं उनके लिए तो यह सामाजिक अध्ययन एक प्रकार का वरदान ही होता है। तथ्य कथन अथवा विषयों की शिक्षा, अथवा पढ़ाई के समय वे अपनी विचित्र गति पाते हैं। जब विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है तब वे पिछड़ जाते हैं और सदा कक्षा में हतोत्साहित किये जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी सफलता तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों की तुलना में अत्यन्त नगण्य होती है। इसके फलस्वरूप उन्हें निरन्तर प्रतारणाएँ और कटु वाक्यों की बौछार सहन करनी पड़ती है। साधारण स्तर के अथवा मंद गति के बालक पर इन असफलताओं का क्या प्रभाव पड़ता है इसके महत्व का हम ठीक से मूल्यांकन नहीं करते। मंद गति वाले विद्यार्थियों पर इस प्रकार के व्यवहार का भयंकर प्रभाव पड़ता है। एक समय ऐसा अवसर आ जाता है कि वे उस कक्षा से किसी प्रकार भी त्राण पाने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। कक्षा में उनका सबके सामने जिस प्रकार अपमान किया जाता है, वह उनके लिए असह्य हो उठता है। इस अपमान के कारण कभी-कभी बच्चों में शारीरिक दुर्बलताएँ उत्पन्न होने लगती हैं और वे अपनी सुरक्षा के लिए अत्यन्त आकुल हो उठते हैं। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो इस प्रकार की कठिनाई को समझते हैं और शिक्षालयों में बच्चों के मानापमान का ध्यान रखते हैं और उनकी गलतियों को उचित रीति से ठीक करते हैं। अधिकांश में मंद बालकों पर हतोत्साहित करने का क्या प्रभाव पड़ता है इस पर कोई ध्यान नहीं देता। विशेषतः सबके सामने प्रत्यक्ष रूप से उन्हें हतोत्साहित करने का तो बड़ा ही भयंकर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक अध्ययन की यह विशेषता है कि वह विभिन्न प्रकार की क्षमता वाले

लोगों के लिए अनेक प्रकार के अवसर ही नहीं प्रदान करता वरन् वह सहयोगी प्रयत्न द्वारा सब लोगों को अपनी-अपनी देन के लिए अवसर प्रदान करता है। इसका फल यह होता है कि वे बालक जो मंद गति के हैं उन्हें भी वह सामाजिक स्थान प्राप्त हो जाता है जिसके अभाव में उस बच्चे के विकास का द्वार ही बन्द हो जाता है।

सामाजिक अध्ययन के विरुद्ध दलीलें

बहुत से शिक्षा शास्त्री और शिक्षा के विषय में विचार करनेवाले लोग सामाजिक शिक्षा की अव्यावहारिकता के विषय में दलीलें पेश करते हैं। उनका कहना है कि सामाजिक अध्ययन का संबंध अनेक विषयों से है और उसकी सीमा बहुमुखी है अतः इसके कारण विद्यार्थियों को भ्रम हो सकता है, और उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु यह दलील सामाजिक अध्ययन के विरोध में न होकर उसके पक्ष में ही है। हम लोगों ने यह जीवन में अनुभव किया है कि बहुधा जीवन से संबंधित विषयों की शिक्षा जब पृथक् रूप से दी जाती है तब वह उतनी प्रभावकर नहीं होती जितनी जीवन से संबंध रखनेवाले अन्य विषयों के साथ दी जाती है। जब किसी विषय का संबंधित विषयों के साथ अध्ययन किया जाता है तब उसका प्रभाव स्थायी होता है और इस प्रकार की शिक्षा का जीवन पर प्रभाव भी पड़ता है।

सहजता और उदारता की आवश्यकता

वास्तविक स्थिति तो यह है कि हमें विद्यार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी है कि वे अस्थायी और अरक्षित स्थितियों का निरन्तर सामना कर सकें। उनमें ऐसी क्षमता उत्पन्न हो जाय कि संक्रमणकाल और अव्यवस्थित स्थिति का वे सहज रूप में निर्भीकता के साथ सामना कर लें। वर्तमान समय की वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य की उस शक्ति को भयंकर रूप से चुनौती दी है जिसकी सहायता से वह अपने को अवसरों और स्थितियों के अनुकूल बना लिया करता था।

आज हमारे समाज में, हमारे युवकों में, समय के अनुसार और स्थिति के अनुसार कार्य करने की क्षमता का हास हो चुका है। भविष्य के जीवन को दृष्टि में रखकर पाठ्यक्रम और शिक्षा क्रम की योजना बनाना ही दूरदर्शी शिक्षा शास्त्रियों की सबसे बड़ी सफलता है। भविष्य में समाज की स्थिति क्या होगी, लोगों के आचार-विचार में क्या परिवर्तन हो जायेंगे, इस संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता, परन्तु भविष्य किस करवट बैठेगा, समाज की क्या स्थिति होगी इसका साधारण आभास तो अवश्य ही मिल सकता है। हमें शिक्षा की योजना इस बात को ध्यान में रखकर बनानी चाहिये कि जब बालक प्रौढ़ हो जायगा तब उस समय उसे किन स्थितियों का सामना करना पड़ेगा और उन स्थितियों के अनुकूल वह किस प्रकार कार्य करें। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान शिक्षा का एक ध्येय यह भी होना चाहिये कि बालकों में वह सहज और उदारता का गुण उत्पन्न कर दे जिसकी सहायता से वे अपने प्रौढ़-जीवन काल में अपने आस-पास के वातावरण के अनुकूल अपने को बना सकें। विषयों की शिक्षा में यह उदारता अथवा लचीलापन नहीं होता। उसकी शिक्षा के लिए तो निश्चित सीढ़ियाँ बनी होती हैं। इस प्रकार का पाठ्यक्रम क्रमशः आगे बढ़ता है और उसे इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि आस-पास क्या हो रहा है। इस प्रकार की शिक्षा का कभी युग रहा होगा यह हम स्वीकार करते हैं, परन्तु आज विज्ञान की प्रगति के युग में इनका कोई भी महत्व है हम नहीं समझ सकते। निष्क्रिय शिक्षा अथवा केवल श्रोता के रूप में अध्ययन करनेवाले अथवा कार्यक्रम के संकीर्ण जाल में बँधा हुआ बालक असंतुलित रूप से जीवन व्यतीत करता है। उसके जीवन को संतुलित बनाने के लिए उसकी शिक्षा को संतुलित और उपयोगी बनाने के लिए, हमें उसे, इसके लिए अवसर देना होगा कि वह भूत और वर्तमान की साहसिक यात्रा करे, भविष्य की कल्पना करने के लिए अपने मस्तिष्क का उपयोग करे, मानव-जीवन से संबंध रखनेवाली समस्याओं और उनके समाधानों पर

स्वतः विचार करे, तथा उसके विचारों में मौलिकता का योग हो, उसमें सहजता, स्वाभाविकता और उदारता की भावना उत्पन्न हो। अकल्पित समस्याओं का सामना करने की उसमें क्षमता उत्पन्न हो सके।

हमें विद्यार्थी को यह बतलाना होगा कि जीवनधारा नदी की अजस्र धारा के समान स्वच्छ और निर्मल निरन्तर बहनेवाली धारा है। वह उस तालाब के समान नहीं है जो संकीर्ण होता है और जिसका जल सड़ कर चारों ओर गंदगी फैलाता है। हमें शिक्षार्थी को यह बतलाना होगा कि इस निरन्तर विकसित होनेवाले जीवन की प्रगति को किस प्रकार समझा जाय और किस प्रकार प्राप्तव्य और उपयोगी ध्येयों की प्राप्ति के लिए कार्य किया जाय।

नये और पुराने शिक्षाक्रमों के प्रयोग

विभिन्न देशों में शिक्षा-शास्त्रियों ने विषयों पर आधारित और विषयों की शिक्षा के साथ ही सामाजिक अध्ययन की शिक्षा से समन्वित शिक्षा संबंधी प्रयोगों के लिए कार्य किया है। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं कि संकीर्ण विषयों पर आधारित शिक्षा द्वारा शिक्षित शिक्षार्थी अपने को स्थिति के अनुकूल बनाने में सक्षम नहीं होते। वे किसी प्रकार के नवीन प्रयत्नों अथवा परिवर्तनों के प्रति रुचि नहीं दिखलाते। वे चुपचाप अपने निश्चित मार्ग पर ही चलना पसन्द करते हैं। दूसरी ओर सामाजिक अध्ययन के कार्यों द्वारा शिक्षित विद्यार्थियों की स्थिति भिन्न थी। इनमें एक विचित्र प्रकार का उत्साह उत्पन्न हो जाता है। वे साहसिक रीति से किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए तत्पर रहते हैं। वे नयी समस्याओं, नयी कठिनाइयों का, सामना करने के लिए भी सन्नद्ध रहते हैं। इनमें संकीर्णता नहीं होती। ये इस विचार के नहीं होते कि जो कुछ है सब ठीक है, किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। यह स्पष्ट है कि आज के प्रगतिशील समाज के लिए, नित्य नूतन विश्व के लिए, हमें किस प्रकार के युवकों अथवा बालकों की आवश्यकता है।

तीसरा अध्याय

साधारण और विशेष प्रकार की शिक्षा

जीवन संकुलता, सभ्यता तथा संस्कृति की जटिलता के साथ जीवन की प्रगति में भी तीव्रता उत्पन्न होने लगती है। ऐसे अवसरों पर यह और भी अधिक आवश्यक होता है कि प्राप्त सामग्री और विभिन्न प्रकार की शिक्षा-प्रद वस्तुओं के बीच से उचित और आवश्यक चुनाव किया जाय। इस बात की गति की तीव्रता के साथ जितनी ही अधिक आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं उतना ही चुनाव करना भी कठिन होता जाता है। बच्चों के लिए क्या काम ठीक है? प्रौढ़ों के लिए कौन सा जीवन क्षेत्र ठीक होगा? अवकाश के समय का किस प्रकार सर्वोत्तम रीति से उपयोग किया जा सकता है, जीवन में किन अनुभवों की आवश्यकता है जिनके संबंध में अनुसंधान करना चाहिये, कौन सी पुस्तकें, कौन से आमोद-प्रमोद के सामान उपयुक्त हैं, इनका निर्णय करना कठिन होता है। आवश्यकता और जीवन के मानदण्ड के आधार पर निरन्तर इस ओर ध्यान देते रहने पर ही आज के अव्यवस्थित युग में व्यक्तिगत और सहयोगी जीवन के लिए व्यवस्थित रूप से जीवन के आदर्श और जीवन के उपयोग की सामग्री का चुनाव किया जा सकता है। आज मनुष्य का जीवन अपने लिए वस्तुओं के चुनाव भेदों और प्रभेदों में ही समाप्त हो जाता है। उसमें यह निर्णय करने की क्षमता नहीं कि उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। जब तक हम लोगों में इस बात के निर्णय करने की क्षमता नहीं उत्पन्न हो जाती तब तक हमारा जीवन केवल असफल प्रयत्नों में ही व्यतीत होता रहता है। ऐसी स्थिति में हम अनेक कार्यों में हाथ डालते हैं और हमें चारों ओर से केवल असफलता ही प्राप्त होती है।

इसका परिणाम यह होता है कि किसी मानदण्ड अथवा प्रकार के अनुसार कार्य नहीं हो पाता और न कोई ध्येय ही निश्चित हो पाता ।

परम्परा से चले आते पाठ्यक्रम इस क्षेत्र में किसी प्रकार का कार्य नहीं करते । वे युवकों अथवा विद्यार्थियों को यह समझने का अवसर नहीं देते कि जीवन के संबंध में जब तक उपयुक्त रीति से चुनाव नहीं होगा तब तक जीवन सफल नहीं हो सकता । उसे यह भी अनुभव नहीं हो पाता कि ध्येय और मानदण्ड की स्पष्टता के अभाव में यह कार्य नहीं हो सकता । सामाजिक अध्ययन, अध्यापक और अध्ययन कर्ता दोनों के लिए निरन्तर ऐसे अवसर प्रदान करता है कि वे उपयुक्त और अनुपयुक्त का भेद समझ सकें और उपयुक्त रीति का चुनाव कर सकें । सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में निरन्तर इस बात के निर्णय करने की आवश्यकता पड़ती रहती है कि किन विषयों का विस्तार के साथ अध्ययन किया जाना चाहिये और किसका स्पर्श मात्र ही पर्याप्त होगा । इस विषय के पाठ्यक्रम की यह विशेषता होती है कि वे अनिवार्य, आवश्यक और संभावित विषयों और तत्त्वों के संबंध में स्पष्ट निर्देश करते हैं । उनके द्वारा यह भी पता लग जाता है कि किन विषयों को हम बिना किसी हानि के छोड़ सकते हैं । बहुधा ऐसे अवसर भी सामने आते हैं जब अनेक विषयों के समूह की शिक्षा अनिवार्य सी प्रतीत होती है लेकिन सब विषयों की शिक्षा की व्यवस्था कर सकना कठिन होता है । ऐसे अवसर पर निर्णय की बड़ी आवश्यकता होती है । जब तक स्पष्ट निर्णय और निश्चय करने की क्षमता न होगी तब तक ध्येय तक पहुँच सकना कठिन होगा और ध्येय तथा मानदण्ड को स्पष्ट रूप से समझ सकना भी कठिन होगा । जब ऐसी निर्णयात्मक भावना उत्पन्न हो जाती है तब बालकों के लिए जीवन के महत्व और मानदण्ड आकाश कुसुम नहीं रह जाते, उन्हें प्रौढ़ों की रुचिकर वस्तुओं में भी रुचि उत्पन्न हो जाती है और वे इन वस्तुओं को तथा इन बातों को अपने सफल तथा प्रभावकर जीवन का पथ-प्रदर्शक समझने लगते हैं ।

उन्हें इस बात का भी अनुभव होने लगता है कि बुद्धिमत्ता पूर्ण चुनाव के लिए विनय की भावना की आवश्यकता होती है।

युवकों को निर्णयात्मक भावना के अभ्यास द्वारा प्राप्त शिक्षा से साधारण जीवन में भी व्यक्तिगत रूप से लाभ होता है। यद्यपि इस प्रकार की शिक्षा को हम महत्व नहीं देते और न उसे आवश्यक समझते हैं फिर भी इनके द्वारा बड़ा लाभ होता है। किशोरावस्था में जिस समय घर, शिक्षालय और व्यक्तिगत रुचि के बीच खींचा-तानी चलती रहती है उस समय तो इस निर्णयात्मक चुनाव की और भी अधिक आवश्यकता होती है। विशेष कर ऐसी स्थितियों में सामाजिक अध्ययन युवकों को उचितानुचित मार्ग का प्रदर्शन करता है और उन्हें यह बतलाता है कि उनके लिए कौन सी वस्तु महत्वपूर्ण और उचित है।

बहुत से लोगों की धारणा है कि सामाजिक अध्ययन साधारण नहीं, विशेष प्रकार की शिक्षा का पाठ्यक्रम है। उनका कहना है कि इतिहास, भूगोल और नागरिक-शास्त्र के स्थानापन्न के रूप में या उनके प्रतिनिधि के रूप में इसकी शिक्षा प्रदान की जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस विषय के कुछ इस प्रकार के पाठ्यक्रम तैयार किये गये हैं जिनमें सामाजिक अध्ययन को किसी विशेष निश्चित शैक्षिक महत्व की पूर्ति का साधन न मानकर उसे एक ऐसा विषय माना गया है जो कुछ क्षेत्रों में संतुष्टि प्रदान करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विषय की गहराई और ऊँचाई से पृथक रखकर उसकी चौड़ाई का ज्ञान कराया गया है। विषय की उदारता के अभाव में उसकी गंभीरता और विशालता का परिचय नहीं प्राप्त हो सकता। यदि देखा जाय तो हमारे प्रारम्भिक और प्रारम्भिकोत्तर शिक्षा के पाठ्यक्रमों में इस उदारता के तत्व की निरन्तर कमी अथवा अल्पता रही है। इस कमी का आज स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा रहा है। सामाजिक शिक्षा का कार्य गहराई और भव्यता के साथ ही उदारता प्रदान करना है। अतः सामाजिक शिक्षा के अध्ययन के लिए जो पाठ्यक्रम बनाये जाते हैं वे विशेषज्ञ उत्पन्न करने की दृष्टि से

नहीं वरन् उनके द्वारा समाज के नागरिक और लोकतंत्र युग के मानव उत्पन्न किये जाते हैं। समष्टि रूप में यदि हम विचार करें तो शिक्षा के दो स्पष्ट प्रयत्न हैं। पहला ध्येय तो शिक्षा का यह है कि वह व्यक्ति में जो अद्वितीय वैयक्तिक गुण है उसको संतुष्ट और विकसित करे तथा उसका दूसरा ध्येय यह है कि वह उन्हें ऐसी शक्ति प्रदान कर दे जिसकी सहायता से वे अन्य लोगों के साथ अपनी संस्कृति और अपनी सामाजिक विशेषताओं की संयुक्त रूप से रक्षा कर सकें। शिक्षा विशेष अथवा विशेषज्ञता की शिक्षा द्वारा पहले प्रकार की संतुष्टि हो सकती है तथा सामाजिक अध्ययन द्वारा दूसरे प्रकार की संतुष्टि संभव है। सम्पूर्ण अथवा पूर्ण शिक्षा क्षेत्र प्राप्त करने के लिए गंभीरता अथवा गहराई के साथ ही-साथ उदारता की भी आवश्यकता होती है। हमारा पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो दोनों तत्वों का उपयुक्त रीति से समन्वय करें और इस प्रकार समन्वय करें कि उनके द्वारा दोनों के ध्येयों में गड़बड़ी न उत्पन्न हो जाय।

सामाजिक अध्ययन तथा अन्य विषयों का समन्वय

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के साथ मौलिक तथा प्राथमिक विषयों के समन्वय के संबंध में भी हमें स्पष्ट रूप से विचार कर लेना चाहिये। कुछ देशों में साहित्य और गणित के साथ इसका समन्वय किया गया है। इन देशों ने सम्पूर्ण साहित्य और सम्पूर्ण गणित का समन्वय सामाजिक अध्ययन के साथ किया है। स्पष्ट है इस प्रकार का समन्वय कृत्रिम और अव्यावहारिक होगा। इस प्रकार के प्रयत्न का फल भी अच्छा न होगा और सामाजिक अध्ययन का यह प्रकार भी एक अशुद्ध प्रयत्न ही रह जायगा। इस प्रकार की धारणा रखना कि किसी विषय का सामाजिक अध्ययन के साथ या तो पूर्ण समन्वय हो अथवा तनिक भी न हो, अशुद्ध विचार है। जब हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि सामाजिक अध्ययन का कर्तव्य उदार तत्वों अथवा जीवन की साधारण

तथा आवश्यक बातों की शिक्षा प्रदान करना है तब हमें इस पाठ्यक्रम को पूर्णरूप से यह स्वतन्त्रता देनी होगी कि वह अपने विषय को पूर्ण बनाने के लिए, अपने पाठ्यक्रम को उपयुक्त और उपयोगी सिद्ध करने के लिए, जिस क्षेत्र से भी चाहे जितनी सहायता ले। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन मौलिक तथा प्राथमिक विषयों की शिक्षा के व्यावहारिक ज्ञान के लिए अवसर प्रदान करता है और इस तरह उन विषयों के प्रति रुचि उत्पन्न करने का भी कार्य सम्पन्न करता है।

परन्तु यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि जहाँ तक आवश्यक है, और जहाँ तक उपयोगी है, प्राथमिक और मौलिक विषयों का अध्ययन स्वतन्त्ररूप से भी करना चाहिये। इस दृष्टि से उनका एक विशेषज्ञ के रूप में अध्ययन करना हानिकर न होगा। इन विषयों के अध्ययन में उनके मागों का अवलम्बन ही श्रेयस्कर होगा। साधारण शिक्षा की दृष्टि से अथवा साधारण उपयोग की दृष्टि से इनको सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम अपने में सन्निहित कर लेगा। जब हम सामाजिक शिक्षा के उदारता विषयक तत्व को महत्व देते हैं तब इसका यह अर्थ नहीं कि सामाजिक अध्ययन केवल पञ्चव ग्राहिणी शिक्षा को महत्व देता है अथवा इसका यह भी मन्तव्य नहीं कि किसी विषय का विस्तृत अध्ययन नहीं करना चाहिये। इसके विपरीत सामाजिक अध्ययन के अध्ययनकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह निरन्तर खोज पूर्ण कार्यों में लगा रहे और अपनी क्षमता और कार्य कुशलता को निरन्तर बढ़ाता रहे। यह सत्य है कि सामाजिक अध्ययन अपने प्रयत्नों द्वारा विभिन्न शिक्षा क्षेत्रों के बीच जो रिक्त स्थान होते हैं उन्हें पूरा करता है, विभिन्न विषयों में संबंध स्थापित करता है तथा विभिन्न अध्ययन के अंशों में समन्वय स्थापित करता है। लेकिन यह तो उसका एक मार्ग है। प्रधान रूप से तो उसका कार्य विस्तृत तथा सटीक होता है।

सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत प्रत्येक अध्ययन-अंश को बहुमुखी रूप में स्वीकार किया जाता है और उसके साथ उसी दृष्टि से व्यवहार

भी किया जाता है। इस बहुमुखी रूप को साकार करने का सम्पूर्ण भार सामाजिक अध्ययन पर होता है। किसी भी रुचि के क्षेत्र का पूर्व स्वरूप निश्चित करना तथा उसका साकार रूप स्पष्ट करना सामाजिक अध्ययन का कार्य है और इसी दृष्टि से इसका कार्य विशिष्टता के लिए अध्ययन करनेवाले क्षेत्र से पृथक हो जाता है और इसी रूप में विशिष्ट अध्ययन से इसकी महत्व पूर्ण विशेषता है।

सामाजिक अध्ययन पर केन्द्रित अथवा उससे युक्त पाठ्यक्रम द्वारा क्या शैक्षिक अनुभव प्राप्त होता है उसका हमें कुछ आभास मिल रहा है। इस प्रकार की उदारता के आधार पर आधारित शिक्षा के अन्तर्गत बालक अपने मस्तिष्क और हाथ का साथ-साथ उपयोग करते हैं। वे अपनी बुद्धि और शारीरिक श्रम की सहायता से अपने वातावरण का अध्ययन करते हैं और उसके संबंध में छानबीन करते हैं। ऐसी शिक्षा के द्वारा उन्हें वातावरण के साथ अपना संबंध निश्चित करने में भी सहायता मिलती है। जिस उदारता के साथ मौलिक अथवा प्राथमिक विषयों का उपयोग सामाजिक अध्ययन करता है उससे एक यह भी लाभ है कि विशिष्ट अध्ययन के लिए भी यह पीठिका तैयार कर देता है और कभी कभी संकीर्ण तथा अनुदार कार्यों को भी, असीम और उदार बना देता है। सामाजिक अध्ययन से यह भी लाभ है कि जिन मौलिक अथवा प्राथमिक विषयों की शिक्षा उनके घंटों में दी जाती है उसके बाद सामाजिक अध्ययन के अवसर पर उनका व्यावहारिक उपयोग होता है। इस तरह सामाजिक अध्ययन के कारण इन विषयों का वास्तविक जीवन से संबंध बना रहता है।

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा का जो महत्व बतलाया गया है, और उसका जिस रीति से अर्थ लगाया गया है उससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये कि विद्यार्थी को विशिष्ट रूप से इतिहास, भूगोल अथवा नागरिकशास्त्र का अध्ययन ही नहीं करना चाहिये अथवा उसे इस प्रकार का अवसर ही प्रदान नहीं करना चाहिये। यदि किसी विद्यार्थी की इन

विषयों में विशेष रुचि है तो वह प्रसन्नता के साथ इन विषयों की विशेषज्ञता प्राप्त कर सकता है। विद्यार्थी की स्वाभाविक जिज्ञासा और अभिरुचि का हनन सामाजिक अध्ययन का ध्येय नहीं।

कर्तव्य की भावना का महत्व है, विशेषतः ऐसी स्थितियों में जब कि समाज में व्यक्तिगत कारणों से विघटन हो रहा हो। किन कारणों से मनुष्य में असामाजिक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, किन कारणों से व्यक्ति, समाज से, अपने साथियों से, दूर भागकर जीवन व्यतीत करने लगता है, किस शिक्षा के कारण एक व्यक्ति में स्वार्थ-साधन-युक्त संकीर्णता उत्पन्न हो जाती है, वे क्या कारण हैं जिनके कारण एक व्यक्ति ने सहयोग पूर्ण जीवन से असहयोग कर रखा है, ये ऐसे विषय हैं जिनके संबंध में निरन्तर अनुसंधान की आवश्यकता है। इस आवश्यकता और महत्व के कारण ही व्यक्ति के कर्तव्य की भावना पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि इसी कर्तव्य की भावना की सहायता से आत्म-निर्भरता, प्रसन्नता, उत्साह और प्रौढ़त्व की भावना का उदय होता है।

सामाजिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण ध्येय

जब एक व्यक्ति अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा को भली-भाँति समझता है, और जब उसे समाज के ढाँचे के अन्दर रहकर प्रभाव युक्त रीति से कार्य करने की चेतना प्राप्त रहती है तब उपर्युक्त रूप से उसके कर्तव्य की भावना जागरित होती है। जब तक एक व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति के साथ अपना वैयक्तिक संबंध नहीं समझता तब तक उसके प्रति न तो उसके हृदय में अनुराग होगा और न वह उसके लिए उत्तरदायित्व पूर्ण रीति से कार्य कर सकेगा। हमारे समाज में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो अज्ञान के कारण, उपयुक्त शिक्षा के अभाव के कारण, अपने समाज और संस्कृति से कोसों दूर हैं, इनके अतिरिक्त उन लोगों की भी संख्या कम नहीं है जो सामाजिक स्थिति में सहयोग पूर्ण कार्य-प्रणाली के अनुभव के अभाव के कारण कर्तव्य की भावना से वंचित रहते हैं।

सामाजिक अध्ययन केवल उन्हीं बातों की शिक्षा नहीं देता जिन बातों के आधार पर अथवा जिन तत्वों के उपयोग से ऐसे संघटनों का निर्माण होता है जो सामाजिक ढाँचे की रूप रेखा तैयार करते हैं वरन् इस अध्ययन के द्वारा युवकों को अपनी संस्कृति के संबंध में पूर्णरूप से छानबीन करने का अवसर मिलता है। साथ ही सामाजिक अध्ययन ऐसे अवसर भी प्रदान करता है जिनके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को सहयोग पूर्ण कार्य करने का अवकाश मिलता है और उस कार्य की समाज में प्रशंसा भी होती है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक अध्ययन युवकों में सामाजिक कर्तव्य की भावना की चेतना भी उत्पन्न करता है। युवकों में कर्तव्य की भावना का उदय, उनके सामाजिक और व्यक्तिगत प्रौढ़ता का चिह्न है। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के अवसर पर कर्तव्य की भावना को उत्पन्न करने का लक्ष्य निरन्तर ध्यान में रखना चाहिये। कर्तव्य की भावना उत्पन्न करना सामाजिक अध्ययन का एक मुख्य लक्ष्य भी कहा जा सकता है।

वसुधैव कुटुम्बकता की भावना

शिक्षा की अत्यन्त महत्वपूर्ण सफलता है वसुधैव कुटुम्बकता की भावना उत्पन्न करना। विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य को अधिक बुद्धिवादो बना दिया है। उसके हृदय पक्ष का निरन्तर हास होता जा रहा है। दूसरी बात यह है कि इधर अनेक शक्तियों तक शिक्षा ने वैयक्तिक शिक्षा को महत्व दिया इसके फलस्वरूप अहमत्व की भावना का उदय हुआ। मनुष्यों में व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए संकीर्णता की भावना उत्पन्न हुई। इसी का फल है कि विश्व में भयंकर संघर्ष हुए। इन्हीं व्यक्तिगत स्वार्थों की छीना-भपटी के कारण मानव मानव को खाने लगा। आज संसार शांति का भूखा है। अतः शिक्षालयों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वे शांति-स्थापना में योग दें। वह शिक्षालय अपने कर्तव्य को पूरा नहीं करता जो अपने विद्यालय के शिक्षार्थियों में वसुधैव कुटुम्बकता की

भावना नहीं उत्पन्न करता। जब तक बालकों में अन्ताराष्ट्रियता की भावना नहीं उत्पन्न होगी, तब तक उचित दृष्टिकोण की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अन्ताराष्ट्रिय भावना उत्पन्न करने के पूर्व हमें मनुष्य की तीन, एक दूसरे से संबंधित प्रवृत्तियों को ठीक करना होगा। जब तक इन तीनों संबंधित प्रवृत्तियों को हम ठीक न करेंगे तब तक अन्ताराष्ट्रियता अथवा वसुधैव कुटुम्बकता की भावना नहीं उत्पन्न हो सकती। वसुधैव कुटुम्बकता की भावना का सबसे बड़ा शत्रु है—पक्ष लेने की प्रवृत्ति। इस भावना का, दूसरा शत्रु है समस्याओं की चुनौतियों के प्रति हमारी विचित्र भावना, या तो हम समस्याओं का पूर्ण रूप से सामना करने के लिए तैयार हो जाते हैं या हम ऐसे तटस्थ हो जाते हैं कि समस्याएँ ही हमें आत्मसात् कर लेती हैं। अन्ताराष्ट्रिय भावना का तीसरा शत्रु है—अपने छिपे पाप को ढँकने और दूसरों के अधिकारों को हड़पने के लिए निर्मलों की खोज की प्रवृत्ति। ये तीनों ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो रचनात्मक न होकर आक्रमणात्मक हैं। इन भावनाओं के कारण हमारे समाज की कल्पनाओं और रुचियों में निरन्तर संघर्ष होता रहता है। इन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ही मानव के सहयोग पूर्ण कार्यों का संघटन नहीं हो पाता। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण ही विभिन्न देशों के सामाजिक अन्ताराष्ट्रिय संबंध बिगड़ते हैं और इसका फल महायुद्ध होता है।

जीवन और क्रियाशीलता का संबंध

सामाजिक अध्ययन के अवसर पर शिक्षार्थी मानवजीवन के वातावरण और इतिहास के क्रमिक विकास के संबंध में खोज करने के लिए क्रियाशील होकर सहयोग पूर्ण रीति से कार्य करते हैं। वे इस प्रकार की क्रियाशीलता पूर्ण शिक्षा से यह अनुभव प्राप्त करते हैं कि जीवन और क्रियाशीलता का जब संबंध होता है तब अनेक प्रकार की समस्याएँ उठती हैं। ये समस्याएँ सहज और स्वाभाविक होती हैं। इन समस्याओं का समाधान दूसरों पर दोषारोपण करने से नहीं प्राप्त

होता वरन् उन समस्याओं को पूर्ण रूप से समझने और उनको एक साथ हल करने से ही कल्याण होता है। किसी भी समस्या के संबंध में न तो पूर्ण रूप से उसका पक्ष ही लेने की प्रवृत्ति रखनी चाहिये और न उसका पूर्ण विरोध ही करना चाहिये। इस प्रकार की प्रवृत्ति से समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं और आपस में संघर्ष होता है। लोग अधिकार प्राप्त करने के लिए आपस में झगड़ने लगते हैं। किसी भी समस्या के संबंध में विचार करने के समय हमें उस समस्या के पूर्ण रूप को सामने रखना चाहिये और उस पर हर दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। विचार के अवसर पर हमें सबके साथ पूर्ण रूप से सहयोग करना चाहिये। इस प्रकार सहयोग पूर्ण रीति से कार्य करने पर यह अनुभव होता है कि जीवन की बहुत सी बातें और समस्याएँ अन्योन्याश्रित हैं और एक दूसरे देश का संबंध हमारी कल्पना की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ रूप से संबंधित है।

सामाजिक अध्ययन की यह विशेषता है कि शिक्षार्थी इन बातों का ज्ञान और अनुभव, जीवन के पारस्परिक आदान-प्रदान के द्वारा, और समाज में उत्पन्न विभिन्न स्थितियों को सहयोग पूर्ण रीति से समझने के द्वारा, प्राप्त करते हैं। इस बात का निरन्तर ध्यान रखना चाहिये और यह व्यावहारिक बात भी है कि एक सामाजिक स्थिति में कार्य करने से जो अनुभव होता है उसी की अनुभूति के कारण ही दृष्टिकोणों का निर्माण अथवा परिवर्तन होता है। सामाजिक अध्ययन की यह बहुत बड़ी सेवा है कि वह अपने प्रारंभिक अवस्था की शिक्षा द्वारा वह शक्ति प्रदान करता है जिसकी सहायता से नैराश्य की भावना, दूसरों पर अधिकार प्राप्त कर लेने की भावना, और दूसरों पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति का नाश होता है। यदि सामाजिक अध्ययन की प्राथमिक रूप से व्यवस्था न की जाय तो प्रारंभिक जीवन में ही इन विकारों का बीजारोपण प्रारम्भ हो जाता है।

आत्माभिव्यक्ति का महत्व

भावाभिव्यक्ति का अनावश्यक निर्दलन उपयुक्त तथा निश्चित प्रकारों से ही रोका जा सकता है। इस प्रकार के निर्दलन को रोकने का सबसे महत्वपूर्ण प्रकार यह है कि मनुष्य को रचनात्मक क्रियाशीलता द्वारा आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया जाय। यह रचनात्मक क्रियाशीलता बन्धनों से मुक्त तो होती है, साथ ही इसके द्वारा सहज तथा स्वाभाविक विनय की भावना का भी उदय होता है। प्रश्न यह उठता है कि रचनात्मक क्रियाशीलता का क्या तात्पर्य है? अवस्था और योग्यता के अनुसार घरों के निर्माण से लेकर महाकाव्यों के निर्माण तक रचनात्मक क्रियाशीलता की सीमा का विस्तार हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि छोटी अवस्था में ही, जीवन के ऊषाकाल में ही, बालकों में इस रचनात्मक क्रियाशीलता की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी जाय। इस रचनात्मक क्रियाशीलता के दो स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस क्रियाशीलता का पहला लाभ तो यह है कि वह बच्चों को उन दलित और छिपी भावनाओं से मुक्त कर देता है जिनके प्रभाव के कारण उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। रचनात्मक क्रियाशीलता इस प्रकार की छिपी और दबी भावनाओं को बाहर निकालने का एक साधन हो सकती है। लेकिन इस प्रकार की अभिव्यक्ति प्राथमिक अथवा रचनात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। ये क्रियाशीलताएँ बालकों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक क्षेत्र प्रदान कर सकती हैं और इस प्रकार उन्हें जीवन की अनेक निराशाओं से बचा सकती हैं। इन क्रियाशीलताओं की सहायता से वह विस्तृत समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर पा सकता है और इस तरह उसकी संकीर्ण भावुकता, संकीर्ण विचारशीलता, के लिए विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि बालकों को समाज के लिए उपयुक्त बनाने के लिए हमें उनको क्रियाशीलता के लिए अधिकाधिक अवसर

देना चाहिये। यही नहीं, शिक्षा क्षेत्र में भी इस क्रियाशीलता को अधिकाधिक समाविष्ट करना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचन से हमें यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अध्ययन केवल मानव संघर्ष के उन तथ्यों तक ही सीमित नहीं रहता जिसकी सहायता से सहयोगपूर्ण कार्य करने की अन्तर्दृष्टि और युद्ध के प्रभावों के संबंध में अनुभव प्राप्त होते हैं वरन् इसकी सहायता से हमें वे अनुभव और स्थितियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं जिनकी सहायता से सौहार्द की भावना और दृष्टिकोण निर्मित हो सकते हैं, और इन भावनाओं और दृष्टिकोणों का निर्माण उन घृणित व्यक्तियों के खर्चे पर होता है जो समाज में ध्वंस और अधिकार लोलुपता के आधार पर कार्य करते हैं। इस प्रकार जब हम सामाजिक अध्ययन के संबंध में विचार करते हैं तब हमें यह प्रतीत होता है कि इसकी शिक्षा की व्यवस्था द्वारा शिक्षालय विश्व शान्ति के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं।

सामाजिक अध्ययन का क्रियात्मक रूप

सामाजिक अध्ययन के संबंध में हमने सिद्धान्त रूप में जो कुछ पढ़ा है उसको क्रियात्मक रूप में किस प्रकार परिणत करेंगे इस संबंध में हमें विचार कर लेना चाहिये, सिद्धान्तों की व्यावहारिकता का जब तक ज्ञान नहीं होगा तब तक हम सामाजिक अध्ययन को न तो अच्छी तरह समझ सकेंगे और न उसका उचित उपयोग ही कर सकेंगे। सामाजिक अध्ययन का क्या प्राथमिक रूप होना चाहिये, इसका एक उदाहरण हम लेंगे और यह विचार करेंगे कि उसको किस प्रकार व्यवहार में लाया जाय। उदाहरण के लिए हम सामाजिक अध्ययन के लिए अपने नगर काशी को ले लें। इस नगर के सामाजिक अध्ययन के लिए हमें निम्न बातों पर विचार करना चाहिये।

१—स्थान जहाँ हम रहते हैं उसका परिचय और इतिहास।

२—हमारे मुहल्ले अथवा स्थान के बड़े आदमियों का परिचय।

३—काशी नगरी का प्राचीन इतिहास ।

४—नगर के प्राचीन महापुरुषों के जीवन चरित्र ।

५—नगर के वर्तमान विशिष्ट नागरिकों का जीवन चरित्र ।

६—काशी नगरी के पुरातन और अर्वाचीन विकास का कारण तथा उसका इतिहास । इन विकासों को विभिन्न मानचित्रों द्वारा दिखलाया जाना चाहिये ।

७—काशी का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व ।

८—शिक्षा केन्द्र के रूप में काशी का इतिहास ।

९—काशी के तीर्थ स्थान और उनके निर्माण तथा ध्वंस के इतिहास ।

१०—नगर के आमोद-प्रमोद के साधन । प्राचीन और अर्वाचीन आमोद-प्रमोद के साधनों का इतिहास ।

११—नगर में सामाजिक सेवा की संस्थाओं का इतिहास तथा उनके कार्य क्षेत्र की सीमाएँ ।

१२—काशी नगरी के शासन की व्यवस्था ।

१३—नगरी की आय का साधन ।

१४—नगरी में सुधार की आवश्यकताएँ ।

१५—सुधार को कार्यान्वित करने के सुभाव ।

१६—नगर का महत्व ।

इस सामाजिक अध्ययन को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देना चाहिये । उसके बाद जिस विषय से जिन बालकों को रुचि हो वही विषय उस समूह के विद्यार्थियों को दे देना तथा, उस समूह का एक मुखिया भी नियुक्त कर देना चाहिये । पूरे सामाजिक कार्य को भिन्न-भिन्न समूहों में बाँट देना चाहिये । शिक्षक केवल मार्गप्रदर्शक और विभिन्न सूत्रों में संबंध स्थापित करनेवाला एक मुखिया ही रहेगा । विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण स्थानों का भ्रमण करने का अवसर दिया जाना चाहिये । नगर की शासन व्यवस्था, उसकी आय आदि के संबंध में ठीक ज्ञान प्राप्त हो सके इसका निरन्तर ध्यान रखना चाहिये । अधिकारी व्यक्तियों द्वारा ही इन जिज्ञासाओं

की पूर्ति होनी चाहिये। जो भी सूचनाएँ मौखिक रूप से प्राप्त हों उन्हें तथा आवश्यक बातों को एक मान चित्र पर निरन्तर अंकित करते रहना चाहिये। जब सब विद्यार्थियों के कार्य क्षेत्र का कार्य समाप्त हो जाय तब उनको एक साथ संबन्धित कर देना चाहिये। इस प्रकार जो साहित्य निर्मित होगा वह विद्यार्थियों के बड़े काम का होगा और यथावसर आवश्यकता पड़ने पर वे इनसे अनेक प्रकार की सहायता ले सकते हैं। अनुमान है कि लड़के यदि सप्ताह में चार घंटे इस कार्य को करें तो एक मास में सामाजिक अध्ययन का यह कार्य पूरा हो जायगा।

ऐसे विषयों में लड़कों की रुचि भी होती है। यही नहीं यदि बालकों को ऐसे कार्यों में थोड़ा भी आनन्द प्राप्त हो जाय तो वे दिन-रात एक कर अपना काम समाप्त कर डालेंगे। दूसरे विषय के अध्यापकों को भी ऐसे कार्यों से सहायता प्राप्त हो सकती है। भाषा शिक्षक अपनी भाषा के अध्ययन-अध्यापन में इस सामाजिक अध्ययन के कार्य का उपयोग कर सकता है। कला का अध्यापक मान चित्रों के निर्माण में सहायक हो सकता है। आय आदि का लेखा-जोखा तैयार करने में गणित का अध्यापक सहायक हो सकता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन के साथ अन्य विषयों का भी भलीभाँति सहयोग हो सकता है।

चौथा अध्याय

जीवन में प्रेरणा का महत्व

अन्य विषयों की अपेक्षा यदि सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम को हमें अधिक रचनात्मक और उपयोगी बनाना है तो हमें कुछ बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। हमें उस शक्ति का, उन तत्वों का, अपने पाठ्यक्रम में समावेश करना होगा जिनके द्वारा बालकों को स्वतः कार्य करने की इच्छा और प्रेरणा प्राप्त होती है। जब तक कार्य के प्रति स्वेच्छा की, प्रेरणा की, भावना नहीं होती तब तक कार्य आनन्द नहीं प्रदान करता। संसार में केवल एक ही चरम कोटि की शक्ति है जो जीवन में उद्योग की, और क्षमता की, शक्ति प्रदान करती है और उसी शक्ति के उपयोग द्वारा ही शिक्षा अथवा ज्ञानार्जन का कार्य हो सकता है। वह शक्ति है बालक के ब्रह्म—आत्मा—की शक्ति। यही आत्मा अथवा ब्रह्म ही कार्य के लिए वास्तविक प्रेरणा प्रदान कर सकता है। अध्यापक की कार्य कुशलता, पाठ्यक्रम के प्रकार, सहायता और सहयोग की तैयारी, वातावरण और बालकों के साथ व्यवहार करने के कौशल का उपयोग, केवल इसी लिए होता है, और उनकी विशेषता केवल इसी में है कि वे अपने कौशल द्वारा बालक अथवा शिक्षार्थी की बहुमुखी विशृंखलित शक्ति को संघटित कर दें। अतः सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के निर्माण के समय हमें यह ध्येय लेकर कार्य करना चाहिये कि हमें उन सभी तत्वों और प्रभावों का उपयोग करना है जिनकी सहायता से एक युवक के जीवन में प्रेरणा उत्पन्न की जा सके।

प्रेरणा उत्पन्न करने के मान्य साधन

परम्परा से, तथा जीवन के साधारण अनुभवों द्वारा, हमें उन बातों का सामान्य ज्ञान है जिसके द्वारा मनुष्य को कार्य करने की तथा किसी

क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है। लोगों की ऐसी धारणा है कि भय और प्रीति के द्वारा अथवा दण्ड या पुरस्कार के द्वारा हम, लोगों को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं। या तो दण्ड देकर या किसी को पुरस्कार देकर ही कार्य लिया जा सकता है। यदि आप इन दोनों साधनों का उपयोग न करें तो काम करने के लिए कोई तैयार न होगा। इस सिद्धान्त को हम कुछ सीमा तक ठीक मान सकते हैं। कार्य की प्रेरणा के लिए दण्ड और पुरस्कार ही साधन हैं और इनके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है, यह बात ठीक नहीं। हम इस सिद्धान्त को न तो पूर्ण मान सकते हैं और न प्रेरणा प्रदान करने का कोई महत्वपूर्ण साधन ही स्वीकार कर सकते हैं। कुछ सीमा तक इनका उपयोग होता चला आ रहा है यह बात अवश्य सत्य है। लेकिन वर्तमान मनो-वैज्ञानिक अनुसंधानों का कहना है कि दण्ड और पुरस्कार के सिद्धान्त रचनात्मक क्रियाशीलता उत्पन्न करने में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बातों और तत्वों की उपेक्षा करते हैं जिनका उपयोग कर मनुष्य की क्षमता का और भी अधिक विकास किया जा सकता है और उनकी क्षमता को, उनकी प्रेरणा को, तीव्र से तीव्रतर किया जा सकता है। उन तत्वों के उपयोग के अभाव में, और उस स्थिति में जब कि मनुष्य की रचनात्मक शक्ति का पूर्णरूप से संघटन नहीं किया गया है, तब वह कार्य कुशलता नहीं प्राप्त की जा सकती जिसकी समाज को अपेक्षा है। एक व्यक्ति जिसकी रचनात्मक शक्ति का संघटन नहीं किया गया है अथवा जिसकी उन बातों की उपेक्षा की गयी है, जिसके द्वारा प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं, वह जीवन में साधारण मान दण्ड के अनुसार भी प्रगति नहीं कर सकता।

औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में पुरस्कार और दण्ड के सिद्धान्त के संबंध में पर्याप्त रूप से खोजपूर्ण कार्य हुए हैं। वहाँ देखा गया है कि एक ही प्रकार के कार्य करनेवाले, और एक ही प्रकार के दण्ड और पुरस्कार पानेवाले तथा समान स्थिति की बात से अवगत, मजदूरों की कार्यक्षमता में महान अन्तर आ जाता है, यदि उन्हें इस बात का ज्ञान हो जाय

है कि उनकी क्रियाशीलता का महत्व है और उनके बिना वह काम नहीं हो सकता। यदि हम एक समूह के मजदूरों के प्रति अधिक सहानुभूति दिखलाने लगे, यदि हम उनके साथ मानवोचित व्यवहार करने लगे तो उनकी कार्यक्षमता द्विगुणित हो उठती है। यदि कार्य में रुचि उत्पन्न हो जाय तो कार्य प्रणाली में बड़ा अन्तर हो जाता है। कार्य में अधिकाधिक रुचि उत्पन्न करने का यत्न, मानवोचित व्यवहार, सहानुभूति का उपयोग और कार्य को महत्व प्रदान करने की बातें कुछ ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं जिनका उपयोग हम जीवन के विस्तृत क्षेत्र में भी कर सकते हैं। इनका उपयोग नैतिकता के स्तर को ऊँचा करने के लिए भी किया जा सकता है। सेनाओं के संघटन के अवसर पर इनकी सहायता से हम सिपाहियों से अधिकाधिक कार्य ले सकते हैं। अयोग्य तथा पिछड़े बच्चों के लिए जब हम इन सिद्धान्तों का उपयोग करते हैं तब उनकी प्रगति बड़ी तीव्र हो उठती है। वे अपनी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। अतः सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के निर्माण के समय हमें इन बातों का सदा ध्यान रखना चाहिये। इन सिद्धान्तों की सहायता से सामाजिक अध्ययन का कार्य बड़े ही सुचारु रूप से कार्यान्वित किया जा सकता है।

पुरस्कार और दण्ड का सिद्धान्त अपूर्ण ही नहीं बल्कि घातक भी है। इस सिद्धान्त का संघटन मनोवैज्ञानिक आधार पर नहीं हुआ है। मनो-विज्ञान संबंधी खोज ने, अनुसंधानों ने, यह सिद्ध किया है कि साधारणतया मनुष्य आलसी अथवा प्रमादी नहीं होता। स्वभावतया, सहज और स्वाभाविक रूप में वह रचनात्मक होता है तथा जीवन में सफलता प्राप्त करने की भावना का उसमें पूर्ण उत्साह रहता है। बालक प्रयोगों के लिए तथा अपनी क्षमता सिद्ध करने के लिए आतुर रहते हैं। वे अपनी सफलताओं द्वारा समाज में स्थान पाने के लिए तथा अपना स्थान बनाने के लिए बड़े ही उत्सुक रहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो बच्चे कार्य करने में कभी लज्जालु नहीं होते और न किसी काम में उन्हें भँप मालूम होती

कि प्रेरणा प्रदान करने के क्या साधन हैं ? युवकों को कैसे प्रेरणा प्रदान की जाय ? युवकों को किन बातों से प्रेरणा प्राप्त होती है इसकी पूरी तालिका बना सकना संभव नहीं । क्योंकि मानव एक ऐसा प्राणी है जिसके अंतस् का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकना असंभव है । उसका मन एक ऐसी घाटी है जिसकी सम्पूर्ण सीमाओं का संस्पर्श कर सकना विज्ञान का काम नहीं । कोई भी वाह्य यंत्र उसकी आन्तरिक भावनाओं का यथावत रूप निश्चित नहीं कर सकता । ये बातें तो केवल अनुभव और अनुभूतियों के द्वारा प्राप्त हो सकती हैं । समाज की परम्पराओं ने तथा उसके बीच रहने वाले प्रज्ञायुक्त तथा प्रबुद्ध महानुभावों ने इस संबंध में जो छानबीन की है उनके आधार पर कुछ ऐसे साधनों का वर्णन किया जा सकता है जिनकी सहायता से युवकों को प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं । ये कुछ साधारण साधन हैं जिनकी सहायता से प्राथमिक प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं । ये साधारण साधन, किशोरों में प्रेरणा उत्पन्न करने में बड़े ही प्रभावकर सिद्ध हो सकते हैं :—

१—निर्माण करने की इच्छा और सफलता प्राप्त करने की कामना और प्रबल स्पृहा ।

२—अपनी क्षमता की परीक्षा लेने और उसे विस्तृत करने की प्रवृत्ति ।

३—प्रौढ़ कहलाने और उनके गुणों की प्राप्ति की स्पृहा ।

४—जीवन के संबंध में एक आतुरता पूर्ण जिज्ञासा ।

५—एक व्यक्ति के रूप में दूसरों का स्नेह और सम्मान प्राप्ति की कामना ।

६—ख्याति प्राप्ति की आतुरता ।

७—साहचर्य प्राप्ति, और सहयोगी कहलाने की इच्छा ।

८—सामाजिक चेतनता की अधिकाधिक वृद्धि ।

९—विशिष्ट लोगों के साथ मिलकर किसी निश्चित ध्येय की प्राप्ति की स्पृहा ।

१०—किसी महत्वपूर्ण ध्येय के प्रति विश्वास ।

११—प्रशंसा सुनने की कामना ।

१२—मुखिया अथवा अग्रणी कहलाने की इच्छा ।

१३—अपनी धारणाओं को मान्यता प्राप्त कराने की इच्छा ।

प्रेरणा प्रदान करनेवाले इन तत्वों में पूर्णरूप से भिन्नता हो यह बात नहीं । यदि सूक्ष्मरूप से देखा जाय तो ऊपर दिये गये तत्वों में बहुत कुछ अन्योन्याश्रित संबंध है पर उनकी भिन्नता भी स्पष्ट है अतः उनका पृथक् रूप से वर्णन किया गया है । इस प्रकार पृथक् रखने से उनसे अधिक लाभ हो सकता है । प्रेरणा उत्पन्न करने वाले इन तत्वों के उपयोग से हम तत्काल लाभ देख सकते हैं । हमने यह देखा है कि जब शिन्हालय के विषयों को पृथक् रूप से रखकर, केवल विषयों के रूप में शिन्हा दी जाती है तब वे बच्चों की रुचि उत्पन्न करने और उस विषय में उनकी अभिरुचि बनाये रखने में असमर्थ सिद्ध होते हैं । इतिहास, भूगोल आदि की प्राचीन बातों का केवल पठन-पाठन हमारी जिज्ञासा का साधारण रूप से स्पर्श करते हैं । इनके ज्ञान द्वारा प्रौढ़ बन जाने की कल्पना बालक कभी-कभी भले ही कर लेता हो परन्तु इनके द्वारा उन्हें प्रेरणा नहीं प्राप्त होती । जब तक बालक अथवा युवक यह नहीं अनुभव करता कि एक कार्य में वह अपनी कार्यशीलता द्वारा सबको पछाड़ सकता है और अद्वितीय सिद्ध हो सकता है तथा सम्मान प्राप्त कर सकता है तब तक वह किसी नूतन कार्य में हाथ नहीं डालना चाहेगा, और यदि हाथ डालेगा भी तो शीघ्र ही उसकी रुचि का अन्त हो जायगा । ऐसी स्थितियों में जो लोग कार्य करते हैं उनमें से अधिकों का जीवन शुष्क हो जायगा और वे केवल पालतू कुत्ते की तरह आज्ञा पालन में ही अपनी इति कर्तव्यता समझने लगेंगे । यदि बालक का स्वभाव आत्माभिमानी हुआ तो वह विषय-स्थिति के प्रति विद्रोह भी कर सकता है । इसके विपरीत सामाजिक अध्ययन को यदि हम मानव जीवन की अनुभूतियों का एक मिश्रित अंश मानते हैं उसे बालकों के सामने पूर्णरूप से सम्मुख रखते

हैं तो इसका पूर्णतः भिन्न प्रभाव पड़ता है। इसका प्रधान कारण यह है कि विषय की पृथक्ता की संकीर्ण सीमाओं का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता और बालक को प्रेरणा प्रदान करनेवाली अनेक शक्तियाँ एक ही साथ प्राप्त हो जाती हैं। उनकी अनेक क्षेत्र की रचनात्मक शक्तियाँ एक साथ प्रेरित हो उठती हैं।

यही नहीं सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र इतना उदार है कि यह विभिन्न विषयों के अध्यापक के लिए भी रुचि प्रदान करता है। उसका प्रभाव अन्य विषयों पर भी पड़ता है। इस प्रभाव का प्रमुख कारण यह है कि अन्य विषयों का इसके साथ समन्वय—एकीकरण, होता है। साहित्य, कला, गणित, धार्मिक शिक्षा, विज्ञान आदि का समन्वय इसकी शिक्षा के साथ हो सकता है। अन्य विषयों के साथ भी समन्वय कठिन नहीं होता। सामाजिक अध्ययन तो प्रेरणा प्रदान करनेवाला अजस्र स्रोत है। जिस विषय के साथ उसका सम्पर्क हो जाता है उसमें क्रियाशीलता और रचनात्मकता आ जाती है। यही नहीं, यदि किसी विषय विशेष के अध्ययन के पूर्व बालक उस विषय के संबंध में सामाजिक अध्ययन के अवसर पर कुछ ज्ञान प्राप्त कर चुका है तो इससे बड़ा लाभ होता है। उस विषय विशेष के प्रति बालक बड़ी अभिरुचि दिखलाता है और उस विषय के अध्ययन के लिए उसे प्रेरणा मिलती है।

प्रेरणा प्रदान करनेवाले कुछ साधारण तथा मौलिक साधनों पर हमने विचार किया लेकिन इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण बातें हैं जिनका यदि ठीक से और अवसर के अनुरूप उपयोग किया जाय तो प्रेरक सिद्ध होते हैं। मनुष्य के स्वभाव में, प्रकृति में भिन्नता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें प्रेम के द्वारा उद्बोधित किया जा सकता है, कुछ लोग भिन्नता, वैचित्र्य और असाधारण वस्तुओं द्वारा उद्बोधन प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति काल्पनिक तथा कल्पना प्रधान प्रकृति के होते हैं उन्हें उन बातों से उद्बोधन प्राप्त होता है जो कल्पना को संतुष्ट कर सकें और उत्पन्न कर सकें। संसार में कुछ ऐसे प्रकृति के लोग होते हैं जिन्हें

जब चुनौतियाँ दी जाती हैं, जिन्हें जब उकसाया जाता है तब वे किसी कार्य के लिए उठ खड़े होते हैं। प्रकृति की भिन्नता के अनुरूप ही उद्बोधन की सामग्री की भिन्नता भी होती है। यदि इन भिन्न-भिन्न वस्तुओं का स्वभावानुसार उपयोग किया जाय तो इनकी सहायता से भी प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है। किसी भी विषय की शिक्षा इन बातों के मेल से अधिकाधिक आकर्षक हो जायगी।

सामाजिक अध्ययन की प्रमुख विशेषता

हमने जीवन में अनेक बार यह अनुभव किया है कि यदि किसी बालक अथवा युवक की हम भर्त्सना करते हैं अथवा उसका उपहास करते हैं तो वह तत्काल क्रुद्ध हो उठता है और अपनी रक्षा के लिए आक्रामकतात्मक हो उठता है। उसका व्यवहार बड़ा ही रूक्ष हो जाता है। लेकिन हमने कभी यह विचार नहीं किया है कि इस रूक्षता, उदण्डता की आड़ में एक अन्तर्निहित भावना होती है, वह भावना है अपने सुधार की। बालक कल्पना द्वारा अपनी सफलता, अपनी विजय, और अपने साथ मानव के सौजन्य पूर्ण व्यवहार की बातें सोचता है। ये अन्तर्निहित कल्पनाएँ बड़ी सूक्ष्म और हमारे अन्तर्जगत से संबंध रखनेवाली होती हैं। यदि किसी प्रकार हम बालक अथवा युवक की इन अन्तर्निहित कल्पनाओं और विचारों को वाह्य जगत के स्तर पर ला सकें और उनकी कल्पनाओं और आशाओं को साकार बना सकें तो इसके द्वारा हम उसकी शिक्षा की अद्वितीय व्यवस्था ही न कर सकेंगे वरन् हम अन्य क्षेत्रों में भी उसका अभूतपूर्व सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। केवल सामाजिक अध्ययन ही इन अन्तर्निहित भावनाओं को वाह्य जगत के साथ ला मिलाता है यह बात नहीं। इन आन्तरिक भावनाओं को वाह्य स्तर पर लाने का कार्य साहित्य, अभिनय कला, आदि भी बड़ी अच्छी तरह कर सकते हैं लेकिन थोड़ा सा इन दोनों विषयों में अन्तर भी है, वह अन्तर यह है कि सामाजिक अध्ययन का मानव जीवन, उसकी महत्वाकांक्षाओं, और

सफलताओं के साथ सीधा संबंध है। सामाजिक भावना की अभिव्यक्ति के लिए यह सहज और स्वाभाविक साधन है। इसकी सहायता से हमारी सामाजिक सफलताओं और असफलताओं की बातें तत्काल सम्मुख आ जाती हैं।

हमारा वातावरण और प्रेरणाएँ

समाज और शिक्षालय के वातावरण का बड़ा महत्व है। एक व्यक्ति अपने शिक्षालय और समाज के वातावरण के अनुरूप या तो विकसित होता चलता है या कुंठित होता जाता है। विद्यार्थी के शिक्षालय के जीवन पर सामाजिक वातावरण का और शिक्षालय के वातावरण का लाभप्रद तथा हानिप्रद दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है। यह ठीक है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र और मनस्वी रहना चाहता है। वह अपनी इच्छानुसार कार्य करना चाहता है लेकिन यह भी सही है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात का भी पता लगाने के लिए आतुर रहता है कि वह किसी समूह का, किसी समाज का, एक सदस्य है या नहीं, उस समाज में उसका कोई महत्व है या नहीं। साथ ही वह यह भी देखना चाहता है कि समाज उसका विश्वास करता है या नहीं और वह उस समाज पर भरोसा कर सकता है या नहीं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का यह प्रमुख और प्रधान तत्व है। वह निरन्तर इस बात का अनुभव करना चाहता है कि उसके कार्य में हस्तक्षेप करने वाला कोई नहीं। वह यह चाहता है कि उसके बड़े, उसके अधिकारी, उसके कार्यों में हस्तक्षेप न करें, पर साथ ही वह उनसे यह भी आश्वासन चाहता है कि यथावसर वे उसकी सहायता करते रहेंगे और पथ-प्रदर्शन के लिए सदा उनकी सहायता प्राप्त होती रहेगी। एक व्यक्ति निश्चित और व्यवस्थित जीवन के अन्तर्गत अथवा अपनी क्षमता के वशीभूत क्षेत्र के अन्तर्गत स्वतन्त्रता का अनुभव करना चाहता है और यह अनुभव करना चाहता है कि मित्र-मंडली अथवा समूह के बीच उसका भी एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। अतः इन प्रश्नों पर

सामाजिक अध्ययन के द्वारा सामाजिक वातावरण के निर्माण की बात सोचना अनर्गल नहीं है। उस स्थिति में जब कि प्रेरणाओं का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है तब इन बातों पर विचार करना अनुपयुक्त नहीं कहा जायगा।

शिक्षा संस्था में अथवा अन्य स्थान में भी जहाँ सामूहिक जीवन की प्रगति संतोषप्रद है और जहाँ सामूहिक जीवन को महत्व प्रदान किया गया है वहाँ का अध्ययन बालकों की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई बात उठा न रखेगा। लेकिन सामाजिक अध्ययन ऐसी स्थिति में स्वस्थ और उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने की विशेष क्षमता रखता है। इसका कारण यह है कि सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत पूरी कक्षा अथवा पूरा समूह अनेक घंटों तक अध्यापक और विद्यार्थियों के साथ एक साथ कार्य करता रहेगा। इस अवधि में वे एक साथ काम करते रहेंगे, एक साथ विचार विनिमय करते रहेंगे और अपने उपयोग की सामग्री का प्रकारांतर से संग्रह भी कर लेंगे। जब हम किसी काम को एक साथ मिलकर करते हैं तब इस प्रकार एक साथ काम करने से सामूहिक जीवन के प्रति सौहार्द और स्नेह की भावना जागरित होती है। इस प्रकार कार्य करने से सामूहिक जीवन में कटुता नहीं आती क्योंकि हमें एक दृष्टिकोण के साथ काम करने का ही नहीं वरन् दूसरों की प्रकृति को समझने का भी अवसर मिलता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन तथा सामूहिक जीवन की प्रणाली एक दूसरे के विकास के लिए सहायक सिद्ध होती हैं।

जब हम सामाजिक अध्ययन के संबंध में इस प्रकार दलील सामने रखते हैं तब इसका यह अर्थ नहीं है कि क्रियाशीलता, रचनात्मकता, सामूहिक जीवन अथवा, सामूहिक कार्य करने की प्रणाली, सामाजिक अध्ययन की बपौती है। नहीं यह बात नहीं है। सामाजिक अध्ययन के अभाव में केवल एक भेद उत्पन्न हो जाता है, और वह भेद है—विषयों की शिक्षा का संघर्ष। सामाजिक अध्ययन के अभाव में संभव है विभिन्न

विषयों के कार्यों में संघर्ष उत्पन्न हो जाय और इस प्रकार एक दूसरे विषय की उपेक्षा पर अन्य का विकास हो। इस प्रकार के संघर्ष का फल समूह पर भी पड़ेगा और आपस में कटुता और अप्रियता बढ़ सकती है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि उत्साहपूर्ण सामूहिक जीवन का विकास सामाजिक अध्ययन के समन्वित और संतुलित पाठ्यक्रम के द्वारा बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ होता है।

उपहास और असफलताओं से बचने के साधन

सबसे बड़ी बात यह है कि एक बालक अथवा किशोर यह चाहता है कि उसका वातावरण मैत्री पूर्ण हो। उसकी सदा यह अभिलाषा रहती है कि आपसी संबंध सौहार्दपूर्ण रहे परन्तु साथ ही उसे अपने क्षेत्र में कार्य करने की पूरी स्वतन्त्रता रहे। वह यह नहीं चाहता कि उसके कार्य में कोई हस्तक्षेप करे। साथ ही वह यह भी चाहता है कि जीवन के संबंध में उसे प्रयोग करने की स्वतंत्रता रहे लेकिन यदि वह असफल हो जाय तो कोई उसका उपहास न करे और न उसे दण्ड दे। अपने को वह सामाजिक उपहास और प्रतारणाओं से बचाने के लिए उत्सुक रहता है। लेकिन वह यह भी अपेक्षा करता है कि अवसर पड़ने पर, सहायता की आवश्यकता होने पर, समाज से उसे अपने कार्य में सहायता भी प्राप्त हो जायगी। इन सब स्थितियों में यदि देखा जाय तो सामाजिक अध्ययन बड़ी अच्छी तरह से सहायता दे सकता है। विभिन्न विषयों के पृथक-पृथक अध्ययन, प्रयोगों की सीमाओं को संकीर्ण बना देते हैं। यही नहीं इन विषयों की स्वतन्त्र शिक्षा से एक बड़ा ही संकीर्ण वातावरण उत्पन्न होता है जिसमें प्रयोग के लिए कोई स्थान नहीं रहता। इन विषय-शिक्षाओं का निश्चित प्रतिफल होता है। यदि वे प्रतिफल नहीं प्राप्त हुए तो उस विषय की शिक्षा ही असफल समझी जायगी। इस तरह इन विभिन्न विषयों की पृथक शिक्षा से असफलता और असमर्थता ही उत्पन्न होती है। विभिन्न विषयों की पृथक रूप से दी गई शिक्षा युवकों के लिए

उत्साहवर्द्धक की अपेक्षा अनुत्साहवर्द्धक ही सिद्ध होती है। जिस विषय में जितनी ही विशेषज्ञता की भावना होती है उतनी ही उसमें संकीर्णता बढ़ती जाती है। सामाजिक अध्ययन की स्थिति ही भिन्न है। वह किसी सीमा के बंधन में नहीं बँधा है अतः उसके अन्तर्गत प्रयोग का असीम क्षेत्र है। इस प्रयोग के असीम क्षेत्र के साथ ही असफलताओं के लिए सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण भी प्राप्त होता है।

जीवन की असुखद अथवा अप्रिय वस्तुओं के क्षेत्र में ही बालक को रखना और यह कल्पना करना कि उसकी शिक्षा-दीक्षा ठीक हो जायगी उचित नहीं। यह लाभप्रद शिक्षा नहीं कही जा सकती। इस प्रकार के अप्रिय वातावरण से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। ऐसी शिक्षा का एक क्षण का अस्तित्व भी घातक है। बालक ऐसे समूहों की अपेक्षा करते हैं, ऐसे समाज की इच्छा करते हैं, जहाँ वे अपनी इच्छानुसार शान्ति पूर्वक बिना किसी आलोचना के, कार्य कर सकें। वे अपनी सुरक्षा के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते हैं, विशेषतः वे बच्चे जो मतिमंद हैं उनके लिए शिक्षालय और घर दोनों का वातावरण काटे खाता है। क्योंकि इन क्षेत्रों में उसे निरन्तर असफलता और निराशा ही प्राप्त होती है। वह निरन्तर इन वातावरणों से दूर भागना चाहता है। वह इन वातावरणों से इस लिए मुक्ति नहीं चाहता कि उसे काम ही न करना पड़े वरन् वह ऐसा वातावरण चाहता है जहाँ उसके साधारण से साधरण कार्य की प्रशंसा हो और जहाँ कोई उसे हतोत्साहित करने वाला न हो। उसे ऐसे वातावरण की आवश्यकता होती है जहाँ असफलता का केवल यही अर्थ होता है कि वह पुनः पूरे उत्साह के साथ उसी क्षेत्र में सफलता के लिए यत्न करे। जीवन में बच्चे को कभी भी हतोत्साहित न होने दें। एकबार यदि उसकी हिम्मत टूट गयी, यदि एकबार उसने अपनी हिम्मत खो दी तो उसका निश्चित रूप से सर्वनाश हो जायगा।

सामाजिक अध्ययन के संघटन की यह विशेषता है कि वह अपने संघटन में ही सामूहिक जीवन को महत्व देता है और उसका वातावरण

ही बालकों के निर्माण पर आश्रित है। इसके द्वारा बालकों को वह निराशा अथवा असफलता नहीं होती जो एक उस बालक को होती है जिसकी सम्पूर्ण शिक्षा संकीर्ण पुस्तकीय पाठ्यक्रम पर आश्रित है। सामाजिक शिक्षा के असीम क्षेत्र और संभवनाओं के अन्तर्गत एक मतिमंद बालक भी अपने लिए मार्ग प्राप्त कर लेता है। सामाजिक अध्ययन की यह विशेषता है कि बालक समूह में, समूह के लिए कार्य करते हुए, अपने लिए मार्ग प्राप्त कर लेता है।

सामाजिक-अध्ययन के पाठ्यक्रम की विशेषताएँ

सामाजिक अध्ययन-क्षेत्र के लिए हमें किस प्रकार प्रेरणा प्राप्त होती है इस संबंध में हमने पर्याप्त रूप से विचार किया। प्रेरणा के साधनों का कुछ स्पष्ट रूप भी हमारे सामने आया। इन रूपों के आधार पर हम सामाजिक अध्ययन के लिए कुछ ऐसी बातें निश्चित कर सकते हैं जिनका उपयोग हम योजना के रूप में कर सकते हैं और जो हमारी पथ निर्देशक हो सकती हैं। सामाजिक अध्ययन की योजना बनाते समय हमें कुछ बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। ये बातें योजना के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम बनाते समय हमें सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इस क्षेत्र के अध्ययन के लिए हम जो कुछ भी सामग्री निश्चित करें उसका बालक के अनुभव तथा अनुभूतियों से घनिष्ठ संबंध हो। जब तक सामग्री का संबंध बालक के अनुभव से न होगा तब तक उस पाठ्यक्रम के प्रति बालकों की आत्मीयता नहीं उत्पन्न होगी। सामाजिक अध्ययन की किसी भी योजना को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस योजना की सामग्री के प्रति बालकों की अपनत्व की भावना हो और उसके संबंध में कार्य करना वे अपना एक पवित्र कर्तव्य समझें।

सामाजिक अध्ययन की योजना अथवा पाठ्यक्रम की दूसरी विशेषता

है उसकी विविधता और रुचिरता। जब तक पाठ्यक्रम में विविधता और रुचिरता नहीं हैं तब तक वह विद्यार्थियों के लिए उत्साह वर्द्धक नहीं होगी। जब तक पाठ्यक्रम उत्साह वर्द्धक नहीं होगा तब तक उसके कार्यों में बालक स्वेच्छा से योग न देंगे और न उस क्षेत्र के कार्यों में रुचि ही दिखलाएँगे। इसलिए यह आवश्यक है कि सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम पर्याप्त रूप से रुचि उत्पन्न करनेवाला हो और उसमें विविधता भी हो।

तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सामाजिक अध्ययन की सामग्री में इतनी शक्ति होनी चाहिये कि वह बालक के जीवन संबंधी ज्ञान और कार्यों के संबंध में उसे अधिकाधिक नवीन बातें बतला सके। जिस जीवन को वह महत्वपूर्ण समझता है यदि उस जीवन के संबंध में सामाजिक अध्ययन द्वारा कोई सहायता नहीं प्राप्त होती तो सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम कभी भी सफल न होगा। सामाजिक अध्ययन का मुख्य ध्येय है मनुष्य को उसके जीवन की तैयारी के लिए अधिकाधिक ज्ञान और शक्ति प्रदान करना। यदि सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम यह कार्य नहीं करता तो उसका कोई महत्वपूर्ण उपयोग ही नहीं।

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की चौथी विशेषता यह होनी चाहिये कि वह वैयक्तिक और सामूहिक प्रयोग के लिए समान रूप से अवसर प्रदान करे। इन प्रयोगों के लिए अवसर प्रदान करना ही पर्याप्त न होगा। सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम का यह कर्तव्य होगा कि वह उनके वैयक्तिक और सामूहिक जीवन के प्रयोगों का इस रूप से संचालन करे कि उन्हें दोनों क्षेत्रों में सफलता प्राप्त हो।

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की पाँचवीं विशेषता यह होनी चाहिये कि वह विभिन्न प्रकार और स्तर की क्षमता वाले विद्यार्थियों के लिए समान रूप से अवसर प्रदान करे। जब तक विभिन्न क्षमता वाले लोगों को समान रूप से रचनात्मक कार्य करने का अवसर नहीं मिलेगा तब तक सामाजिक अध्ययन अपने ध्येय की पूर्ति नहीं कर सकेगा।

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के निर्माण के समय छठवीं बात जिसका ध्यान रखना चाहिये वह यह है कि छात्रों को प्रयोग करने के अधिकाधिक अवसर मिलें। जब तक छात्रों को प्रयोग करने के अवसर नहीं मिलेंगे तब तक उनमें साहसिकता नहीं आयेगी और जब तक साहसिकता न होगी तब तक वे जीवन की प्रत्येक स्थिति का 'सहृदयता और वीरतापूर्वक सामना नहीं कर सकेंगे। साहसिकता और प्रयोगात्मकता का अन्योन्याश्रित संबंध है। अतः सामाजिक पाठ्यक्रम को इन तत्वों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये।

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की सातवीं विशेषता यह होनी चाहिये कि उसके द्वारा बालकों की छिपी और दबी कामनाओं की पूर्ति हो। बालकों के हृदय की बहुत सी ऐसी कामनाएँ होती हैं जिनको वे कह नहीं पाते। वे निरन्तर असंतोष का अनुभव करते हैं परन्तु कोई ऐसा साधन उन्हें नहीं मिलता जिसके द्वारा उनकी अन्तर्निहित कामना व्यक्त होकर बाहर आ जाय और उसकी संतुष्टि की व्यवस्था हो सके। सामाजिक अध्ययन को निरन्तर इस बात का ध्यान रखना चाहिये और अपने पाठ्यक्रम का एक ध्येय समझना चाहिये कि वह बालकों की मूल महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करे।

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की अन्तिम परन्तु महत्वपूर्ण विशेषता यह होनी चाहिये कि वह छात्रों को उन क्षेत्रों में अभ्यास करने का पूर्ण अवसर प्रदान करे जिन क्षेत्रों में वे रुचि के साथ आनन्दपूर्वक कार्य करते हैं। यह अत्यन्त आवश्यक बात है। जब तक वे उस कार्य का निरन्तर अभ्यास नहीं करते रहेंगे तब तक वे अन्य सहयोगियों के लिए सुखद तथा रुचिकर वातावरण उत्पन्न नहीं कर सकेंगे। साथ ही अभ्यास के अभाव में उनके रचनात्मक अथवा निर्माणात्मक कार्यों का स्थायित्व भी संदिग्ध हो जायगा।

पाँचवाँ अध्याय

प्रेरणा उत्पन्न करने के प्रकार

जीवन में प्रेरणा का क्या महत्व है, उसके द्वारा मनुष्य की कार्य प्रणाली में क्या चमत्कारिक परिवर्तन हो जाता है इस संबंध में हमने विचार किया। साथ ही हमने उन प्राथमिक साधनों पर भी विचार किया जिनके द्वारा प्रेरक शक्तियों की उत्पत्ति होती है। इस अध्याय में हम उन साधनों पर विचार करेंगे जिनकी सहायता से किसी भी कार्य के प्रति रुचि को स्थायी बनाने का यत्न किया जा सकता है। इन प्रकारों के उपयोग से संभव है बालकों के जीवन में कार्यों के प्रति स्थायी रुचि उत्पन्न की जा सके। हमारी रुचि अधिकतर क्षणिक और अस्थायी होती हैं। हम एक काम को बड़े उत्साह से प्रारम्भ करते हैं। उसमें बड़ी रुचि दिखलाते हैं परन्तु धीरे-धीरे हमारा उत्साह क्षीण होता जाता है और हम काम को अपूर्ण स्थिति में ही छोड़कर पृथक हो जाते हैं। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि साधारणतया हमारे जीवन में उत्साह की वही स्थिति रहती है जो गदहे के रेंकने की होती है। गदहा बड़ी तीव्रता के साथ रेंकना प्रारंभ करता है। प्रारम्भिक अवस्था में वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है परन्तु धीरे-धीरे उसकी रेंकने की शक्ति इतनी क्षीण होती जाती है कि वह रेंक भी नहीं पाता। यही हाल हमारी रुचि का है। प्रश्न है कि यदि हमें संसार को सुखद बनाना है, जीवन में रचनात्मक शक्ति उत्पन्न करना है, तो हमें प्रेरक शक्तियों को स्थायित्व प्रदान करना होगा।

सामयिक बातों को महत्व दें

आज जीवन में समाचार पत्रों का बड़ा महत्व है। बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा नागरिक भी इतना तो प्रबुद्ध हो ही गया है कि वह अपने

आस-पास की बातों को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इस जिज्ञासा को शान्त करने का प्रधान साधन है समाचार पत्र। इन समाचार पत्रों के महत्वपूर्ण समाचार, आपस में चलनेवाली महत्वपूर्ण वार्ता, आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जिनको हम बालकों के सामाजिक अध्ययन की सामग्री बना सकते हैं। इन सामाजिक बातों के आधार पर ही हम विचार विनिमय, अनुसंधान, अथवा कार्य, प्रारम्भ कर सकते हैं। ये सामाजिक वार्ता एक प्रकार से हमारी क्रियाशीलता की पीठिका होंगी। वास्तव में यदि देखा जाय तो किसी भी समाचार के आधार पर सामाजिक अध्ययन की व्यवस्था की जा सकती है। कभी-कभी तो इतने महत्वपूर्ण समाचार प्राप्त हो जाते हैं कि उनके आधार पर सामाजिक अध्ययन का पाठ कई दिनों तक चलता रह सकता है। ऐसे विषयों के प्रति बालकों की रुचि का एक कारण है। वातावरण में ही ऐसी बातों की प्रधानता हो जाती है। लोग उसी दृष्टिकोण से कुछ समय तक सोचते समझते रहते हैं इसलिए घर तथा घर से बाहर भी बालकों को ऐसे सामयिक विषयों के संबंध में अध्ययन करने का सुखद अवसर प्राप्त हो जाता है तथा वे अत्यन्त रुचि के साथ उस विषय का पूर्णरूप से अध्ययन करते हैं। वे तब तक उस कार्य को नहीं छोड़ते जब तक उनका कार्य पूरा न हो जाय।

बालकों की रुचि की वस्तुएँ

हमारे घरों के बच्चे प्रारम्भ में आस-पास की वस्तुओं के प्रति ही आकर्षित रहते हैं, इसका कारण यह है कि उन्हें विस्तृत क्षेत्र का कुछ ज्ञान नहीं रहता। आस-पास की वस्तुओं के संबंध में वे बराबर देखते-सुनते हैं अतः उनके प्रति आकर्षण रहना स्वाभाविक है। लेकिन कुछ लोगों की धारणा है कि मन्द बुद्धि के बालक अपने आस-पास की वस्तुओं के प्रति इसलिए आकर्षित रहते हैं क्योंकि उसका उनके साथ घनिष्ठ संबंध है। दूर की वस्तुओं के साथ भी उनका संबंध रहता है। उसके प्रति भी वे आकर्षण का अनुभव करते हैं यदि उचित रूप में वे बातें उनके

सामने रखी जायँ । विचित्रता और भड़कीली वस्तुओं के प्रति आकर्षित होना बच्चों का स्वाभाविक गुण है । लड़के गली में होनेवाली घटनाओं के प्रति जितने आकर्षित रहते हैं उतने ही वे मानव जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं के प्रति भी रुचि प्रदर्शित करते हैं । मानव की सभ्यता के जन्मकाल की जब बातें बच्चों को बतलायी जाती हैं तब वे बड़ी उत्सुकता के साथ उन बातों को सुनते हैं । इन प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि बच्चों को स्थानीय तथा दूर, दोनों स्थानों की वस्तुओं के प्रति आकर्षण है । प्रश्न यह है कि हम इन बातों को किस रूप में उनके सम्मुख रखते हैं । यदि दोनों प्रकार का उचित रूप से उपयोग किया जाय तो प्रेरक शक्तियों का विकास अत्यधिक सन्तोषप्रद होता है । ऐसी स्थिति में हम बच्चों को वर्तमान तथा भूतकाल की स्थिति का बड़ी स्पष्टता से ज्ञान करा सकेंगे । उन्हें बड़ी सरलता से सभ्यता की प्रारम्भिक स्थिति और विकसित स्थिति का अन्तर प्रतीत हो जायगा । वर्तमान की सहायता से भूतकाल का वर्णन और भूतकाल के आधार पर वर्तमान का वर्णन बड़ा ही रोचक सिद्ध हो सकता है । इस प्रकार वर्तमान जीवन से भूतकाल के जीवन का सम्पर्क स्थापित करना बड़ा ही लाभप्रद होता है । यह प्रणाली ऐसी है कि इसके द्वारा इतिहास के शिक्षण में वैयक्तिक अनुराग उत्पन्न किया जा सकता है । बालक को यह अनुभव करने का अवसर मिल सकता है कि वह किसी दूसरे के विषय में नहीं बरन् अपने जीवन के संबंध में रुचिकर बातें पढ़ रहा है । भूत और वर्तमानकाल की सीमाओं का स्पर्श, विषय को अत्यन्त रोचक बना सकता है और यह रोचकता निरन्तर बनाये रखा जा सकता है । उदाहरण के लिए आज के युग में हमारे देश के लिए अहिंसा का क्या महत्व रहा है यह बतलाते हुए हम बालकों को अशोक के समय में बड़ी सुन्दरता के साथ भ्रमण करा सकते हैं । अशोक की अहिंसा का, उसके अच्छे नियमों का, कुछ प्रभाव तो हमारे तथा हमारे परिवार के जीवन पर भी पड़ा है । इस प्रकार के पाठों द्वारा हम स्थायी रुचि उत्पन्न कर सकते हैं ।

समीप की तथा दूर की वस्तुओं के संबंध में भी हम इसी प्रकार विचार कर सकते हैं। तुलनात्मक अध्ययन रुचि उत्पन्न करने में बड़ा सहायक होता है। उदाहरण के लिए जिस समय हम अपने देश की रहन-सहन के संबंध में बात-चीत कर रहे हों उस समय यदि किसी दूसरे देश की रहन-सहन के संबंध में भी बात-चीत करें तो बालकों को बड़ा आनन्द आयेगा। जिस समय अपने देश के शिष्टाचार के संबंध में हम बतला रहे हों उस समय अन्य देशों के शिष्टाचार की बातें बड़े ही मनोरंजक रीति से बतलायी जा सकती हैं। इस तरह हम कुछ अनुसंधान की रुचि भी उत्पन्न कर सकते हैं। किस प्रकार किसी प्रथा का विकास हुआ, किस प्रकार दण्ड-प्रणाम की प्रणाली का विभिन्न देशों में जन्म हुआ, आदि ऐसी मनोरंजक बातें हैं जो बच्चों में स्थायी रुचि उत्पन्न करने में पूर्णतः समर्थ होती हैं। इनसे एक लाभ यह भी होता है कि बालकों को भूत और वर्तमान तथा समीपता और दूरी का संबंध भी ज्ञात हो जाता है।

इसी प्रकार जब हम युद्ध और शान्ति के संबंध में बात-चीत करते हों तब उस समय हम इन युद्धों के कारणों और इन युद्धों की समस्या पर हमारे देश के महापुरुषों ने किस प्रकार विजय प्राप्त की इन बातों पर भी विचार कर सकते हैं। इन युद्धों का एक देश के लिए कितना अहितकर परिणाम होता है इसका उदाहरण हम जर्मनी, जापान आदि देशों की स्थिति से दे सकते हैं। नैतिकता की सहायता से, प्रेम और अहिंसा के उपयोग द्वारा, किस रीति से देश में शांति तथा सुख स्थापित हो सकता है इसकी वर्तमान तथा भूतकाल के उदाहरणों द्वारा भी शिक्षा दी जा सकती है। यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक अध्यापक के लिए तुलना का बड़ा विशिष्ट महत्व है। प्रत्येक अध्यापक तुलनात्मक रीतियों का उपयोग करता है। परन्तु केवल अपने पक्ष के कथन और पुष्टि के लिए इसका प्रयोग वह करता चला आ रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि वह तुलनात्मक रीति का सम्पूर्ण अध्ययन की सामग्री के लिए

उपयोग करे । सामाजिक अध्ययन की यही विशेषता है कि उसके पाठ्य-क्रम में सम्पूर्ण शिक्षा सामग्री के अध्ययन के लिए तुलनात्मक रीति का उपयोग किया जा सकता है ।

विकास क्रम का उपयोग

हमारी सभ्यता का, हमारे समाज का, क्रमिक विकास हुआ है । यह सभ्यता एक दिन में नहीं, वरन् युगों के परिश्रम के परिणाम स्वरूप निर्मित हुई है । इस विकास की कहानी में बड़ी रोचकता है । आज हम कपड़े पहनते हैं, पके पकाये अन्न और बढ़िया स्वादिष्ट मिठाइयाँ आदि खाते हैं इनका भी तो क्रमिक विकास हुआ है । जब हम किसी वस्तु के क्रमिक विकास के संबंध में विचार करते हैं तब वह एक मनोरंजक कहानी हो जाती है । इस कहानी में बड़ी साहसिकता है और इसके लिए हमारे देश के तथा अन्य देश के लोगों ने भी अनेक प्रकार के प्रयत्न किये हैं । इन प्रयत्नों की कथा बड़ी रोचक है । बालकों को इन कथाओं से बड़ा आनन्द मिलता है । यदि इन्हीं विकास की बातों को हम पृथक् अथवा असम्बद्ध रूप में कहें तो उसमें शुष्कता होना स्वाभाविक है । लेकिन यदि उन्हीं बातों को एक शृंखला, में जीवन की एक स्थिति में, रखकर कहा जाय तो उसमें सरसता आती है । जब बालक को इस क्रमिक विकास का अध्ययन करते समय अन्त में यह ज्ञान होता है कि उस विकास क्रम की वह भी एक अन्तिम कड़ी है तब उसका हृदय प्रसन्नता से नाँच उठता है । दूसरी बात यह है कि भूत और वर्तमान का इस प्रकार समन्वित अध्ययन, बालकों को अपने जीवन के साथ भविष्य का संबंध भी स्पष्ट करता है । वे यह अनुभव करने लगते हैं कि उनका भविष्य के साथ क्या संबंध है । इस कल्पना के द्वारा इन्हें भविष्य की रूपरेखा का ज्ञान होता है और इस प्रकार का ज्ञान जीवन में प्रवेश करने वाले सभी युवक के लिए उत्साहप्रद होता है ।

असाधारण तथा चकाचौंध पूर्ण बातों का महत्त्व

असाधारण तथा चकाचौंध पूर्ण बातें बड़ी आकर्षक होती हैं। बच्चे उनको सुनकर, पढ़कर, बड़े ही आकर्षित होते हैं। जब हम किसी बच्चे से कहते हैं कि कोरिया में लड़ाई हो रही है इसी से यहाँ वस्तुएँ महँगी हो गई हैं तब तत्काल वह आश्चर्य चकित हो जाता है और इन कारणों और प्रभावों की शृंखला के संबंध में अनुसंधान करने के लिए आतुर हो उठता है जो इस असाधारण कथन के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार की असाधारणता के आकर्षण का कारण यह है कि ये सामाजिक तथा जीवन से संबंध रखनेवाली होती हैं। इस असाधारण घटना के निम्नलिखित कारण और प्रभाव हो सकते हैं। कोरिया के युद्ध के कारण आतंक, लोगों में अरक्षितता की भावना, संग्रह कर वस्तुओं के रखने की प्रवृत्ति, बाहर से निर्यात के साधनों में कमी, लड़ाई बढ़ने पर वस्तुओं को अधिक मूल्य पर बेचने की इच्छा से वस्तुओं को छिपा रखने की आदत, ये सब ऐसी बातें हैं जिनके कारण महँगी के कारण और प्रभाव सिद्ध किये जा सकते हैं। इस महँगी के कारण जीवन के स्तर में जो भिन्नता उत्पन्न होती है उसके संबंध में विचार, लोगों को दैनिक जीवन के उपयोग की वस्तुओं के न मिलने से क्या कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उनपर विचार विनिमय करना, ये बातें साधारण कारण और प्रभाव से संबंध रखती हैं। जब बालक इन बातों को भलीभाँति समझता है तब वह इनके संबंध की और बातों का पता लगाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की असाधारण बातों को सामाजिक अध्ययन के पाठ की एक पीठिका बना सकते हैं अथवा इस प्रकार की समस्याएँ बच्चों को दी जा सकती हैं और वे इनके संबंध में छानबीन कर सकते हैं। इस प्रकार के कार्य सामाजिक अध्ययन के संबंध में अभ्यास के कार्य होंगे। कुछ अध्यापकों और शिक्षा शास्त्रियों का यह विचार है कि इस प्रकार कार्य के संबंध में छानबीन और अनुसंधान का कार्य प्रबुद्ध और प्रखर विद्यार्थी

ही कर सकते हैं । लेकिन ऐसी बात नहीं है । यदि किसी विषय की बातों का संबंधित रूप से अध्ययन कराया जाता है तो उसका प्रभाव निश्चित रूप से अच्छा पड़ता है । इस प्रकार के संबद्ध अध्ययन द्वारा पढ़ी गयी बातें स्मरण भी रहती हैं ।

वैयक्तिकता का सतर्कता पूर्ण उपयोग

इतिहास, भूगोल या साहित्य की बातों का जब हम बच्चे के जीवन से संबंध स्थापित करने की बात कहते हैं तब उसको भलीभाँति समझ लेना चाहिये । इस सिद्धान्त का दुरुपयोग भी हो सकता है अतः इसमें सतर्कता अपेक्षित है । इतिहास, भूगोल अथवा अन्य साहित्यिक विषयों की शिक्षा का संबंध वैयक्तिक जीवन से हो सकता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इन विषयों के पूरे पाठ्यक्रम का बच्चे के जीवन को केन्द्र बनाकर उपयोग किया जाय । हम यह भूल जाते हैं कि जिस प्रकार बालक अपने जीवन से अभिरुचि रखता है उसी प्रकार अपने इतिहास के महापुरुषों और बड़े-बड़े लड़ाकुओं की कहानी से भी उसे उत्साह और साहस प्राप्त होता है । जिस प्रकार वह अपने जीवन के प्रति रुचि रखता है उसी प्रकार इन लोगों की बातों को भी जानने के लिए उत्सुक रहता है । वैयक्तिक जीवन से संबंध स्थापित कर इन विषयों की शिक्षा देना एक जटिल कार्य है । साधारणतया हम इसकी जटिलता को समझ नहीं पाते । इतिहास, भूगोल अथवा साहित्य की बातों को जीवन से संबद्ध कर सजीव बनाना बड़े महत्व की बात है, क्योंकि इसके द्वारा साधारण पाठक के अनुभव का संबंध अध्ययन सामग्री से हो जाता है और इस प्रकार दोनों के जीवन का साधारण स्तर पर संबंध स्थापित होता है । इस प्रकार की व्यवस्था से मानवता की भावना जागरित होती है । हम पुराने महापुरुषों को अपना आत्मीय समझने लगते हैं । परन्तु इन महान चरित्रों के अध्ययन का केवल एक ही ध्येय नहीं है । आत्मीयता की भावना उत्पन्न करने के अतिरिक्त भी उनके जीवन के अध्ययन का कुछ

महत्वपूर्ण ध्येय है जो उनके व्यक्तित्व से ही पूर्ण हो सकता है। वह ध्येय है वीरों का आदर तथा वीरों के समान कार्य करने की भावना उत्पन्न करना। वे महान चरित्र अथवा व्यक्ति, जो वीर पूजा की प्रवृत्ति को संतुष्ट करते हैं, उनका जीवन पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। लेकिन इस प्रकार वे चरित्रों से भी अधिक उन व्यक्तियों के चरित्रों का हमारे जीवन पर और भी अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है जो कठिनाइयों से लड़भिड़कर अपना मार्ग बनाते हैं और कठिनाइयों को जीतकर मानव दुर्बलताओं पर विजय पाते हैं। इस प्रकार हमारे सामने एक व्यक्तित्व के तीन रूप सम्मुख आते हैं। पहले प्रकार के अध्ययन में मनुष्य अपने स्वभाव का अनुभव करता है। उस व्यक्तित्व में अपना रूप देखता है। दूसरे प्रकार के अध्ययन में उसके आदर्श का अहमत्व सामने आता है और तीसरे प्रकार के अध्ययन में उसे अपनी दुर्बलता और उसपर विजय प्राप्त करने की क्षमता का ज्ञान होता है। इसी प्रकार अनेक प्रकार के व्यक्तित्वों का उन्नयन किया जा सकता है और उनके द्वारा विभिन्न आदर्शों की पूर्ति का कार्य किया जा सकता है। बच्चे मानव जाति में, मानव जाति के साहसिक कार्यों में, पूर्णरूप से रुचि रखते हैं। उन्हें इनके द्वारा अनेक प्रकार के आकर्षण प्राप्त होते हैं। परन्तु यदि इस स्वाभाविक आकर्षण के साथ हम बालकों के आत्म तत्व को योग करा दें तो इसकी सहायता से पाठ्यक्रम के साधारण से साधारण विषय में भी नवीन ज्योति का संचार हो जाता है। उस वस्तु में एक अद्भुत आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। यही नहीं इस प्रकार इस आत्मीयता की भावना के फलस्वरूप उस व्यक्ति की शिक्षा का अनुभव भी अधिक बढ़ जाता है। साथ ही इस प्रकार के व्यक्तित्वों के उन्नयन से हमें वह महान प्रेरणा प्राप्त होती है जिसके लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है अथवा जिस ध्येय की प्राप्ति के लिए आज शिक्षा कार्य कर रही है।

एक और महत्वपूर्ण बात

साधारण जीवन में और साधारण रूप में भी हम यह देखते हैं कि एक

पहेली के प्रति हमारा बड़ा आकर्षण होता है। किसी भी बात को समस्या का रूप देने से एक विचित्र प्रकार का कुतुहल उत्पन्न हो जाता है। जब किसी काम में लड़के को रुचि उत्पन्न करानी हो तो यदि उससे यह कहा जाय 'भाई यह काम हमें बहुत तंग कर रहा है, इसके संबंध में तुम मेरी मदद करो।' तो इस प्रकार की बातों से हम तत्काल बालकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे अवसरों पर वे यह अनुभव करते हैं कि उनको तथा उनके प्रयत्नों को भी महत्व दिया जा रहा है। सामाजिक अध्ययन एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ समस्यात्मक कार्यों को बड़े प्रभावकर रूप में कार्यान्वित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, हम भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम को ले लें। इस विषय को हम कई भागों में विभाजित कर सकते हैं। इन भागों को समस्या का रूप प्रदान किया जा सकता है। इन बातों को साधारण तथ्यों के रूप में भी सामने रखा जा सकता है। लेकिन जब वे समस्या के रूप में सामने रखी जायँगी तो उनमें एक विचित्र आकर्षण उत्पन्न हो जायगा। समस्यात्मक प्रणाली विचार तथा रुचि के उत्पादन तथा वृद्धि में अत्यन्त सहायक होगी। ज्ञान प्राप्ति, अध्ययन का, यह प्रकार शिक्षा को मानवीय स्तर पर ला देता है। क्योंकि एक समस्या मनुष्य को कठिनाइयों का अनुभव कराती है और उन्हें साधारण जीवन के उन अनुभवों का ज्ञान होता है जो साधारण जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं। जीवन में हमें समय-समय पर स्थितियों द्वारा जो चुनौतियाँ दी जाती हैं उनका सामना करने का साहस भी इसके द्वारा हमें प्राप्त होता है। समस्यात्मक रूप से अध्ययन करने पर बालक को तार्किक रीति से विचार करने की तथा घटनाओं की शृंखला को तार्किक रूप से सामने रखने की शक्ति प्राप्त होती है।

हम नित्य प्रति इतिहास और इतिहास से सम्बद्ध अनेक समस्याएँ पढ़ते हैं। इन इतिहासों की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वे लोगों के कार्यों और घटनाओं का तो वर्णन करते हैं लेकिन उन बातों की पूर्ण रूप से

उपेक्षा करते हैं जिनके कारण लोगों ने वे कार्य किये अथवा जिनके कारण वे घटनाएँ घटीं। किन समस्याओं के कारण, किन स्थितियों के कारण, लोगों ने एक विशेष प्रकार से कार्य किया अथवा एक विशेष घटना घटी इस पर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक है। सामाजिक अध्ययन की यह विशेषता है कि वह इस भयंकर भूल का परिमार्जन कर सकने में पूर्ण रूप से समर्थ है।

शिक्षालयों का उचित सहयोग

कुछ लोगों की धारणा है कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षण प्रणाली द्वारा शिक्षालय एक तमाशा हो जायगा। उन्हें हम यह स्पष्ट रूप से बतला देना चाहते हैं कि सामाजिक अध्ययन का ध्येय शिक्षण ही है मन बहलाव नहीं। हाँ इसकी योजना और पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षार्थियों का मनोरंजन भी होता है। वे इसके पाठ्यक्रम में रस लेते हैं और इसके कार्यों में उन्हें तन्मयता प्राप्त होती है। शिक्षालय में बच्चों को ही काम करते देखकर, और उनके द्वारा ही सब काम होते देखकर, कुछ लोग यह समझते हैं कि शिक्षालय के कर्मचारी मुफ्त का पैसा ले रहे हैं। कुछ अभिभावक जब तक लड़कों को शिक्षालय में प्रसन्न और कार्यव्यस्त देखते हैं तब तक उन्हें संतोष होता है। लेकिन कुछ अभिभावक ऐसे भी हैं जो चाहते हैं कि उनके बच्चे सदा पुस्तकों में आँखें गड़ाये रहें। पुस्तकों में आँखें गड़ाये रहने को ही वे शिक्षा का प्रमुख कार्य समझते हैं। हमें ऐसे अभिभावकों से विशेष रूप से कुछ निवेदन करना है। इस निवेदन पर वे ध्यान दें। शिक्षालय का कार्य बालक की आत्मा के लिए, स्वतन्त्र विकास के लिए, अवसर प्रदान करना है। जो शिक्षालय यह नहीं करता वह अपना कर्तव्य पूरा नहीं करता। जो भी विषय विद्यार्थी के उत्साह और आनन्द का हनन करता है उसका उसकी आत्मा के लिए कोई महत्व नहीं। यदि अनुशासन की शिक्षा—विनय की भावना की शिक्षा नहीं—के लिए हम उसके कार्यों में रुद्धता उत्पन्न करते हैं और उसे अप्रिय

कार्य करने के लिए कहते हैं तो इससे यह लाभ अवश्य होगा कि वह नौ दिन में अढ़ाई कोस चलेगा और सम्पूर्ण विषय के प्रति उदासीनता का भाव उत्पन्न कर लेगा। परन्तु इससे किसी लाभ की अपेक्षा हम नहीं कर सकते।

इन बातों का ध्यान रखें

बच्चों के लिए पाठ्यक्रम बनाने के समय यदि नीचे लिखी बातों का ध्यान रखा जाय तो सामाजिक अध्ययन और बालक के विकास की दृष्टि से पाठ्यक्रम में संतुलन रखा जा सकता है। हमने शिक्षा व्यवस्था करते समय अब तक इस बात पर अत्यधिक ध्यान दिया है कि लड़का क्या सीखता है। हमने इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है कि वह उन बातों को किस प्रकार सीखता है। यदि देखा जाय तो बालक की सफलता में दूसरी बात ही महत्वपूर्ण है। हमें वह किस प्रकार सीखता है इस बात को महत्व देना चाहिये। क्योंकि यही तत्व उसके विकास के लिए उपयोगी होता है और इसी तत्व की सहायता से वह मनुष्य के रूप में विकसित होता है।

शिक्षालय का यह कर्तव्य है कि वह बालक को उन सम्पूर्ण बातों की शिक्षा दे जिसकी सहायता से वह आधुनिक विश्व में उन शक्तियों से सम्पन्न हो जाय जिनकी उसे जीवन में आवश्यकता पड़ती है। उसे ऐसी क्षमता प्राप्त हो जानी चाहिये कि वह एक व्यक्ति, एक नागरिक और एक कार्यकर्ता के रूप में अपना कार्य सुचारु रूप से कर सके। उसे वे सम्पूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हो जायँ जिनकी सहायता से वह अपना सामाजिक तथा नैतिक विचार निश्चित कर सके।

विद्यार्थियों को ऐसे विषयों की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिये जिनका जीवन से संबंध नहीं अथवा जिनका जीवन में कोई उपयोग नहीं होता। ऐसी बातें या ऐसे विषय जिनका जीवन क्षेत्र में कोई महत्व नहीं शीघ्र विस्मृत हो जाते हैं। हम उन्हें इतनी शीघ्रता से भूल जाते हैं कि उनकी शिक्षा देने का कोई उपयोग ही नहीं प्रतीत होता।

शिक्षालय को, विद्यार्थियों को बुद्धिमत्ता पूर्वक सोचने का अवसर देना चाहिये। जिन बातों के लिए, उनकी बुद्धि की आवश्यकता हो, उन्हें भी, उनको प्रदान करते रहना उनकी बुद्धि को कुंठित कर देना है और विचारणा शक्ति का सर्वनाश करना है। शिक्षालय का यह कर्तव्य है कि वह विद्यार्थी को चिंतन और विचार करने का पूर्ण अवसर प्रदान करे तथा उसके चिंतन और विचारों को महत्व दे।

जीवन में विशेष प्रकार की शिक्षा का महत्व है और उसका कल्याण प्रद उपयोग भी हो सकता है परन्तु इस प्रकार की शिक्षा तब लाभप्रद हो सकती है जब साधारण ज्ञान के आधार पीठिका पर उस ज्ञान विशेष का कार्य सम्पन्न किया जाय। साधारण ज्ञान के अभाव में विशेष प्रकार की शिक्षा जीवन में संकीर्णता और नीरसता उत्पन्न करती है। वह एक व्यक्ति में स्वार्थ की भावना तो उत्पन्न करती ही है साथ ही वह व्यक्ति समाज के कार्यों के लिए अधिक उपयुक्त नहीं रह जाता।

शिक्षालय को विद्यार्थियों को इस प्रकार के अनुभव प्रदान करने चाहिये जिनकी सहायता से उनमें आत्म-निर्भरता की भावना उत्पन्न हो तथा उनमें आनन्द पूर्वक जीवन निर्वाह करने की क्षमता उत्पन्न हो जाय।

शिक्षालयों को यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि बौद्धिक तत्वों तथा बौद्धिक शक्ति के विकास के लिए रुचि का बड़ा महत्व है। रुचि पर ही बौद्धिक तत्वों का विकास आश्रित होता है। निरन्तर अरुचिकर बातों की सहायता से हम बौद्धिक तत्वों का विकास नहीं कर सकते। अतः यह आवश्यक है कि हम अपने शिक्षालय के पाठ्यक्रम के निर्माण के समय विद्यार्थियों की रुचि का निरन्तर ध्यान रखें।

सम्पूर्ण जीवन का ध्यान रखना आवश्यक

यदि हम अपने शिक्षालय के पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार कर सकें कि विषयों के अध्ययन द्वारा हम व्यवस्थित रूप से, स्थिरता के साथ सम्पूर्ण जीवन का दर्शन कर सकें, अपने कार्यों को सामाजिक दृष्टिकोण

और महत्व के साथ करें, अपने अवकाश के समय का उचित रूप से उपयोग करने में समर्थ हों और अपने कार्यों का सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण समझते हुए, और उनमें संतुलित संबंध स्थापित कर सकें तो यह निश्चित है कि हमने पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था द्वारा यह निश्चित है कि हम समाज में एक सुखद व्यवस्था उत्पन्न कर लेंगे। स्वका अनुभव शिक्षालय के पाठ्यक्रम की एक महत्वपूर्ण देन है। जब तक विद्यार्थी स्वतः ज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान नहीं करता, स्वतः अपनी इच्छा से कोई कार्य नहीं करता तब तक उसे स्व का अनुभव नहीं होगा। जब उसे अपने स्व का ज्ञान होगा तब वह अपना तथा अपने स्व का आदर करेगा और यह अनुभव करेगा कि जीवन में उसके अस्तित्व का भी महत्व है।

यदि हम सम्पूर्ण बातों पर विचार करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उपयुक्त शिक्षा आनन्द प्रदायिनी होनी चाहिये। अपने जीवन की सुखद और प्रिय लगनेवाली वस्तुओं को हम आनन्द की अभिधा प्रदान करते हैं। अतः शिक्षा को वास्तव में आनन्द प्रदायिनी होनी चाहिये। आनन्द और साधारण सुख प्रदान करनेवाले मनोरंजन का भेद हमें समझ लेना चाहिये। शिक्षा को आनन्द दायक होना चाहिये परन्तु जब शिक्षा के विषय का ध्येय ही मनोरंजन हो जायगा तो न तो हम सम्पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था कर सकेंगे न हम शिक्षा द्वारा जीवन के लिए उन गुणों को प्रदान कर सकेंगे जिनकी मनुष्य को आवश्यकता होती है। केवल मनोरंजन के लिए दी गयी शिक्षा से न तो हम उपयुक्त शिक्षा ही प्राप्त कर सकते हैं और न वास्तविक आनन्द की ही प्राप्ति हमें होगी।

ऊपर हमने शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं उनके द्वारा हम व्यक्ति को आनन्द पूर्वक सुखद जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। वे एक व्यक्ति तथा समाज के एक सदस्य के

रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे। इसी दृष्टि से सामाजिक अध्ययन का महत्व है और इस प्रकार के पाठ्यक्रम द्वारा उसकी पूर्ति हो जाती है। सम्पूर्ण शिक्षा की शक्ति की परीक्षा तो हम व्यक्तियों की प्रेरक शक्तियों की उत्पत्ति और उनके द्वारा उत्पन्न जिज्ञासाओं के प्रकटीकरण द्वारा ही कर सकते हैं। हम इस पाठ्यक्रम को तब सफल समझेंगे जब वह मनुष्य को ऐसे उदार ज्ञान से, ऐसी कर्तव्य भावना से, सम्पन्न कर दे कि वह समाज के बीच रहकर सुखद व्यक्तिगत जीवन व्यतीत कर सके। उसमें इतनी गंभीरता और महानता उत्पन्न हो जाय कि वह साधारण जीवन का ध्यान रखते हुए विशिष्ट जीवन की विशेषताओं का भी अध्ययन कर सके। शिक्षा की दृष्टि से विशेष प्रकार के अध्ययन का भी महत्व है परन्तु इस प्रकार की विशिष्ट शिक्षा की पूर्ति विशेष पाठ्यक्रम द्वारा ही हो सकती है। सम्पूर्ण शिक्षा का केवल यही कर्तव्य है कि वह एक व्यक्ति में उन क्षमताओं को भी उत्पन्न कर दे जिनकी सहायता से वह जीवन के विशिष्ट क्षेत्रों में जाकर विशेष योग्यता प्राप्त करने का यत्न कर सके।

छठवाँ अध्याय

असीम क्षेत्र में निश्चित ध्येय का निर्णय

पिछले अध्यायों में हमने जो कुछ भी विचार विवेचन किया है उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम का कार्य केवल सूचना प्रदान करना अथवा केवल नयी बातों को बतला देना मात्र नहीं है। अधिक बातों की ज्ञान प्राप्ति से एक व्यक्ति बहुत सी बातों का जानकार हो सकता है परन्तु इसके कारण वह एक शिक्षित व्यक्ति हो जाय यह कोई आवश्यक बात नहीं है। हमारी धारणा है कि केवल ज्ञानार्जन अथवा जानकारी मात्र प्राप्त करना ही शिक्षा नहीं। वास्तविक शिक्षा का संबंध अन्तर्दृष्टि और अनेक बातों में वास्तविक संबंध समझने की प्रज्ञा से है। पृथक असम्बद्ध रूप से प्रत्येक तथ्य महत्वपूर्ण और सत्य हो सकते हैं परन्तु इस प्रकार के असम्बद्ध और एकाकी तथ्य अपने ही विकास को महत्व देते हैं। सम्पूर्ण जीवन के साथ उनका समन्वय नहीं होता। जब हम जीवन के सम्पूर्ण तथ्यों पर विचार करते हैं तब हमारा ऐसा अनुभव है कि ये पृथक अथवा एककी तथ्य अधिक लाभप्रद नहीं सिद्ध होते। हमारे जीवन की आधार पीठिका ही यह निश्चय कर सकती है, उसका दृष्टिकोण ही यह निश्चित कर सकता है कि तथ्यों का संघटन किस प्रकार हो। इसी आधार पीठिका की कसौटी पर तथ्यों का खरापन निश्चित होता है। इसी कसौटी पर कसने पर हमें यह ज्ञात होता है कि जीवन की वास्तविकता की प्राप्ति के लिए किन तथ्यों ने हमें विचार और अन्तर्दृष्टि प्रदान किया है।

यह स्पष्ट है कि ज्ञान का क्षेत्र तथा साम्राज्य अगाध और असीम है। एक व्यक्ति द्वारा अथवा एक समय में मनुष्य इस विस्तृत क्षेत्र का

ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। लेकिन अध्ययन के कुछ ऐसे प्रकार हैं जो समन्वय स्थापित करते हैं, और ऐसे भी प्रकार हैं जो पार्थक्य को प्रोत्साहन देते हैं। शिक्षालयों में जहाँ तक समन्वयवादी दृष्टिकोण होगा वहाँ तक वह बच्चों को पूर्णता का दृष्टिकोण प्रदान करेगा। मनुष्य ने विभिन्न प्रकार के संबंधों के संबंध में जो कुछ भी अनुभव प्राप्त किये हैं उनके आधार पर शिक्षालयों में जो शिक्षा दी जाती है वह महत्वपूर्ण होती है और उसी के आधार पर बौद्धिक साहसिक कार्य होते हैं और वास्तव में ये अनुभव ही वास्तविक ज्ञान की पीठिका होते हैं।

ज्ञानार्जन शिक्षा का एक मुख्य अंग है परन्तु अनुभव का महत्व तो अनुसंधानों पर आश्रित है। अनुभव, ज्ञान की अपेक्षा अनुसंधान पर आश्रित होता है अतः सामाजिक शिक्षा के अध्ययन के समय हमें शिक्षा विषय के साथ ही शिक्षा के प्रकार पर अधिक महत्व देना चाहिये। सामाजिक अध्ययन पठन-पाठन की वस्तु नहीं है। उसका तो जीवन से संबंध है। हमारे जीवन में जो घटनाएँ घटती हैं उनसे उसका संबंध है। पुस्तकों द्वारा सामाजिक अध्ययन की बातें करना उसका उपहास करना है। शिक्षालय स्वतः एक महत्वपूर्ण प्रभावशाली शैक्षिक समाज है। शिक्षालय का वातावरण एक वह शैक्षिक शक्ति है जिसकी सहायता से सामाजिक अध्ययन का वास्तविक कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। संस्था के रूप में, एक शिक्षालय के अन्तर्गत चाहे जो कुछ भी अध्ययन किया जाय अथवा चाहे ज्ञान की वृद्धि किसी भी सीमा तक की जाय उस संस्था का तब तक कोई सामाजिक महत्व नहीं जब तक शिक्षालय का एक समाज के रूप में संघटन नहीं होता। सामाजिक बुराइयों सामाजिक अंध विश्वासों को ज्ञान के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। हम यह भूल जाते हैं कि इन सामाजिक बुराइयों अथवा अंध विश्वासों का ज्ञान की अपेक्षा भावना से अधिक संबंध है। जब तक हम अपनी भावना को प्रभावित करने का कोई सुगम मार्ग नहीं निकालते तब तक कोरा ज्ञान हमारी सहायता नहीं कर सकता। इन सामाजिक बुराइयों और

अंध विश्वासों को दूर करने का उपाय हमें सामाजिक जीवन क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकता है। हमें जो सामाजिक जीवन के अनुभव प्राप्त होते हैं वे ही इनको दूर करने के मार्ग बतला सकते हैं। हमारी सामाजिक दुर्भावनाओं का दूर किया जाना इस बात पर आश्रित है कि हम किस सीमा तक व्यावहारिक लोकतंत्रवाद का उपयोग करते हैं, हमारे व्यावहारिक सामाजिक जीवन के क्या आदर्श और ध्येय हैं, हम मानवता और सौहार्द के आधार पर कितना विचारों और व्यवहारों का आदान प्रदान करते हैं। आवश्यकता के वशीभूत होकर हम लोकतंत्र की बातों को कितनी मान्यता प्रदान करते हैं यह कभी भी वास्तविक सामाजिक जीवन का मानदण्ड नहीं हो सकता और न इसके द्वारा सामाजिक दुर्भावनाएँ ही दूर की जा सकती हैं।

हम अब तक यही सोचते रहे हैं, और हमारी यही धारणा रही है कि शिद्दाल में कतिपय विषयों की शिक्षा व्यवस्था के द्वारा हम समाज का उत्थान कर सकते हैं। इन्हीं विषयों की शिक्षा द्वारा समाज की क्रमशः प्रगति होती जायगी। लेकिन अब धीरे-धीरे हमें यह अनुभव होता जा रहा है कि शिक्षा क्षेत्र में विषय अथवा पाठ्य विषय का ही केवल महत्व नहीं है। मनुष्य को तथ्यों और विचारों का एक खजाना बनाने की अपेक्षा आज इस बात की अधिक आवश्यकता है कि उसे ऐसे ज्ञान ऐसे तथ्य प्रदान किये जायँ जिनका वह उपयोग कर सके। आज आवश्यक ज्ञान की खोज करने की क्षमता का अधिक महत्व है। शिक्षा द्वारा प्रदान किये जानेवाले पुराने ज्ञान के खजाने का जीवन में उपयोग होता भी रहा है इसमें हमें संदेह है। शिद्दालय के कार्यक्रम का, उसकी सफलता की परीक्षा का क्षेत्र, बालक का दृष्टिकोण और उसकी विचार शैली, उसकी रुचि, उसकी बौद्धिक उदारता, उसके विचार की क्षमता, शिद्दालय छोड़ने के बाद अनुसंधान और ज्ञान के प्रति जिज्ञासा है। इसी प्रकार सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के फल की परीक्षा का स्थल शिद्दालय नहीं है। क्योंकि वहाँ बालकों में जो शक्ति अथवा व्यवस्था

दीख पड़ती हैं उसमें कुछ भय कुछ आतंक का भी हाथ होता है। वहाँ जो अनुशासन की व्यवस्था दीख पड़ती है उसमें कुछ कृत्रिमता और कुछ यांत्रिकता होती है। सामाजिक अध्ययन के फल की परीक्षा का स्थल तो हमारा वास्तविक क्षेत्र है और उसका वास्तविक रूप तब प्रकट होता है जब हम एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत मिलकर काम करते हैं, अपनी वैयक्तिक और सामाजिक आवश्यकताओं को समझते हैं तथा समाज के उत्थान के लिए हम आपसी संबंध को भी सौहार्दपूर्ण रखते हुए, कार्य करते हैं। हमें यह समझ लेना चाहिये कि कक्षा में किसी रूप में भी शासन व्यवस्था की शिक्षा देने से हम समाज को उन लोगों से दूर नहीं रख सकते जो समाज में वैमनस्य उत्पन्न करते रहते हैं, दूसरों के श्रम पर जीते हैं और चोर बाजारी कर जनता को कष्ट में डालते हैं। कक्षा में पठन-पाठन द्वारा इनकी संख्या कभी भी कम नहीं की जा सकती। यदि हम चाहते हैं कि समाज में शोषण बन्द हो, यदि हम चाहते हैं कि चोर बाजारी बन्द हो तथा दूसरों के श्रम का उपयुक्त पुरस्कार प्राप्त हो तो हमें शिक्षालय का संघटन सामाजिक आधार पर करना होगा। समाज के क्रियात्मक अनुभवों के आधार पर शिक्षालयों के संघटन से हमें वह शक्ति प्राप्त होगी जिसकी प्रौढ़ जीवन में आवश्यकता होती है और विद्यार्थी भी समाज में अपने स्थान का निश्चय कर सकेंगे। आज का समय बड़ा ही विचित्र है। कोई भी किसी की आधीनता मानना स्वीकार नहीं करता। किसी के अधिकार को मान्यता शीघ्र नहीं मिल पाती। इसका फल यह है कि हम ऐसे युग में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिसकी महत्ता और जिसके मानदण्ड अत्यन्त अनिश्चित हैं।

आज हमारे सामने यह समस्या है कि हम अधिकारों को, अधिकारियों को, श्रद्धा विहीन हुए बिना किस प्रकार चुनौती दें ? क्या व्यवस्था हो कि हम श्रद्धावान् भी बने रहें और अधिकारों तथा अधिकारियों को चुनौती भी दे सकें ? जब जीवन के प्रति श्रद्धा और विश्वास होने के लिए हम यह

आवश्यक समझते हैं कि कि हमें अपने पर विश्वास और श्रद्धा हो तब अपने पर विश्वास और श्रद्धा का केवल यही अर्थ है कि हम में इस प्रकार का विश्वास हो कि हम जीवन में कुछ महत्वपूर्ण और प्रभावकर कार्य कर सकते हैं। जब हमें यह विश्वास हो जाता है कि चाहे व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सामाजिक जीवन हो हम कुछ न कुछ कर सकते हैं तब जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण ही भिन्न हो जाता है।

हमारे सामने यह समस्या है कि हम जीवन में किस प्रकार प्रभावकर रीति से योग दे सकते हैं। इस समस्या का दल पठन-पाठन अथवा बातचीत के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसके लिए तो हमें प्रयोग करने होंगे। बिना प्रयोग के हम इस समस्या का समाधान नहीं प्राप्त कर सकते। यह समस्या हमारे सामने यह सुझाव रखती है कि हमें शिक्षालयों में वह अवसर प्रदान करना चाहिये जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से क्रियाशीलता द्वारा शिक्षा प्राप्त करें। वे निष्क्रिय न होकर वरन् सक्रिय होकर शिक्षा का अनुभव प्राप्त करें।

जिज्ञासा की पूर्ति की आवश्यकता

सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम तब तक सफलता पूर्वक शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकता, जब तक उसका संबंध शिक्षार्थी की अवस्था रुचि तथा अनुभव से नहीं है, जो पाठ्यक्रम शिक्षार्थी की रुचि अथवा अवस्था के अनुरूप नहीं है उसके प्रति विद्यार्थी का आकर्षण ही न होगा। यही प्रधान कारण है कि साधारणतया सामाजिक अध्ययन के लिए निर्मित पुस्तकें हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करतीं। यदि जीवन से पृथक रखकर हम शासन संघटन, समाज संघटन, आदि की शिक्षा विद्यार्थियों को देते हैं तो इनमें उनकी कोई रुचि नहीं रहती। इस प्रकार की दी गयी शिक्षा को वे शीघ्र भूल भी जायेंगे क्योंकि इनका उनके लिए कोई महत्व नहीं है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि कक्षा

में जो कुछ विद्यार्थी पढ़ते हैं उनमें से अधिक बातें वे भूल जाते हैं और वे उनके ज्ञान के भंडार के रूप में काम नहीं आतीं। इन बातों को केवल शिक्षालय अथवा परीक्षा के लिए पढ़ा जाता है, उनका ऐसे अवसरों के लिए उपयोग होता है और शीघ्र वे भूली बातों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं।

अनुभव द्वारा प्राप्त लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि हमारी कार्य प्रणाली हमारे विचारों और क्रिया शीलता का किस सीमा तक संबंध स्थापित करती है और समाज में क्रियात्मक संबंध को प्रोत्साहन देने में सहायता करती है। हमें उस स्थिति में अधिकाधिक लाभ होता है जब कि कार्य प्रणाली का संबंध कुछ ऐसे कार्यों से होता है, जिनकी हमें भावी जीवन में आवश्यकता पड़ती है। यदि कार्य प्रणाली का संबंध किसी विषय की सीमा से ही है तो उसके द्वारा जो अनुभव हमें प्राप्त होंगे वे अधिक लाभप्रद अथवा प्रभावकर नहीं होंगे।

शिक्षालय का कृत्रिम वातावरण

हमें यह कहने में तनिक भी हिचक नहीं कि वर्तमान समय में हमारे भारतीय शिक्षालयों के अधिकतर कार्य कृत्रिम है और जीवन की स्वाभाविकता से उनका कोई संबंध नहीं। हम शिक्षालयों में जिन पुस्तकों का उपयोग करते हैं वे केवल पाठ्य-पुस्तकें हैं। उनका केवल पाठ ही हो सकता है। ऐसी पुस्तकों के अन्त में जो प्रश्नावली अथवा अभ्यास के लिए प्रश्न दिये रहते हैं उनसे पाठ की आवृत्ति भले ही हो जाय परन्तु उनके द्वारा किसी प्रकार की जिज्ञासा की शांति अथवा अनुसंधान करने की अभिलाषा का जागरण, नहीं होता। इन अभ्यासों का लक्ष्य केवल यह रहता है कि बालक विषय को संक्षेप में कहने की क्षमता प्राप्त कर लें। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पाठ्य-पुस्तकों ने शिक्षा का ध्येय केवल संक्षेपीकरण ही समझ रखा है और वे अनुसंधान की जिज्ञासा को शिक्षा का ध्येय नहीं मानतीं। ये अभ्यास विद्यार्थियों के लिए एक

बोझ होते हैं और इससे अध्यापकों को केवल यह लाभ होता है कि वे अपने श्रम से बच जाते हैं तथा उन्हें विद्यार्थियों के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। इन पुस्तकों और उनके अभ्यास के प्रश्नों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे उस युग की वस्तुएँ हैं जब कि शिक्षा क्षेत्र में भी सामूहिक उत्पादन का महत्व था और शिक्षक, शिक्षार्थी की प्रगति का उसी स्थिति में कुछ उत्तरदायित्व लेने को तैयार होता था जब कि विद्यार्थी उन्हीं पुस्तकों को पढ़ें, उन्हीं प्रश्नों को करें, और उन्हीं अभ्यासों पर आश्रित रहें, जिन पर अन्य विद्यार्थी आश्रित रहते हैं। शिक्षा की ऐसी असहनीय स्थिति में रटना, पढ़ना, प्रश्नों का उत्तर देना परीक्षा के लिए तैयारी करना आदि परिचित कार्यक्रम बालकों और अध्यापकों को कुछ ढाढ़स और दिलासा देते थे। उन्होंने इनको ही, अपने जीवन का, शिक्षा के क्षेत्र का, ध्येय समझ रखा था। शिक्षालयों की कक्षा में बालकों की संख्या कम करने का अर्थ ही है स्थिति में परिवर्तन करना। और जहाँ कक्षाओं में बालकों की संख्या कम हुई वहाँ यह निश्चित है कि शिक्षा की स्थिति के विकास के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त होगा।

इस नयी स्थिति की हमें नवीन रीति से कल्पना करनी होगी। इस नयी स्थिति का ध्येय सामूहिक उत्पादन नहीं है, अतः इस नयी स्थिति में अध्यापक बालकों को रटानेवाला और परीक्षा पास करने के लिए गुटका प्रदान करनेवाला, जादूगर मात्र नहीं रह जाता। कक्षा के रूप में शिक्षालय के विभाजन का भी उस समय कोई महत्व नहीं रह जायगा। आज-कल पढ़ाई का विभाजन कक्षा और घंटों के आधार पर होता है। सामाजिक संघटन के रूप में जब हम शिक्षालयों का संघटन करेंगे तब इनका अस्तित्व ही हमें समाप्त करना होगा। शिक्षाक्रम में पाठ्यपुस्तकों के अध्यायों द्वारा शिक्षा के क्रमिक विकास की जो कल्पना की जाती है उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है और न उनका संघटन ही बालकों की रचनात्मक प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर किया जाता है। अध्यायों द्वारा बालकों के कार्यों का जो विभाजन हम निश्चित करते हैं

उस समय इस प्रकार का विभाजन संतोषप्रद नहीं होगा। पाठ्यपुस्तकों की शिक्षा और उनके अध्याओं को अपने कार्य का आधार बनाने पर हमारी सबसे बड़ी हानि यह होती है कि वे अध्यापक बालकों की असीम रुचि को संकीर्ण बना देते हैं और और उनकी क्रियाशीलता की गति मन्द पड़ जाती है। कक्षा में दी जानेवाली शिक्षा के संबंध में जब हम अपने जीवन की गतिविधि के तर्कों का उपयोग करते हैं तब हम ऐसा अनुभव करते हैं कि वे बालकों की वास्तविक क्षमता को क्रियाशील नहीं बना पाते।

इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें पुस्तकालयों से प्राप्त हो सकता है। हमने यह देखा है कि लड़के पुस्तकालयों की पुस्तकों के प्रति अधिक रुचि दिखलाते हैं। वे बड़ी शीघ्रता के साथ छोटी-छोटी पुस्तकों को पढ़ डालते हैं और उन्हें पढ़ने में आनन्द भी आने लगता है, परन्तु वे पाठ्य-पुस्तकों को साल भर तक साथ रखते हैं और फिर भी उसे समाप्त नहीं कर पाते। यदि हम चाहते हैं कि बच्चों की वास्तविक शिक्षा की व्यवस्था हो और हमारे प्रयत्नों के उपयुक्त फल प्राप्त हों तो हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हम बालकों की व्यक्तिगत रुचि और कार्य करने की प्रणाली पर भी सहानुभूति पूर्वक विचार करें। जब तक हम बालक की व्यक्तिगत रुचि और दृष्टिकोण को महत्व न देंगे तब तक हम वास्तविक शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते और न शिक्षा का उचित रूप से संघटन ही कर सकेंगे। जब शिक्षालय के कार्य उनकी रुचि के अनुरूप होंगे तब नवीन स्थिति के अनुसार कार्य हो सकेगा।

आत्मीयता और प्रश्नों का महत्व

हम लोगों ने अपने घरों में देखा है कि बच्चे अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते हैं। वे घरों में अपनी रुचि के अनुसार वातावरण पाते हैं और वहाँ के लोगों के साथ वे आत्मीयता का अनुभव करते हैं। जिस क्षेत्र में आत्मीयता का अनुभव होता है उस क्षेत्र में

लड़के अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुसार ज्ञान वृद्धि करते रहते हैं। वे निरन्तर तथा अबाध गति से प्रश्नों की झड़ी लगाये रहते हैं। घर की कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसके संबंध में वे प्रश्न न पूछें और जिज्ञासा न प्रकट करें। एक प्रश्न का उत्तर मिलते ही वे दूसरे प्रश्न की तैयारी करने लगते हैं और पहले प्रश्न का उत्तर उनके दूसरे प्रश्न के लिए आधार-पीठिका का कार्य करता है। साधारण बुद्धि और साधारण वातावरण के बालकों की यह सहज तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। लेकिन हम इस स्थिति में तब परिवर्तन का अनुभव करने लगते हैं जब बच्चा शिद्यालय जाना प्रारम्भ करता है। जहाँ उसने कुछ समय शिद्यालय में व्यतीत किया तहाँ उसके प्रश्न पूछने और उत्तर प्राप्त करने की जिज्ञासा क्रमशः न्यून होती जाती है। परिणाम यह होता है कि शिद्यालय के वातावरण के बीच रहते-रहते वह केवल एक श्रोतामात्र रह जाता है। आस-पास की चीजों को वह केवल अन्यमनस्क भाव से देखता है और प्रभाव ग्रहण करता है। उन स्थितियों को चुनौती देने तथा प्रश्न द्वारा अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति करने की उसकी शक्ति पूर्णतः क्षीण हो जाती है। वह केवल उन कार्यों को पूरा कर देता है जो उसे दिये जाते हैं। उसकी अपनी कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती। इस स्थिति के उत्पन्न होने के संभवतः दो कारण हो सकते हैं। कक्षा में वह यह अनुभव करता रहता है कि एक प्रश्नकर्ता के रूप में वह कक्षा के कार्य में बाधक सिद्ध होता है और अध्यापक उसे प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित करने की अपेक्षा हतोत्साहित अधिक करते हैं। इस स्थिति का दूसरा कारण यह हो सकता है कि हम शिद्यालय के कार्य का संघटन ही इस रूप में करते आ रहे हैं। हमारे शिद्यालय के कार्य संघटन की प्रणाली ऐसी रही है कि उसमें शिद्यार्थी की जिज्ञासा के लिए कोई स्थान नहीं। शिद्यालय के कार्य काल में अध्यापक प्रश्न पूछते हैं और लड़के रटे-रटाये उत्तर देकर शिक्षक की वाहवाही प्राप्त कर लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शिद्यालय छोड़ने के समय

बालकों में न तो प्रकृति की वस्तुओं के प्रति किसी प्रकार की उत्सुकता रह जाती है और न उनकी जिज्ञासा जीवित रह जाती है ।

आधुनिक शिक्षा को इस निर्जीव शिक्षा प्रणाली से मुक्त कराने के लिए कुछ प्रभावकर कार्य करना होगा । जब तक शिक्षा हमें इस निर्जीव और जिज्ञासा विहीन शिक्षाप्रणाली के खूँट में बाँधे रहेगी तब तक हमारा नैतिक और सामाजिक विकास नहीं हो सकता ।

निर्जीवता और शुष्कता के पक्ष की विचित्र दलील

कुछ लोगों की यह धारणा है कि जीवन एक निश्चित कार्यक्रम के आधार पर चलता है । अतः जीवन के लिए निश्चित कार्यक्रम की आवश्यकता होती है । जीवन के इस कार्यक्रम में बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिनमें कोई आकर्षण नहीं होता और न उनमें किसी की रुचि होती, लेकिन वे जीवन के लिए आवश्यक हैं । अतः उनकी शिक्षा देना अनिवार्य है । और जब हमें लोगों को जीवन के लिए तैयार करना है तब उन्हें उन बातों को सिखलाना पड़ेगा । जब हम इन बातों को सिखलाते हैं तब शुष्कता उत्पन्न होती है । इसी लिए हमारी शिक्षा में शुष्कता, रस हीनता और निर्जीवता दीख पड़ती है ।

शिक्षा की वर्तमान अप्रगतिशील शिक्षाप्रणाली के लिए यह एक अत्यन्त निराशा जनक दलील है । इस प्रकार की विचारधारा से हमारी हानि ही अधिक होगी । हमारी बुद्धि और हमारे तर्क तो हमें पूर्णतः इसके विरुद्ध दिशा में सोचने के लिए बाध्य करते हैं । हमें तो यह स्वीकार करना चाहिये कि जीवन की आवश्यकताओं और कार्यक्रमों के लिए मनुष्य में स्वाभाविक रूप से उत्कंठा रहती है और उसका क्रमिक विकास होता है । हमें तो यह सोचना चाहिये कि जीवन में बड़ी शुष्कता और नीरसता है, अतः हमें शिक्षा क्षेत्र की प्रगति के लिए ऐसी प्रणालियों का अनुसरण करना चाहिये जिनके द्वारा बौद्धिक साहसिकता और जिज्ञासा का निरन्तर विकास होता चले । ऐसे साधनों की

सहायता से हम लोगों को जीवन के कार्यक्रम में, कार्यक्रम की नीरसता के बिना भी लगा सकते हैं। कार्यक्रम-जन्य जो बौद्धिक नीरसता उत्पन्न होती है उससे लोग बच सकेंगे। उपर्युक्त स्थिति में जीवन के कार्यक्रम में लगे रहने पर भी हम सहृदयता, मनोरंजन तथा जीवन की साधारण क्रियाशीलता को भी महत्व प्रदान कर सकेंगे और इनकी सहायता से हम सामाजिक जीवन की प्रगति को तीव्र गति से बदल कर उसे ऐसी स्थिति में ला सकते हैं कि उनके ध्येय तथा कार्य सरस और महत्वपूर्ण हो जायें।

दो महत्वपूर्ण मानवीय तत्व

शिक्षालय के लिए दो महत्वपूर्ण तथा आवश्यक मानवीय तत्वों की आवश्यकता है। इन पर हमें ध्यान देना चाहिये। इस शिक्षालय के क्षेत्र में लड़के सुरक्षा की भावना तथा साहसिक कार्यों के लिए क्षेत्र की अपेक्षा करते हैं। उन्हें यह दो महत्वपूर्ण मानवीय तत्वों की आवश्यकता है। जब शिक्षालय सामाजिक संघटन के रूप में कार्य कर रहे हों तब इन तत्वों की पूर्ति हो यह आवश्यक नहीं। जिस समय शिक्षार्थी कक्षा में पढ़ रहे हों उस समय भी इन तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिये। एक बालक उसी कार्य में रस लेता है जिसे वह अपनी क्षमता के अन्तर्गत समझता है। जब उसे यह अनुभव होता है कि जिस कार्य को वह अपने हाथ में ले रहा है उसका फल अच्छा होगा और उसका संतोषप्रद परिणाम होगा तब उस कार्य के करने में उसे आनन्द का अनुभव होता है। यही कारण है कि जब लड़के किसी विषय के प्राथमिक नियम को सीख लेते हैं तब उसी विषय के अभ्यास कार्य में उन्हें बड़ा रस मिलता है। जब वे इस प्रकार कार्य करते हैं तब इसका यह अर्थ कदापि न होना चाहिये कि इस अभ्यास के द्वारा वे अपनी किसी शक्ति विशेष का विकास कर रहे हैं। वास्तविक स्थिति तो यह है कि वे उन कार्यों की पुनरावृत्ति द्वारा यह अनुभव करते हैं कि संसार में कोई कार्य तो ऐसा है जिसे वे स्वतः कर सकते हैं और जिसकी सहायता से

उन्हें सुरक्षा प्राप्त हो सकती है। ऐसे कार्यों से उनके मन की तुष्टि तो होती ही है साथ ही उन्हें बड़ों की प्रशंसा भी प्राप्त हो जाती है।

शिक्षालयों में शुष्क पुनरावृत्तिवाले कार्यक्रमों के स्थान पर ऐसे कार्यक्रमों की व्यवस्था की जा सकती है जो अधिक तन्मयता उत्पन्न करनेवाले तथा महत्वपूर्ण हों और इस प्रकार के कार्यों द्वारा बालकों को एक प्रकार का स्थायी संतोष प्राप्त होगा ही। इस संतोष के अतिरिक्त उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति में भी परिवर्तन हो जायगा। तात्त्विक तथा मौलिक संतोष के लिए सामाजिक अध्ययन के साथ ही वैयक्तिक आधार पीठिका की भी आवश्यकता होती है।

हमें अपने कार्यों का इस प्रकार संघटन करना है कि इनके द्वारा वैयक्तिक और मौलिक अभिव्यक्ति को स्थान मिल सके तथा उस व्यक्ति को इस प्रकार की क्षमता प्राप्त हो जाय कि वह समाज के ध्येय के लिए तथा समाज की निश्चित योजनाओं को सफल बनाने के लिए, एक समूह अथवा समाज में सहयोग पूर्वक कार्य कर सके।

निश्चित ध्येय की आवश्यकता

शिक्षालय के कार्यों का एक ऐसा निश्चित ध्येय होना चाहिये जिसके संबंध में विद्यार्थी सोच-समझ सके और जिनकी मान्यताओं को स्वीकार करने में उसे किसी प्रकार की कठिनाई न हो। इतना ही नहीं, शिक्षालय के सम्मुख एक विस्तृत योजना भी होनी चाहिये जिससे शिक्षार्थी को भी कल्पना करने का अवसर मिल सके तथा उसका विचार विनिमय केवल पठन-पाठन के घेरे तक ही सीमित रह न जाय। शिक्षालय में हमें शिक्षार्थियों को ऐसे अवसर देने की व्यवस्था करनी चाहिये कि उनके बुद्धि के कपाट खुले रहें और वे उदार मस्तिष्क से वस्तुओं के सम्बन्ध में सोच-विचार सकें। इस प्रकार के मस्तिष्क द्वारा सहसा अनेक प्रकार के अद्भुत मानवीय अनुभव प्राप्त हो जाते हैं।

यदि हम यह चाहते हैं कि वैयक्तिक स्वार्थ, सफलता और संकीर्णता

के ऊपर सामाजिक उदारता और सामाजिक विचारधारा विजयी हो तो हमें सामाजिक सफलता को प्राथमिक स्थान देना होगा और उसकी सफलता के लिए, सामाजिक कार्यों की सफलता के लिए, अधिकाधिक साधन और अवसर प्रदान करने होंगे।

इस अध्याय में हमने एक स्थान पर यह कहा है कि विद्यार्थी को स्वाभाविक विकास के लिए, साहसिकता के कार्य के लिए, अवसर तथा क्षेत्र प्राप्त होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उनमें यह भी भावना उत्पन्न होना आवश्यक है कि वे हर स्थिति में सुरक्षित हैं। क्रियाशीलता के द्वारा किस प्रकार साहसिकता और आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न होती है हमने इस पर भी विचार किया। कार्य की संभावनाओं तथा कार्य क्षेत्र के विस्तार द्वारा साहसिकता की वृद्धि होती है और एक व्यक्ति जब ऐसे क्षेत्रों के लिए सहयोग पूर्वक कार्य करता है तब ऐसे साहसिक कार्य अवश्य ही सफल होते हैं। इन कार्यों की सफलता द्वारा सामूहिक प्रयत्नों को प्रगति प्राप्त होती है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ सम्पूर्ण कार्य समाप्त कर दिया गया हो और ऐसी बातें शेष न रह गयी हों जिनके लिए प्रयत्न करना आवश्यक हो। संसार में जब हम अध्ययन करते हैं तब बहुत सी बातें ऐसी हैं जिन्हें जानते हुए हम छोड़ देते हैं। कार्य करने के समय बहुत सी ऐसी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं जिनको बिना हल किये ही हम आगे बढ़ जाते हैं। इस प्रकार के कार्यों के संबंध में मत भिन्नता होना भी आवश्यक है। इस मत भिन्नता को बनाये रखना आवश्यक है। प्रयोगात्मक जीवन की यही विशेषता है कि वह कोई एक सधा-सधाया मार्ग सामने नहीं ला रखता।

इसलिए जब हम किसी कार्य के निष्कर्ष पर पहुँचते हैं तब यह आवश्यक नहीं है कि सब एक सम्मति के हो जायँ। संभव है प्रत्येक व्यक्ति की अपनी सम्मति के लिए पर्याप्त दलीलें वर्तमान हों। किसी भी समस्या के इस पक्ष की ओर ध्यान देना हमारे लिए आवश्यक है। नयी स्थितियों और नये वैयक्तिक आवश्यकताओं के द्वारा नयी सामाजिक स्थितियाँ

उत्पन्न होती रहती हैं। अतः हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी कार्य विशेष का महत्व किसी महत्वपूर्ण प्रसंग के साथ संबंधित रहता है। किसी कार्य का सीमित दृष्टिकोण, किसी सीमित ध्येय की प्राप्ति के लिए, अथवा उसकी सहायता से भावी प्रगति के लिए, द्वार खोलता है। इस लिए प्रत्येक जिज्ञासु शिक्षार्थी को चरम सत्य तथा तात्कालिक ध्येय पूर्ति की सीमाओं के संबंध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिये। हमारे सामने विस्तृत असीम क्षेत्र दीख पड़ता है। लेकिन इस असीम क्षेत्र में हमारे कार्य की सीमा-रेखाएँ भी हमें स्पष्ट दीख पड़ती हैं। हमारा केन्द्र ऐसा नहीं होना चाहिये जिसके द्वारा हम सीमाओं की रेखाओं द्वारा आवृत हो जायँ और हमें कुछ दीख न पड़े। हमारा तो केन्द्र इस प्रकार का होना चाहिये कि हम अपनी सीमाओं का स्पर्श करते हुए असीम क्षितिज की रेखाओं को भी ध्यान में रखें।

हमारे ध्येय का स्पष्टीकरण

हमारी बातों को सुनकर कोई हमें छायावादी कवि के समान, अथवा रहस्यवादी काल्पनिकों के समान, अप्रपञ्चा का दोषी न कह दे इसलिए हम अपने ध्येय का स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक समझते हैं। इस प्रकार के कार्यों का कुछ शैक्षिक ध्येय है। हमें उन शैक्षिक ध्येयों पर भी विचार करना चाहिये। सामाजिक अध्ययन के प्रयोगों में विश्वास करनेवाले लोग परम्परा से चली आती इन बातों में विश्वास नहीं करते कि अध्यापक और शिक्षालय का यह कार्य है कि वे विषय-प्रणाली की शिक्षा द्वारा बालकों को साधारण ज्ञान प्रदान कर दें। इस प्रकार की भावना धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। हमारी शिक्षा की वास्तविक उपयोगिता तब समझी जायगी जब वह बालक के वैयक्तिक-विकास में कुछ योग दे। जब तक हम बालक के वैयक्तिक विकास में योग नहीं देते तब तक शिक्षा का ध्येय पूरा नहीं होता। हम यह नहीं कहते कि अध्ययन की सामग्री महत्वपूर्ण नहीं है। वह तो अत्यधिक महत्व की है ही

लेकिन साथ ही हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि ज्ञान की सीमा असीम है। ज्ञान प्रदान करनेवाली वस्तुओं की सीमा भी असीम है। साधारणतया जीवन में हम उन वस्तुओं का केवल स्पर्शमात्र कर पाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम जीवन में उन्हीं ज्ञान की सामग्रियों का उपयोग करें जो सारगर्भित और महत्वपूर्ण हैं।

उन सामग्रियों के उपयोग के प्रकार में भी मतभेद हो सकता है। ज्ञान की सामग्री का हम किस रीति से, किस दृष्टिकोण से, उपयोग करते हैं इस बात पर हमारी शिक्षा का विकास निर्भर करता है। हमें यह स्पष्ट करना होगा कि इन वस्तुओं के उपयोग द्वारा हम एक अधिक जानकारी व्यक्ति अथवा एक पूर्ण शिक्षित व्यक्ति, उत्पन्न करना चाहते हैं।

हमारे ध्येय की स्पष्टता पर ही हमारी सफलता आश्रित होती है। अतः यह आवश्यक है कि हम अपने विचारों, अपने ध्येयों, तथा अपने आदर्शों को स्पष्ट रूप से सामने रखें। यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि शैक्षिक अनुभव की मौलिकता और उपयोगिता इस बात में है कि वह हमें अपनी प्रकृति समझने में सहायता दे, हमें अपने वातावरण के महत्व पूर्ण तत्वों का अनुभव करने की शक्ति दे। साथ ही हमें विश्व की गतिविधि और लक्ष्य का अध्ययन करने तथा उसमें अपना स्थान निश्चित करने की भी क्षमता प्रदान करे। इस दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर कार्य करने में कोई बड़ी भारी कठिनाई नहीं उत्पन्न होगी। हमें अपने शिक्षा के तरीकों में थोड़ा अन्तर उत्पन्न करना होगा। यदि एक बार हम शिक्षा क्षेत्र से व्यापारीय दृष्टिकोण हटा दें और शिक्षा का जीवन से संबंध स्थापित कर दें तो हम अपने लक्ष्य के लिए बहुत कुछ कर सकेंगे। अभी तक हमारे अनुभवों के प्राप्त करने तथा उपयोग करने का क्षेत्र शिक्षालय ही रहा है। परन्तु थोड़ा परिश्रम कर यदि हम अपने शिक्षा संबंधी अनुभवों को जीवन से संबंधित कर दें तो हमारी कार्य-प्रणाली और दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर आ जायगा।

यदि हमारी यह धारणा है कि बालकों को शिद्दालय में अनुभव प्राप्त करना चाहिये और जब वे बड़े हो जायँगे तब अपने जीवन में उन अनुभवों का उपयोग करेंगे तो हमारी यह धारणा बड़ी ही हानिकर है। बालक प्रौढ़-जीवन का एक संचित रूप है। यदि हम अपने जीवन-दर्शन की नींव बाल्यावस्था में ही नहीं डाल देंगे तो बालकों का जीवन कैसे सुखप्रद होगा ? जब तक अपने जीवन-दर्शन की नींव हम बाल्यावस्था में ही नहीं डालेंगे तब तक हम शिद्दित और पूर्ण अनुभवी नागरिक नहीं उत्पन्न कर सकते। हमने देखा है कि बाल्यावस्था में लड़कियाँ गुड़ियों से खेलती हैं, लड़के साधारण वस्तुओं से खेलते हैं और भावी जीवन के लिए तैयारी करते हैं। जिस समय ये बच्चे अपनी वस्तुओं से खेलते हैं उस समय वे बड़ी सतर्कता के साथ अपनी वस्तुओं की रक्षा करते हैं तथा उन्हें अन्य बालकों की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति से बचाते हैं। वे बड़े धैर्य के साथ अपनी क्षमता और शक्ति का उपयोग करते हैं। अपने भोले और सरल रीति से वह वस्तुओं तथा सामाजिक संबंधों का अनुभव बड़े ही स्वाभाविक रीति से प्राप्त करता है।

हमारा केवल यही दृष्टिकोण है कि बालकों को शिद्दा देते समय इसी स्वाभाविकता की रक्षा की जाय। इस स्वाभाविकता को प्रौढ़ बनाने, उसको विस्तृत करने के प्रयत्न किये जायँ। क्योंकि इस प्रकार अनुभव प्राप्त करने की रीति जीवन से संबंधित है। हम चाहते हैं कि जीवन के अनेक क्षेत्रों के संबंध में विद्यार्थी पढ़ें, अवलोकन करें, प्रयोग करें तथा अनुभव प्राप्त करें और अपनी इस ज्ञान राशि के आधार पर नये जीवन दृष्टिकोण सम्मुख रखें। शिद्दा का यही सुखद फल हो सकता है और यही एक मानदण्ड है जिसकी सहायता से हमें इस बात का ज्ञान हो सकता है कि हमने शिद्दा के संबंध में जो कुछ पढ़ा है, जिन सिद्धांतों को स्वीकार किया है, वे कितने लाभप्रद और उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किसी विद्यार्थी के लिए केवल सिद्धान्तों का अध्ययन पर्याप्त नहीं। पुस्तकों द्वारा उन नियमों अथवा सिद्धान्तों के विषय में ज्ञान लेने से कोई लाभ नहीं

होता । उसका वास्तविक लाभ तो तब है जब विद्यार्थी उसके संबंध में स्वतः अपने अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करे ।

विश्लेषण और संश्लेषण

वैयक्तिक कार्यों तथा तथ्यों का पृथक रूप में महत्व हो सकता है परन्तु तथ्यों और वस्तुओं की सार्थकता का महत्व सम्बन्धित स्थिति में ही होता है । जब तथ्य तथा वस्तुएँ एक दूसरे से संबंधित होती हैं, अन्योन्याश्रित होती हैं, तब उनके पूर्ण और स्वाभाविक रूप का विकास होता है । अतः जीवन में हमें संश्लेषण तथा विश्लेषण दोनों की आवश्यकता पड़ती है । जिन तथ्यों की, जिन वस्तुओं के विश्लेषण की, हमें आवश्यकता हो उनका विश्लेषण कर हमें लाभप्रद तथा आवश्यक ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये, लेकिन हमें नयी वस्तुओं, नये तथ्यों, और नवीन विचार धाराओं के निर्माण के लिए संश्लेषणात्मक बुद्धि का भी विकास करना चाहिये । इस संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के द्वारा किसी वस्तु की पूर्णता का ज्ञान और अनुभव प्राप्त होता है । इस संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से, मनोभावना से, विषटित विश्व में हम एकता स्थापित कर सकते हैं । इसी संश्लेषणात्मक अनुभवों की शक्ति द्वारा हम उन प्राचीन यथार्थ तथ्यों के स्थान पर नवीन यथार्थ तथ्यों का निर्माण कर सकते हैं और उन विषटनात्मक प्रवृत्तियों को हतोत्साहित कर सकते हैं जिनके कारण हम जीवन में अब तक असफल होते रहे हैं ।

शिक्षालयों में शिक्षा प्रदान करने की जो संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति होती है उसके द्वारा हम लोगों में निष्क्रियता आती है । हम केवल एक कार्यक्रम के ढर्रे पर चलने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं । कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने का हमारा अभ्यास होता जाता है और हमारी जिज्ञासा की प्रवृत्ति सुषुप्त होती जाती है । इस संक्षेपीकरण द्वारा हमारे में वह शक्ति नहीं उत्पन्न होती जिसकी सहायता से सभी बातों के संबंध में हमें जानने की अभिलाषा जागरित होती है । जिज्ञासु बुद्धि का

अभाव रहता है। हमारी शिक्षा का जो भी प्रकार हो, हमें एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। वह बात है रचनात्मकता को भी अवसर प्रदान करना। यह बात तब उत्पन्न होती है जब हम किसी नवीन प्रकार से, सार्थक रूप से और संश्लेषणात्मक रीति से, तथ्यों के संबंध में, पाठ्यक्रम के संबंध में, विचार करते हैं।

सामग्री के उपयोग का उचित रूप

किसी भी विषय की शिक्षा के लिए वस्तुओं की रंकता नहीं होती। रंकता की भावना तो हमारे प्रकार में संनिहत रहती है। आज इतिहास, भूगोल अथवा साहित्य की शिक्षा के लिए वस्तुओं की कमी नहीं है। हम उन वस्तुओं का इस रूप में उपयोग करते हैं कि हमारी शिक्षा में रंकता और नीरसता उत्पन्न हो जाती है।

उदाहरणार्थ हम १८५७ की भारतीय क्रान्ति का विषय ले लें। हमारे अध्यापक इस विषय की किस प्रकार शिक्षा देते हैं इस पर हम थोड़ा विचार करें। कोई भी व्यक्ति सन् ५७ की क्रान्ति के महत्व के संबंध में किसी प्रकार का संदेह नहीं व्यक्त कर सकता। लेकिन उस क्रान्ति के कारण और गतिविधि की शिक्षा से बालकों को कोई विशेष लाभ होगा इसमें हमें सन्देह है। जब हम किसी क्रान्ति के संबंध में अध्ययन करते हैं तब हमें विभिन्न क्रान्तियों के काल का अध्ययन करना चाहिये और हमें यह देखना चाहिये कि किन परिस्थितियों और किन तत्वों के कारण ये क्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं और उन सबमें क्या समानता की बातें हैं। जब हम किसी ऐतिहासिक तथ्य का इस रूप में अध्ययन करते हैं तब उन तथ्यों और हमारे जीवन के तथ्यों से संबंध स्थापित होता है और इसके द्वारा एक स्वाभाविक तथा बोधगम्य ऐतिहासिक शृंखला बन जाती है। परन्तु बालकों को केवल ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन करने, तथा पुनः उन्हें उसी रूप में लिख डालने का ही अभ्यास कराया जाता है। इस प्रकार की शिक्षा का कोई भी महत्व

नहीं और न वह किसी प्रकार उपयोगी हो सकती है। अधिकतर लोग ये बातें भूल जाते हैं। अब तक हम लोग बौद्धिक अभ्यासों पर ही ध्यान देते रहे हैं। तथ्यों को याद करना तथा उनको संक्षेप में ही लिख देना बड़ी भारी कला समझी जाती रही है। लेकिन स्मरण शक्ति या रट्टूपन ज्ञान की परीक्षा का मानदण्ड नहीं है। तथ्यों को लेखबद्ध रूप में उगल देने से कहीं अधिक रचनात्मक कार्य तो मानचित्रों द्वारा उन्हें व्यक्त करना हो सकता है। क्योंकि इन मानचित्रों के निर्माण के समय उन्हें तथ्यों को चित्रित तथा क्रमिक रूप से रखने तथा सजाने का अवसर प्राप्त होगा।

शिक्षा की व्यवस्था तथा जिन प्रकारों के पद्ध में हम दलीलें पेश कर रहे हैं उस व्यवस्था तथा प्रकार से हम इस बात की आशा करते हैं कि साधारण नागरिकों के ज्ञान-आधार-पीठिका में पर्याप्त वृद्धि हो जायगी। आज अनेक शिक्षा शास्त्री, अनुपयुक्त रीति से विशेषज्ञता की शिक्षा के लिए शिक्षा का जो संकीर्ण प्रकार प्रचलित है, उसका विरोध कर रहे हैं। परन्तु यदि हम कार्य क्षेत्र की इस संकीर्णता का विरोध करते हैं तो उसके स्थान पर हमें इस प्रकार का पूर्व नियोजित कार्यक्रम सामने रखना होगा जिसकी सहायता से कार्य तथा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में आवश्यक एकता और संघटन स्थापित हो सके। हमें छात्रों को अनजान क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त करने के लिए अवसर देना चाहिये। परिचित विषयों के प्रयोग के लिए क्षेत्र प्रदान करना चाहिये। उन्हें केवल बातों को स्वीकार कर लेनेवाला तथा दूसरों की सम्मति को महत्व देनेवाला, व्यक्ति नहीं होना चाहिये। विद्यार्थी को एक जिज्ञासु के समान पग-पग पर प्रश्न करना चाहिये और उन विषयों के संबंध में तब तक निष्क्रिय नहीं होना चाहिये जब तक उनका वैयक्तिक अनुभव पूर्ण न हो जाय। हमारे शिक्षा का प्रकार स्वीकृत तथा अनुभूत ज्ञान पर आधारित है। हम स्मरण शक्ति पर आश्रित ज्ञान को नहीं बरन् अनुभूति द्वारा स्वीकार किये गये ज्ञान को महत्व देते हैं और यह चाहते हैं कि परीक्षा के समय भी इसी ज्ञान की परीक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये।

जब हम प्रश्न करते हैं कि महात्मा गांधी किस वर्ष उत्पन्न हुए थे, और महात्मा गांधी १६०५, १७२१, १८०५, १८६६, जिस सन् में उत्पन्न हुए हों उस सन् को रेखांकित करो। तब इन दोनों प्रश्नों में बड़ा अन्तर हो जाता है। पहले प्रश्न में बालक को अपनी स्मृति पर आश्रित रहना पड़ता है दूसरे में तथ्य उसके सामने है और उसे अपने अनुभव द्वारा उसे स्वीकार करना पड़ता है। जब प्रसंग स्वतः महत्वपूर्ण और सार्थक होते हैं तब तथ्यों को उन प्रसंगों के बीच में रखने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। अधिकतर जीवन के अनुभव क्षेत्र में हमें प्रसंगों का ज्ञान रहता है और उन प्रसंगों के बीच हमें सार्थक तथ्यों को बैटालना पड़ता है। हमें इस प्रकार की शिक्षा तथा परीक्षा प्रणालियों की आवश्यकता है जो इस प्रकार के बौद्धिक अभ्यासों और परीक्षणों को महत्व दें। जब हम असीम क्षेत्र, विस्तृत क्षेत्र की बात करते हैं तब उस समय हम निश्चित ध्येय को अनिश्चित स्थिति में नहीं छोड़ते। विशेषतः किशोर बच्चों की शिक्षा के अवसर पर दोनों की आवश्यकता पड़ती है। विस्तृत असीम क्षेत्र हमारी कल्पना, साहसिकता, तथा बुद्धि को चुनौती देता है तथा तात्कालिक अथवा निश्चित ध्येय हमें आवश्यक सुरक्षा तथा क्रमिक विकास का अवसर देता है।

परन्तु इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यकता है कि जो ध्येय हम निश्चित करते हैं वे कक्षा में पढ़ाये जानेवाले पुराने पाठ्यक्रम के कृत्रिम कार्य अथवा बौद्धिक अभ्यास पर नहीं आश्रित रहते। ये क्रम किसी भी महत्वपूर्ण कार्य की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन हैं।

सातवाँ अध्याय

अध्यापक का कार्य और उत्तरदायित्व

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के संबंध में हमने जो विचार व्यक्त किये उसको ध्यान में रखते हुए हमें सामाजिक अध्ययन के शिक्षक के कार्य और उसके उत्तरदायित्व के संबंध में विचार कर लेना चाहिये। जब तक हम अध्यापक और उसके उत्तरदायित्व के संबंध में पूर्णरूप से विचार न कर लें तब तक हमारे कार्य की जटिलता स्पष्ट न होगी। हमारी योजनाओं की सफलता बहुत कुछ अध्यापक पर निर्भर रहती हैं। अतः सामाजिक अध्ययन के अध्यापक के चुनाव के संबंध में भी हमें ध्यान रखना होगा। सामाजिक अध्ययन का शिक्षक आज साधारण स्थिति में नहीं है। उसे इस बात का सामना करना है कि बहु-संख्यक विद्यार्थियों की कक्षा में किस प्रकार प्रभावकर रीति से पढ़ाया जाय, उसे आज की वस्तु अल्पता का सामना करना है। कक्षा में ऐसे बोदे और मंद बुद्धिवाले लड़कों को भी साथ ले चलना है जिनको शिक्षित करने का कार्य कभी अध्यापक को अत्यधिक हताश और निराश कर देता है। सर्वोपरि उसके सम्मुख आज के विश्व की विषम स्थिति से उत्पन्न कठिनाइयाँ हैं। इन कठिनाइयों के कारण विभिन्न देशों में जो अव्यवस्थाएँ और संक्रमण की स्थिति उत्पन्न हो गई है उनका कोई स्पष्ट निर्णय कर सकना और भी अधिक कठिन है अतः इनके संबंध में भी उसे समयानुकूल निर्णय करना होगा।

इन बाह्य कठिनाइयों के अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिक तथा वातावरण संबंधी कठिनाइयाँ भी हैं। समाज में एक समूह ऐसे व्यक्तियों का भी है जो किसी प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखता। उसे अपनी चली आती प्राचीन परम्परा में विश्वास है। उसके लिए किसी प्रकार का भी

परिवर्तन बड़ा कष्टप्रद ज्ञात होता है। अतः इन कठिनाइयों का सामना करने के लिए अध्यापक को पूर्णरूप से तैयार रहना चाहिये।

सामाजिक अध्ययन का कार्य हाथ में लेनेवाले अध्यापक को यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिये कि वह न तो उस प्रकार का अध्यापक रह गया है जिसे एक कक्षा को सब विषय पढ़ाने हैं और न वह एक विशेषज्ञ है जो प्रत्येक कक्षा में जा जाकर अपना विशेष विषय पढ़ाया करता था। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि नवीन शिक्षा-योजना के अन्तर्गत अध्यापक का महत्व कम हो गया है। यदि देखा जाय तो नवीन शिक्षा योजना के अन्तर्गत अध्यापक का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। नयी योजना के कारण जो समस्याएँ उत्पन्न होंगी यदि उनका उसे समाधान करना है तो उसे बड़ा सतर्क रहना होगा। उसे प्रत्येक क्षण जिज्ञासु की बुद्धि रखनी होगी और साहसिकता के साथ प्रत्येक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

नवीन योजना के पूर्व अध्यापक को अपने विषय-विशेष के लिए ही परिश्रम करना पड़ता था। उसे अपने क्षेत्र के लिए पूर्ण क्षमता प्राप्त करनी पड़ती थी और यद्यपि उन्हीं विषयों की निरन्तर आवृत्ति होते रहने के कारण उसके जीवन में नीरसता उत्पन्न हो जाती थी परन्तु वह शिक्षा के लिए नवीन वस्तुओं की खोज के परिश्रम से बच जाता था। इस नवीन योजना के अन्तर्गत उसे अनवरत् रूप से नवीन वस्तुओं की खोज करनी पड़ती है। जिस प्रकार एक तेली का बैल अपने निश्चित मार्ग पर बिना किसी बाधा के चलता रहता है उसी प्रकार उसकी बुद्धि का मार्ग भी निश्चित सा हो गया था और उस मार्ग में तनिक सी बाधा उत्पन्न होने पर वह उसका विरोध करता था। उसके लिए मार्ग परिवर्तन की बात अत्यंत अप्रिय थी।

शिक्षक की स्थिति में परिवर्तन

सामाजिक अध्ययन के लिए जिन पाठ्यक्रमों का हम निर्देश करेंगे

उनके कारण शिक्षा के प्रकार और वस्तुओं के उपयोग के संबंध में भी उसके लिए नयी समस्याएँ उठ खड़ी होंगी। ढर्रे के अनुसार जो प्राचीन पाठ्यक्रम बनते थे और जिनकी गणना तर्कयुक्त पाठ्यक्रम में होती थी और जो केवल पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित रहते थे वे अब अधिक सहायक न होंगे। शिक्षा का जो पुराना ध्येय था उसे हमें छोड़ना पड़ेगा। अब विषय की शिक्षा का आधार भी मनोविज्ञान पर ही आधारित होगा। अब तो शिक्षा का रूप एक यात्रा के समान है जिसकी मोटी-मोटी बातों की योजना बना ली जाती है और यदि सब की इच्छा मार्ग परिवर्तन की होती है तो बड़ी सरलता से दूसरे मार्गों का अवलम्बन कर लिया जाता है। आज भी नेता—अध्यापक—का महत्व है लेकिन पथ के निश्चय करने का जो उसका एकाधिकार था वह समाप्त हो चुका है। आज एक ज्ञात लक्ष्य के प्रति भी केवल निर्देशमात्र किया जाता है। हमें इस बात में विश्वास करना चाहिये कि लक्ष्य पर पहुँचकर निष्क्रिय हो जाने से आशापूर्ण भावना से निरन्तर आगे बढ़ते रहना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। साहसिक कार्यों के लिए जो समय लगता है उसका अपना महत्व है। किसी लक्ष्य पर पहुँच जाने से कहीं अधिक उसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहने का महत्व है। सतत् प्रयत्नशील रहना स्वतः एक ध्येय है, लक्ष्य है। इस सतत् प्रयत्न में जब हम कभी रुककर अपने ज्ञान का लेखा-जोखा लगाते हैं तब उसका कम महत्व नहीं है। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही मिलकर अपने प्रयत्न के मार्गों और लक्ष्यों का निर्णय करते हैं।

यह सत्य है कि सामाजिक अध्ययन का जो विस्तृत तथा उदार पाठ्यक्रम होता है उसे कार्यान्वित कर सकना साधारण बात नहीं है। बहुत से अध्यापक उसके अनुसार कार्य करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करेंगे। यदि हम अपनी पुरानी परम्परा के अनुसार उनकी व्यवस्था करना चाहें तो इन विषयों की शिक्षा वे कतिपय अध्यापक ही दे सकते हैं जिन्हें पढ़ने लिखने का अभ्यास है और जो बराबर विस्तार के साथ

पढ़ते रहते हैं। प्राचीन नियमों के अनुसार अध्यापक को अपने पाठ्यक्रम की सम्पूर्ण बातें जानना आवश्यक होता था जिससे वह कक्षा में अभ्यास का कार्य करा सके। उसे कार्य करने का जो उत्साह प्राप्त होता था, वह शिक्षालय के कार्य अथवा बालकों की रुचि से नहीं बरन् उसकी शक्ति ही उसे ऐसे कार्यों के लिए प्रेरित करती थी। सामाजिक अध्ययन के पाठों और कार्यों की सफलता अध्यापक के ज्ञान के विभिन्न विभागों पर आश्रित न होकर उसके बौद्धिक दृष्टिकोण पर आश्रित है। उसमें यह क्षमता होनी चाहिये कि उसके छात्र सार्थक जिज्ञासाएँ उत्पन्न कर सकें और साथ ही उनमें ऐसी विनम्रता भी होनी चाहिये कि वे जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिए सम्पूर्ण कक्षा के साथ कार्य कर सकें। पहले वह निर्लिप्त भाव से निरीक्षक और निर्देशक होकर कार्य का संचालन करता था परन्तु इस नवीन योजना के अन्तर्गत तो उसे एक क्रियाशील व्यक्ति के रूप में कार्य करना होगा। वह बालकों के एक अंश के रूप में, और बालकों के समान ही जिज्ञासाओं के संभावित उत्तरों के संबंध में खोज करनेवाले व्यक्ति के समान कार्य करेगा।

उपयुक्त पुस्तकालयों का होना आवश्यक

इस प्रकार के कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व आवश्यक पुस्तकों का संग्रहालय होना आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं है कि कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही अध्यापक उन पुस्तकों का अध्ययन कर ले। लेकिन उसे उन पुस्तकों के संबंध में इतना ज्ञान होना तो आवश्यक है कि वह अपने विद्यार्थियों के खोज संबंधी कार्यों का निर्देशन कर सके। कुछ अंशों में यह बहुत ही अल्पश्रम साध्य कार्य है और कुछ अंशों में यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथा उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है। क्योंकि बालक के जीवन की सम्पूर्ण प्रगति इसी पर आश्रित होती है। प्रौढ़ जीवन से इसका स्पष्ट संबंध होता है। इस प्रकार का उत्तरदायित्व प्राचीन पाठ्यक्रम की शिक्षा के अवसर पर न था।

आज सामाजिक अध्ययन का जो क्षेत्र है उसकी भूतकाल में विचित्र गति थी। अध्यापक कक्षा में आकर मौखिक रूप से भाषण करता था। और इस भाषण करने के समय एक विचित्र प्रकार का असफल दृश्य सामने आता था। अध्यापक निरन्तर एक ही बात को दुहराता रहता था। उसकी बातों में, उसके ज्ञान में, किसी प्रकार की नवीनता नहीं होती थी। जीवन पर्यन्त बिना किसी नवीन भावना अथवा विचार के वह एक ही बात अनेक वर्षों तक कहता रहता था। इस प्रकार की योजना का फल यह होता था कि क्रमशः उसके वैयक्तिक गुणों का ह्रास होता था। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के प्रकार में यह एक बड़ी भारी विशेषता है कि वह अध्यापक को ऐसे अवसर प्रदान करता है कि उसे कार्य करने के अवसर पर नवीन भावनाएँ और नवीन शिक्षा सामग्री निरन्तर प्राप्त होती रहे।

मार्ग-प्रदर्शन का कार्य सरल नहीं

बहुत से लोगों का विचार है कि लड़कों पर हावी होकर, तथा उनका निर्देश कर, काम कराने से मार्ग प्रदर्शन करना सरल होता है। इस प्रकार की धारणा रखना ठीक नहीं। मार्ग प्रदर्शन का काम अत्यधिक जटिल होता है। मार्ग प्रदर्शन के लिए भिन्न कला की आवश्यकता होती है। वही अध्यापक उपयुक्त रीति से मार्ग प्रदर्शन कर सकता है जिसके जीवन संबंधी दृष्टिकोण निश्चित, और लक्ष्य, उपयुक्त हैं। नये प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षक कक्षा के पाठ्यक्रम अथवा परीक्षा रूपी टट्टी की ओट में शिकार नहीं खेल सकता और न अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से बच सकता है। विचार विनिमय के समय उसे लड़कों के साथ योग देना पड़ता है। विद्यार्थियों की साधारण बुद्धि के बाहर की वस्तुओं के प्रति उसे रुचि उत्पन्न करने का कार्य करना पड़ता है और अनभिज्ञ वस्तुओं का इस प्रकार उपयोग करने की व्यवस्था करनी पड़ती है कि वे शिक्षार्थी की क्षमता और अनुभव के अनुकूल हो जायँ। आज्ञा देकर, व्यक्तिगत रूप से शिक्षार्थी को क्रियाशील बनाने के स्थान पर उसे शैक्षिक वातावरण

उत्पन्न करना पड़ता है। इस शैक्षिक वातावरण के साथ ही, बिना किसी दबाव के, अथवा बिना किसी कृत्रिम प्रयोगों और साधनों के, उसे शिक्षार्थी की कार्य क्षमता का स्तर ऊँचा करना और उनसे अच्छा कार्य कराना पड़ता है। अपनी प्रगति को समझने के लिए छात्रों के सम्मुख उनकी सफलता के क्रमों का होना आवश्यक है। इस प्रकार के क्रमों से उन्हें अपनी प्रगति के संबंध में ज्ञान होता रहेगा और वे यह अनुभव करेंगे कि वे वास्तव में जीवन में प्रगति कर रहे हैं और उनका जीवनपूर्ण रूप से सुरक्षित है। उनके प्रकट होनेवाले विकास और प्रगति के लिए बौद्धिक साहसिकता की आवश्यकता भी अनिवार्य है।

सामाजिक अध्ययन की व्यवस्था करनेवाले अध्यापक के सम्मुख कुछ व्यवस्था और कुछ रीति संबंधी समस्याएँ आ खड़ी होंगी। यदि हम यह जान लें कि वे समस्याएँ क्या हैं तो हमारा कुछ अधिक लाभ होगा। कम से कम इनका ज्ञान रहने के कारण अध्यापक सतर्क रहेगा। इनमें से कुछ समस्याओं के हल भी हम बतलाने का यत्न करेंगे परन्तु कुछ समस्याओं को इसलिए अछूती छोड़ देगे कि उनके संबंध में प्रत्येक अध्यापक सोचे और अपने व्यक्तिगत अनुभवों का उपयोग करे। केवल यही रीति है जिसकी सहायता से हम अपने अनुभव-जन्य प्रकारों पर अपनी कक्षा के कार्यों को आश्रित कर सकते हैं।

१—अध्यापक के सम्मुख सबसे बड़ी और प्रधान समस्या यह होगी कि वह इतने विस्तृत और विशाल पाठ्यक्रम का किस रीति से सामना करे और अपने को किस प्रकार उसके उपयुक्त बनाये।

२—अध्यापक के लिए बालकों के समूहों के लिए सामग्री का चयन भी एक कठिन कार्य होगा। किस समूह के लिए कौन सी सामग्री उपयुक्त होगी और कौन सा समूह किस कार्य के लिए उपयुक्त होगा इसका निर्णय बालकों के अनुभवों द्वारा अध्यापक को करना होगा।

३—अपरिचित और अनजान वस्तुओं के प्रति रुचि उत्पन्न करना बड़ा कठिन होता है। अतः अध्यापक को कुछ इस प्रकार की व्यवस्था

करनी होगी कि अपरिचित और अनजान वस्तुओं को वह शिक्षार्थी की रुचि और अनुभव के अनुकूल बना सके ।

४—अध्यापक के लिए इस बात का निर्णय कर सकना कठिन होगा कि जो सामग्री बालकों के लिए चुनी गई है वह वास्तव में सार्थक तथा उपयुक्त है या नहीं । इस निर्णय के लिए मानदण्ड निश्चित करना कठिन हो जाता है ।

५—वैयक्तिक और सामूहिक कार्यों में संतुलन बनाये रखना बड़ा आवश्यक है । यह भी एक महत्वपूर्ण समस्या है । जब तक इन दोनों प्रकार के कार्यों में संतुलन नहीं रखा जायगा तब तक व्यक्ति और समाज दोनों का उपयुक्त रीति से विकास न होगा और न सहयोग की भावना जागरित होगी ।

६—वस्तुओं का और उनके द्वारा प्राप्त फलों का किस प्रकार अङ्कन किया जाय कि उनकी रचनात्मकता बनी रहे और वे अपने रचनात्मक मूल तत्वों से न्युत न हों । क्योंकि जहाँ वस्तुओं की रचनात्मकता के संबंध में बच्चों में सन्देह उत्पन्न हुआ वहाँ फिर उनकी रुचि उस वस्तु के प्रति नहीं रह जायगी ।

७—नयी व्यवस्था के उपयुक्त पुस्तकों, वस्तुओं, और साधनों का चुनाव किस प्रकार किया जाय और इन्हें कहाँ से और कैसे प्राप्त किया जाय ? आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक को ऐसी वस्तुओं का स्वतः निर्माण करना पड़ेगा ।

८—अपने रचनात्मक कार्यों की इस प्रकार कैसे व्यवस्था की जाय कि तात्कालिक ध्येय भी प्राप्त हो जाय और उनमें क्रियाशीलता की निरन्तरता भी बनी रहे और बालक निष्क्रिय न हो जायँ । कहने का तात्पर्य यह है कि क्षेत्र की असीमता के प्रति क्रियाशील रहते हुए आवश्यक ध्येयों और लक्ष्यों की प्राप्ति भी होती रहे ।

९—बालकों में अपने कार्य के प्रति रुचि और उसकी व्यवस्था की योग्यता किस प्रकार उत्पन्न की जाय । साथ ही यह भी आवश्यक है कि

अध्यापकों में भी वह साहसिकता उत्पन्न हो जाय कि वे बालकों को अपने कार्य करने की स्वतन्त्रता दें तथा उन्हें अपना उत्तरदायित्व सँभालने का अवसर प्रदान करें ।

१०—कक्षाध्ययन और कक्षा में रहकर शिक्षा व्यवस्था के संबंध में हमारी जो धारणाएँ हैं उनसे कैसे बचा जाय । उनकी नीरस दलीलों से अपनी किस प्रकार रक्षा की जाय ।

११—विद्यार्थियों द्वारा अर्जित अनुभव तथा अनुभूतियों की किस प्रकार व्यवस्था की जाय कि उनकी व्यक्तिगत अनुभूति राशि के संबंध में विचार विनिमय, कार्यों का आदान-प्रदान तथा सामूहिक और सहयोगी रूप में कार्य हो सके ।

१२—पूर्ण तथा अन्तिम लक्ष्य का निर्णय किये बिना किस प्रकार वाद-विवाद और विचार विनिमय की भावना का मार्ग प्रदर्शन किया जाय ।

१३—कौन से सिद्धान्तों का और किस प्रकार का व्यवहार किया जाय कि बालक पूर्ण स्वतन्त्रता का अनुभव करता हुआ भी अनुशासन में रहने के लिए स्वेच्छा प्रकट करे तथा उसकी आन्तरिक विनय की भावना का विकास हो ।

कौन सा अध्यापक उपयुक्त होगा

बहुत से विशेषज्ञ अध्यापक इस प्रकार की समस्या प्रधान शिक्षा से कठिनाई में पड़ेंगे । विषय-शिक्षा की अपेक्षा इस प्रकार की शिक्षा उनके लिए कष्ट साध्य और परेशानी उत्पन्न करनेवाली होगी । बहुत से अध्यापक इन कार्यों को शिक्षा का प्राथमिक रूप कहकर हँसी उड़ावेंगे और इन्हें हवा में उड़ा देना चाहेंगे । जो अध्यापक विशेषज्ञता का जितना ही अधिक उत्साही और सक्षम कार्यकर्ता होगा वह उतना ही इसका विरोध करेगा क्योंकि ये मार्ग उसकी निश्चित प्रणाली में उतना ही अधिक बाधा उत्पन्न करेंगे । उसने अपनी कुछ निश्चित धारणाएँ बना रखी हैं जो पूर्णतः निश्चित और संकीर्णता की सीमा में बँध चुकी हैं तथा

उनमें अब वह किसी प्रकार का अन्तर नहीं उत्पन्न करना चाहता। वह किसी प्रकार के परिवर्तन का समर्थन नहीं करेगा। परन्तु वास्तव में योग्य तथा अपने शिक्षार्थियों के हित का ध्यान रखनेवाला विशेषज्ञ अध्यापक कुछ दूसरी ही प्रकृति का होता है। उसमें संकीर्णताएँ नहीं होतीं वह अपने विद्यार्थियों के हित को सर्वोपरि स्थान देता है। ऐसा योग्य अध्यापक अपनी संकीर्ण सीमाओं का आवश्यकतानुसार अतिक्रमण करता है और अपने कार्यों का जीवन के प्रसंग के साथ मेल बैठाने का भी यत्न करता है।

भूगोल शिक्षण के अवसर पर इस प्रकार के मेल का रूप बहुत ही स्पष्ट होता है। भूगोल शिक्षण के समय स्थानीय भूमि का निरीक्षण और परीक्षण, वातावरण का अध्ययन, भूमि के उपयोग और प्रयोग की क्षमता, वातावरण तथा मनुष्य का सहयोगी संबंध, आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनका अध्ययन भूगोल के साथ अब किया जाने लगा है। प्राचीन प्रणाली के अनुसार प्राकृतिक विभाग और राजनीतिक विभाग का अध्ययन मात्र अब पर्याप्त नहीं समझा जाता। आज का एक योग्य अध्यापक भूगोल के साथ इन स्थानीय वस्तुओं के अध्ययन का भी कार्य करने लगा है। इस प्रकार के अध्ययन से हम सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के बहुत निकट आते जाते हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आज का अध्यापक, विशेषतः विशेषज्ञ अध्यापक अपने विषय के जाल में इतना बँधा रहता है कि वह उसके बाहर आना ही नहीं चाहता। हम केवल उन्हीं बातों को कहना चाहते हैं या करना चाहते हैं जिनके संबंध में हमें पूर्ण परिचय प्राप्त है और जिनसे हम भली-भाँति परिचित हैं। इस प्रकार की शिक्षा वृत्ति की शिक्षा के अवसर भले ही लाभप्रद हो और इस प्रकार की धारणा का कारण ही वृत्ति-शिक्षा है लेकिन यहाँ यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि हम सामाजिक अध्ययन की शिक्षा की व्यवस्था साधारण शिक्षा के रूप में करना चाहते हैं और इसका संबंध साधारण जीवन से है। हम इस प्रकार की शिक्षा द्वारा चिकित्सक, अध्यापक,

लेखक, आदि उत्पन्न करने की व्यवस्था नहीं कर रहे हैं। हमारी इस शिक्षा व्यवस्था का केवल यही तात्पर्य है कि वह मनुष्य को मनुष्य बनाये और सब लोगों को मानवता के साधारण स्तर पर ला खड़ा करे।

हमें यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि प्राचीन समय में पाश्चात्य ढंग से संघटित शिक्षालयों का भी अपना महत्व था। वे भी किसी कार्य विशेष के लिए संघटित किये गये थे और उनका आधार परीक्षा और पुस्तकीय ज्ञान था। इन शिक्षालयों द्वारा विभिन्न वर्ग के लोगों का भी साधारण रूप से निर्माण होता था। इन शिक्षालयों का कार्य स्पर्धा पर अधिक आश्रित होता था। लड़कों में आपसी ईर्ष्या-द्वेष और स्पर्धा की भावना तीव्र गति से बढ़ती थी। इसका फल यह होता था कि जब इन विद्यालयों से शिक्षित होकर लड़के बाहर आते थे तब समाज में भी वे इसी प्रकार की भावना उत्पन्न करते थे। मध्यम श्रेणी का सामाजिक वर्ग निरन्तर स्पर्धा में ही अपना जीवन व्यतीत कर देता था। इस स्पर्धा के कारण जो लड़के योग्यतम सिद्ध होते थे उन्हें समाज में भी उच्च स्थान प्राप्त हो जाता था। इन शिक्षालयों की सहायता से सामाजिक सम्मान और पुस्तकीय ज्ञान का सर्वोत्तम फल प्राप्त हो जाया करता था। परीक्षा की पद्धति के कारण प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञानार्जन की भावना भी उत्पन्न हो जाया करती थी। इस प्रकार की सफलताएँ साधारण सफलताएँ नहीं कही जा सकतीं। हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि शिक्षा की इस प्राचीन प्रणाली ने शिक्षा प्रगति में पर्याप्त योग दिया और शिक्षा की प्रगति का यह एक महत्वपूर्ण अंश भी थी। लेकिन पहले शिक्षा का क्षेत्र सीमित था अतः ये सब बातें ठीक प्रतीत होती थीं परन्तु अब शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत हो गया है। वैज्ञानिक अनुसंधानों ने मानव समाज को नवीन चेतनाएँ प्रदान की हैं अतः हमें शिक्षा प्रदान करनेवाली पुरानी प्रेरणाओं के संबंध में पुनः विचार करना होगा। इन प्रेरणाओं पर विचार करने के साथ ही हमें अब अपनी शिक्षा प्रणाली और दृष्टिकोण में परिवर्तन करने की भी आवश्यकता पड़ेगी।

आज का युग व्यक्ति से अधिक समाज को महत्व देता है अतः हमें कुछ इस प्रकार के साधन ढूँढ़ निकालने होंगे कि व्यक्ति के विकास की गति भी न रुके और युग धर्म के अनुसार समाज का विकास भी होता चले । हमें इस बात पर भलीभाँति विचार करना होगा कि उन प्राचीन प्रेरणाओं से हम व्यक्तिगत विकास का अब कहाँ तक काम ले सकते हैं । विशेषज्ञ द्वारा प्रदान की जानेवाली शिक्षा प्रणाली के कुछ और गुणों के संबंध में लोग दलील पेश करते हैं । लोगों का कहना है कि विशिष्ट विषय के विशेषज्ञ अध्यापकों द्वारा शिक्षा दी जाने का यह परिणाम होता है कि विद्यार्थी विभिन्न विषयों की पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और इस प्रकार की शिक्षा में गहराई और स्थायित्व होता है । यदि विशेषज्ञ द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती तो विद्यार्थियों को वह स्थायी और गहरा ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता जो उसे विशिष्ट स्थिति और वातावरण के कारण प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार की विशेष शिक्षा के द्वारा बालकों को विनय की भावना का भी अनुभव हो जाता है और किसी विषय विशेष के संबंध में गहराई के साथ अध्ययन करने से उसकी विचार शक्ति और कार्य शक्ति का भी विकास हो जाता है । दूसरी बात यह कही जाती है कि किसी कार्य की योजना जब कुछ दिनों तक निरन्तर चलती रहती है तब विशेषज्ञ की संरक्षकता के अन्तर्गत कार्य करते रहने के कारण उन विद्यार्थियों का चुनाव बड़ी अच्छी तरह हो सकता है जो किसी कार्य विशेष के लिए अत्यन्त उपयुक्त और योग्य होते हैं तथा जिन्हें उन विषयों की विस्तृत तथा विषद् शिक्षा दी जाय । यद्यपि इस योजना के अनुसार शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी एक ही अध्यापक के निर्देशन में कार्य करते हैं फिर भी उन्हें विभिन्न विषयों के अध्यापकों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है तथा वे विभिन्न प्रकार की शक्तियों को प्राप्त कर लेते हैं ।

दलील का दूसरा पक्ष

उपर्युक्त दलील के विपक्ष में बहुत सी बातें कही जा सकती हैं और

उनका महत्व कम नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विशेषज्ञता की शिक्षा से एक विचित्र प्रकार की संकीर्णता उत्पन्न होती है। इस संकीर्णता के कारण बालक के मस्तिष्क में कार्य शीघ्र समाप्त करने तथा उसके संबंध में व्यस्त रहने के कारण एक विचित्र प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस अव्यवस्था के कारण वह किसी कार्य को अधिक दिन तक करने के लिए उत्साहित नहीं होता। इस प्रकार किसी कार्य के प्रति निरन्तरता की भावना उसमें नहीं उत्पन्न होती। शिद्दालय में बच्चे की विचित्र स्थिति होती है। वह विभिन्न वृत्ति की शिक्षा देनेवाले अध्यापकों के बीच, कार्य काल में, गेंद की तरह एक स्थान से दूसरी स्थान तक लुढ़कता रहता है। जहाँ तक विषय का संबंध है, ऐसी शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षा की वस्तुओं का चुनाव तो ठीक होता है परन्तु प्रणाली तथा प्रकार पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। विभिन्न विषयों की शिक्षा एक कृत्रिम अनुशासन के अन्तर्गत दी जाती है। इन अनुशासनों का संबंध विषय की शिक्षा से भले ही रहता हो परन्तु उसके द्वारा बालकों में वह आन्तरिक शक्ति नहीं उत्पन्न होती जिसकी सहायता से वे किसी कार्य को स्वाभाविक रीति से करने के लिए विनय की भावना प्राप्त कर सकें। उपर्युक्त शिक्षा के अन्तर्गत विनय की भावना का रूप अनुशासन का रूप भले ही कहा जा सकता है परन्तु उसके द्वारा ऐसी विनय की भावना नहीं उत्पन्न होती जिसका प्रयोग वह जीवन के विस्तृत क्षेत्र में कर सकें।

मानव बुद्धि की विशेषता

विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए मानव रुचि को जो कृत्रिम सीमाओं में सीमित रखने का यत्न किया जाता है उसके कारण विचित्र स्थिति उत्पन्न होती है। उस विषय विशेष की तैयारी के लिए उन सीमाओं का महत्व हो सकता है पर इस प्रकार की सीमाएँ उपयुक्त नहीं कही जा सकती। हमारी तो यह धारणा है कि वर्तमान कार्य का यदि केवल यही महत्व है कि वह हमें भावी कार्य के लिए तैयार करता है तो

इस प्रकार का कार्य कुछ अशुद्ध धारणाओं पर आश्रित है। इसका अर्थ यह है कि हमारी चिंतन और निर्णय प्रणाली सदोष है। यदि हमारे प्रत्येक कार्य का महत्व है तो वह अपने में पूर्ण होना चाहिये और उसके द्वारा हमें तत्काल अनुभूति तथा अनुभव प्राप्त होने चाहिये। मानव जीवन कोई भवन नहीं है जिसका निर्माण आंशिक रूप से किया जा सकता हो। हमारे बौद्धिक विकास का कार्य कभी आंशिक रूप से नहीं किया जा सकता। बुद्धि को हम इस प्रकार के क्रमिक ढर्रे पर नहीं ले चल सकते और यदि हम इस प्रकार के क्रमिक ढर्रे पर ले चलने में सफल भी हुए तो इसका परिणाम यह होगा कि या तो मनुष्य की प्रगति रुक जायगी या वह इतना अधिक बुद्धि तत्व से आवृत हो जायगा कि उसके जीवन और चिंतन प्रणाली में एक गहरी खाई उत्पन्न हो जायगी।

जिस प्रकार, यदि हम बालक को बड़ी छोटी अवस्था में पढ़ने-पढ़ाने के लिए बाध्य करें तो प्रगति की अपेक्षा हानि अधिक होती है उसी प्रकार यदि हम बालकों की रुचि को पुस्तकीय ज्ञान की सीमा में बाँधने का यत्न करेंगे तो उनकी शक्तियों का विकास तो नहीं ही होगा हास भले ही हो जाय। इस प्रकार की संकीर्णताओं से बालकों का सहज तथा स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

हम प्राचीन शिक्षा प्रणाली की विशिष्टता को स्वीकार करते हुए यह कहना चाहेंगे कि उसके शिक्षाकाल का अधिक अंश नष्ट होता है। उसका कार्य प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थियों की शक्तियों का कृत्रिम कार्यों में अपव्यय होता था। हमने यह अनुभव किया है कि इस शिक्षा के अन्तर्गत अनेक प्रतिभावान बालक अपने समय का अपव्यय करते रहे हैं और अन्त में वे परीक्षा में उत्तीर्ण होकर एक प्रमाण पत्र मात्र लेकर जीवन में अवतीर्ण हुए हैं। यह प्रमाणपत्र उनको जीवन के लिये किनारा उपयुक्त बनाता रहा है यह हम आप सब जानते हैं। इस सदोष शिक्षा का सारा उत्तरदायित्व विशेषज्ञता की शिक्षा को ही रहा है।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि बच्चों को भी ऐसे अवसर मिलने चाहिये कि वे जो कुछ पढ़ते हैं उसे गुने। जो कुछ गुनते हैं उसको कार्यान्वित करने का अवसर प्राप्त करें। उन्हें इस बात का अवसर मिले कि वे अपनी रुचि के अनुसार कार्य करें। हमें बालकों को इस बात का अवसर देना चाहिये कि वे बड़ों की परिपक्व विचारधारा के सम्पर्क में आयें और उनकी इच्छा के अनुसार कार्य कर प्रशंसा प्राप्त करें। यदि हम अपने शिक्षार्थियों को इस प्रकार का अवसर नहीं देते तो यह निश्चित है कि हम उनके स्वाभाविक विकास को कुण्ठित करते हैं। हमारी धारणा है कि विशेषज्ञता की शिक्षा द्वारा वह स्थिति नहीं उत्पन्न होती जिसकी आवश्यकता उपर्युक्त पक्ष के लिए होती है। विशेषज्ञता की शिक्षा द्वारा शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों की रुचि में संकीर्णता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे विरले ही अध्यापक होते हैं जो विशिष्ट ज्ञान को अन्य क्षेत्र के ज्ञानों के साथ समन्वित करते हैं और उन्हें महत्व प्रदान करते हैं।

बालकों की शिक्षा की व्यवस्था करनेवाले लोगों को यह बात भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि उन्हें बच्चों को ऐसे अध्यापकों के अन्तर्गत कार्य करने का अवसर देना चाहिये जो उन्हें भलीभाँति समझता है और उनकी देख-रेख करता है। कक्षा में पढ़ानेवाले अध्यापक से इस प्रकार की आशा करना कि वह छात्र की देख-रेख करेगा और उनके संबंध में निरन्तर छानबीन करता रहेगा एक दुराशामात्र है। कक्षा में पढ़ानेवाला अध्यापक अनुशासन और कागजी लिखा पढ़ी में इतना लगा रहता है कि वह हमारे ध्येय, हमारे लक्ष्य के अनुसार कार्य ही नहीं कर सकता। अतः हमें यह कहने में कोई हिचक नहीं कि हमारी योजनाएँ विशेषज्ञता के आधार पर निर्मित कार्यक्रम द्वारा नहीं पूरी की जा सकतीं। इस प्रकार के कार्यक्रमों से मुक्ति पाना हमारी योजना का एक मुख्य लक्ष्य है। लेकिन किसी कार्यक्रम को सहसा त्याग देना तो आसान है लेकिन उसके स्थान पर नयी योजनाओं को कार्यान्वित करना बड़ा कठिन होता है। अतः हमारा यह विश्वास है कि हमें पुरानी प्रणाली को छोड़कर नवीन प्रणाली

के अनुसार कार्य करने के लिए क्रमशः आगे बढ़ना चाहिये। अध्यापकों को भी हमें इस बात के लिए समय और अवसर देना चाहिये कि वे अपने कठघरे से बाहर आकर उस साधारण स्तर पर आयें जहाँ सबका साथ हो सके। हमें ऐसी आशा है कि यदि अध्यापकों को अवसर दिया जाय और उन्हें नवीन प्रणाली की आवश्यकता बतलायी जाय तो वे अपने को उसके अनुसार बना लेंगे। वर्तमान पृथक्करण की भावना का कारण है अशुद्ध प्रकार का संघटन और साथ ही अध्यापक भी इसके लिए उत्तरदायी हैं क्योंकि उनकी शिक्षा इसी रूप में हुई है और वे इसी प्रकार की योजनाओं के लिए तैयार किये गये हैं।

यह समझना कि, अध्यापकों में उन गुणों का अभाव है जिसके कारण वे नवीन वातावरण के अनुसार कार्य कर सकते हैं, ठीक नहीं। उनमें वे सभी गुण वर्तमान हैं। हमें केवल अपने संघटन के प्रकार में परिवर्तन उत्पन्न करना होगा। वर्तमान विश्व की विधटनात्मक प्रवृत्ति को देखते हुए हमें अपने अध्यापकों और छात्रों को इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये जिससे वे सहयोग पूर्वक कार्य कर सकें, और दूसरे के साथ मिल कर सौहार्दपूर्ण रीति से काम करने का अभ्यास उत्पन्न करें। हमें इसकी पूर्ण आशा और विश्वास है कि अध्यापक और अध्ययनकर्ता दोनों ही नयी स्थिति की चुनौती स्वीकार करेंगे और समय के अनुसार कार्य करने की शक्ति उत्पन्न कर लेंगे।

पृथक्करण दूर करने के उपाय

शिक्षा संघटन में पृथक्करण का जो प्रकार प्रचलित है उसे हम किस प्रकार से दूर कर सकते हैं हमें इस पर विचार करना चाहिये और विषय-समन्वय तथा सहयोग की भावना पर भी विचार करना चाहिये। विषयों का समन्वय ऐसे प्रकार के कार्यों का सुझाव सामने रखता है जिनमें धारणा की अपेक्षा बाह्य प्रभावों के कारण समन्वय उत्पन्न होता है। मनुष्य तब एक साथ कार्य करने के लिए तैयार होता है जब उसे यह ज्ञात हो

जाता है कि किसी कार्य को वह अकेले नहीं कर सकता और उस कार्य द्वारा उसका बड़ा हित होगा। कोई भी कार्य उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त नहीं होता। क्योंकि उपयुक्तता और अनुपयुक्तता का निर्णय तो ध्येय करेगा, जिसके लिए कोई कार्य किया जाता है। सहयोगी कार्य धारणा पर आश्रित होता है। जब हमें यह धारणा हो जाती है कि यह कार्य उपयुक्त है तब हम सहयोगपूर्वक कार्य करने लगते हैं। अनिच्छा से भी किसी काम में लोग लगाये जा सकते हैं, लेकिन सहयोगपूर्वक कार्य स्वेच्छा से और स्वतन्त्रतापूर्वक ही हो सकता है। यदि हम चाहते हैं कि सामाजिक अध्ययन का कार्य सफल हो तो हमें सहयोगपूर्वक काम करने की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।

शिक्षालय में पढ़ाये जानेवाले विषयों के सामाजीकरण से हमें केवल यह लाभ हो सकता है कि हम विभिन्न विषयों का एकीकरण अथवा समन्वय कर सकें परन्तु संभव है स्वतन्त्र वास्तविक सहयोग न प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की व्यवस्था से संभव है प्रत्येक विशेषज्ञ अध्यापक अपने विषय के संबंध में सोचने और उसके आधिपत्य की स्थापना करने का यत्न करते रहें और अन्य अध्यापकों को अपने क्षेत्र से दूर रहने का आदेश देते रहें। हम शिक्षा व्यवस्था में इस प्रकार की उदारता चाहते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न अध्यापक विभिन्न समूहों की सहायता के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकें। इस प्रकार जब स्वतन्त्रतापूर्वक अध्यापकों और शिक्षकों का मिलन होगा तब उन्हें सत्य की वास्तविक प्रगति तथा धारणा में क्या संबंध है इसका ज्ञान हो सकेगा। जब हम शिक्षालय की व्यवस्था इन आधारों पर करेंगे तब अध्यापकों के जीवन में भी सरसता आ जायगी तथा शिक्षालय के कार्यक्रम में जो शुष्कता है वह दूर हो जायगी। इस वातावरण की सहायता से यह भावना भी दूर हो जायगी कि पुस्तकों की बातों को रट लेना और उन्हें याद रखना मात्र ही शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है। इस वातावरण के अन्तर्गत अध्यापक भी सरसरीति से अध्यापन कर सकेगा।

आठवाँ अध्याय

सामाजिक अध्ययन की प्रारंभिक योजनाएँ

बहुत से अध्यापक जो सामाजिक अध्ययन के संबंध में हमारे साधारण ध्येयों को स्वीकार करने के लिए तैयार होंगे, और हमारी दृष्टि को शिक्षा क्षेत्र के लिए उपयुक्त मानने को उद्यत होंगे, यह चाहेंगे कि इस संबंध में हम उनके सामने सामाजिक अध्ययन के कुछ ऐसे व्यावहारिक रूप रखें जिससे हमारी योजनाएँ और भी अधिक स्पष्ट हो जायँ। हम इस अध्याय में सामाजिक अध्ययन की वस्तु और उसके संबंध में कुछ जिज्ञासाओं के विषय विचार करेंगे। साथ ही हमें उन समस्याओं पर भी विचार कर लेना चाहिये जो सामाजिक अध्ययन की प्राथमिक योजनाओं के कार्यान्वित करने के समय उत्पन्न होंगी।

पाठ्यक्रम निर्माण में सतर्कता की आवश्यकता

पाठ्यक्रम निर्धारण के समय हमें निम्नलिखित तीन बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

१—जहाँ तक संभव हो पाठ्यक्रम में वस्तुओं का चुनाव सतर्कता से करना चाहिये। उनमें विभिन्न विषयों की इस प्रकार भीड़ न उत्पन्न हो जाय कि विद्यार्थी को उनसे कुरुचि उत्पन्न हो जाय।

२—पाठ्यक्रम का विस्तार इस प्रकार नहीं करना चाहिये कि अन्त में उसका कोई परिणाम न निकले और वह बालकों की अनुभव वृद्धि न कर उनमें भ्रम और अव्यवस्था उत्पन्न कर दे।

३—पाठ्यक्रम में संकीर्णता और सीमितता नहीं होनी चाहिये।

जब हम विश्व की समस्त शतव्य बातों और मानव जीवन के संबंध में विचार करते हैं तब संसार, मनुष्य, और समाज के संबंध में हमें इतनी

आकर्षक बातों का पता चलता है कि हम उन सबकी शिक्षा विद्यार्थी को देना चाहते हैं। ये विषय ऐसे हैं कि वे मनुष्य की ज्ञान पीठिका के लिए हमें बहुत आवश्यक प्रतीत होते हैं। इन विभिन्न वस्तुओं की हम तालिका बना लेते हैं और यह चाहते हैं कि तालिका की सम्पूर्ण बातें विद्यार्थी को बतलायी जायँ। हम यह समझते हैं कि इस प्रकार विद्यार्थी को हम जो कुछ शिक्षा देंगे वह सब उसकी बुद्धि में सदा के लिए वर्तमान रहेगा, और उसे स्थायी ज्ञान प्राप्त हो जायगा तथा आवश्यकता पड़ने पर वह उन वस्तुओं का उपयोग कर सकेगा। परन्तु यदि हम ध्यान से देखें तो उन वस्तुओं का आकर्षण हमें अपने पहले सिद्धान्त से व्युत्पन्न कर देता है। हम यह भूल जाते हैं कि बहुत सी बातों को एक साथ बतलाकर अव्यवस्था उत्पन्न करने की अपेक्षा कुछ ऐसी बातें बतलाना अधिक लाभप्रद होगा जो बालक समझ सके और जिनका अवसर पड़ने पर उपयोग कर सके। जिस प्रकार अधिक भोजन करना और बिना भूख लगे पेट को अनावश्यक सामग्री से ठूसना हानिकर होता है और उसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार पाठ्य सामग्री का भी प्रभाव उत्पन्न होता है।

पाठ्यक्रम का विस्तार इस रीति से नहीं करना चाहिये कि उसमें उद्देश्य हीनता उत्पन्न हो जाय। अधिक विस्तार के कारण उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे विस्तार से ज्ञान की वृद्धि भी नहीं होती। इस प्रकार का विषयों का विस्तार, बालक के अनुभव और शिक्षा में समन्वय स्थापित न कर उनके मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न करता है।

संकीर्णता पाठ्यक्रम की सबसे दुःखदायी कमी और भूल है। यदि अध्यापक निश्चित समय में अपने पाठ्यक्रम को समाप्त करने के लिए आतुर हैं तो इसका फल यह होगा कि वह पाठ्यक्रम और बालकों के अनुभव में एकीकरण नहीं उत्पन्न कर सकेगा और बालकों के अनुभव की ओर ध्यान न देकर आगे बढ़ जायगा। प्राचीन पाठ्यक्रम का यह सबसे

प्रमुख दोष है और यह दोष ऐसा है कि वह बालक की जिज्ञासा के स्वाभाकि विकास और उसकी बौद्धिक शक्ति का नाश कर देता है ।

बहुत से विद्यार्थी विद्यालय से बिना अध्ययन संबंधी संतोष प्राप्त किये ही उत्तीर्ण हो जाते हैं । एक विषय के घंटे से दूसरे विषय के घंटे में उन्हें इतने शीघ्र जाना पड़ता है कि उन्हें वास्तविक संतोष नहीं प्राप्त होता । एक पाठ्यक्रम की वे बात सुन और समझ भी नहीं पाते कि दूसरे विषय का पाठ्यक्रम उनके सम्मुख आ जाता है । पाठ्यक्रम के परिवर्तन में इतनी त्वरा होती है कि उन्हें अनुभव के स्थान पर निराशा और अरुचि प्राप्त होती है । सामाजिक अध्ययन को इस प्रकार की विघटनात्मक त्वरा से बचाने का यत्न करना चाहिये । जब विद्यार्थी किसी विषय के अध्ययन में तन्मय हो रहे हों उस समय बीच में ही घंटे की समाप्ति की बाधा उत्पन्न करने की अपेक्षा यह उचित है कि उन्हें उसी विषय के संबंध में सोचने-समझने और विचार करने का अवसर दिया जाय चाहे घंटा समाप्त ही क्यों न हो जाय । सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के प्रत्येक अंश का कक्षा विशेष के लिए महत्व है । हमें इसी स्वाभाविक क्रम का अनुसरण करना चाहिये । हमें कृत्रिम व्यवधानों द्वारा उसे संकुचित अथवा विस्तृत करने का यत्न नहीं करना चाहिये । कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण रूप से कभी भी निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता । हम उस पाठ्यक्रम की मोटी-मोटी प्राथमिक बातों के संबंध में भले ही विचार कर लें । परन्तु किसी योजना अथवा पाठ्यक्रम का विकास तो शिक्षक और शिक्षार्थी के कार्य पर निर्भर करता है । वे उस क्षेत्र में जितना ही अधिक कार्य करेंगे उतना ही विस्तृत उनका पाठ्यक्रम होता जायगा । अध्यापक और विद्यार्थी के अनुभवों पर आधारित पाठ्यक्रम का कोई अन्तिम निर्मित रूप नहीं हो सकता । सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के अन्तर्गत पाठ्यक्रम साध्य नहीं साधन मात्र है । वह एक प्रकार का सेवक है स्वामी नहीं । वह शिक्षक और शिक्षार्थी की सेवा में केवल इसलिए प्रस्तुत रहता है कि उसकी

सहायता से वे अपने कार्य को आगे बढ़ा सके। इस विषय की शिक्षा के पर्याप्त पाठ्यक्रम केवल कार्य की दिशा का संकेत मात्र करता है। वह यह नहीं निश्चित करता कि इसी मार्ग से चलना अनिवार्य है।

पाठ्यक्रम की विषय सूची

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम के निर्धारण के समय हमें क्या बातें ध्यान में रखनी चाहिये इसके संबंध में हमने विचार कर लिया अब हम पाठ्यक्रम की उस विषय सूची के संबंध में विचार करेंगे जिसकी सहायता से हमारे वर्तमान पाठ्यक्रम लड़कों की आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें और जिनकी सहायता से उनमें नवीन चेतना, नवीन भावनाओं की उत्पत्ति तथा ज्ञान की आधार-पीठिका निर्मित हो सके। साधारण रूप में हम निम्नलिखित विषय सूची अध्ययन के लिए सम्मुख रखते हैं। इनके आधार पर हमारे पाठ्यक्रम का निर्धारण होना चाहिए :—

१—यह विश्व जिसमें हम रहते हैं उसका आकार-प्रकार क्या है ?

२—पृथ्वी का प्राथमिक रूप और उसका विकास। इस विषय के अन्तर्गत हमें यह देखना होगा कि किस प्रकार सूर्य से छूटकर पृथ्वी पृथक हुई और आग के गोले के समान बहुत दिनों तक घूमती रही और किस प्रकार धीरे-धीरे ठंडी हुई।

३—पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप और उसके विभाग।

४—पृथ्वी पर प्राथमिक वनस्पतियों का विकास।

५—पृथ्वी पर प्रारंभिक जीवों का विकास।

६—पृथ्वी पर मनुष्यों की उत्पत्ति और उनका प्रारंभिक जीवन।

७—प्रारम्भिक मनुष्यों का रहन-सहन और उनकी प्रकृति।

८—मनुष्य में समूहबद्ध रूप में रहने की भावना का जागरण और प्रारम्भिक समाज का विकास।

९—मानव समाज का प्रारंभिक काल से लेकर आधुनिक काल तक विकास।

१०—मानव संस्कृति का निर्माण तथा उसके उत्थान और पतन का इतिहास ।

११—मानव जाति का अधिकारों के लिए संघर्ष ।

१२—वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में व्यक्ति का महत्व ।

१३—विश्व एकता के प्रयत्न का इतिहास ।

१४—भारतीय राष्ट्र के विकास की प्रारम्भिक स्थिति ।

१५—भारतीय संस्कृति का एशिया के देशों पर प्रभाव

१६—मिश्र, ईरान, बर्मा, चीन आदि देशों का भारतीय जन-जीवन से संबंध ।

१७—एशिया के निवासियों की संस्कृति का इतिहास ।

१८—पृथ्वी के वर्तमान जीव, जन्तु और वनस्पति का अध्ययन ।

१९—विश्व के जलवायु, प्रगतिशील और अप्रगतिशील क्षेत्रों का अध्ययन ।

२०—पृथ्वी द्वारा प्राप्त साधनों और उनके उपयोगों का अध्ययन ।

२१—खेती, गृह उद्योगों, छोटे-छोटे कला-कौशलों के प्रादुर्भाव का इतिहास ।

२२—खेती और उद्योग-धन्धों का संबंध ।

२३—यातायात के प्राचीन और नवीन साधनों का अध्ययन ।

२४—प्राकृतिक शक्तियों का, उद्योग और व्यापारों के लिए उपयोग । विद्युत शक्ति का आविष्कार, तथा उसका उपयोग ।

२५—उद्योग और व्यापारों का विकास ।

२६—मनुष्य जाति के भोजन, वस्त्र और निवास आदि की व्यवस्था की समस्या ।

२७—विज्ञान की सहायता से नई वस्तुओं के उपयोग की शक्ति प्राप्त करने का इतिहास ।

२८—चिकित्सा तथा ओषधि निर्माण का विकास ।

२६—रचनात्मक, कल्पनात्मक, काव्यात्मक, महापुरुष के रूप में मनुष्य का अध्ययन ।

३०—नवीन युग में और नवीन विश्व के अन्तर्गत भारत की स्थिति ।

३१—भारतीय नियमों, सामाजिक बंधनों, संघटनों, और सामाजिक उद्बोधनों का इतिहास ।

३२—अपने स्थान का अध्ययन और उसका देश के विकास पर प्रभाव ।

३३—शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति के साधन ।

३४—विचार विनिमय तथा भावनाओं के आदान-प्रदान के साधन ।

३५—भारतीय सांस्कृतिक जीवन के आदर्श और मानदण्ड ।

३६—भारतीय सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन के आदर्श तथा मानदण्ड ।

३७—मानव जाति के विकास के लिए संभावित मार्गों की कल्पनाएँ ।

विषय सूची को व्यावहारिक रूप प्रदान करना

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की एक विस्तृत सूची देने का हम लोगों ने यत्न किया है । परन्तु इस सूची में बहुत सी बातें घटायी और बढ़ायी जा सकती हैं । इस प्रकार की सूची बनाने का यह ध्येय नहीं है कि हमारे पाठ्यक्रमों का निर्माण अथवा हमारे सामाजिक अध्ययन के अंशों का संघटन इन शीर्षकों के आधार पर हो, अथवा वे इन शीर्षकों की सीमा में बँध जायँ । इनके आधार पर अथवा इनकी पीठिका के आधार पर अध्ययन अंशों का संघटन घातक होगा और इसके द्वारा हमारे ध्येय की पूर्ति भी न होगी । इस प्रकार की सूची देने का केवल यही अर्थ है कि ये विषय हमें उन क्षेत्रों की ओर निर्देशन करते हैं जिन क्षेत्रों की ओर हमें ध्यान देना चाहिये और जिनके साथ बालक के जीवन का संबंध स्थापित होना चाहिये । इन शीर्षकों की सहायता से हम शिक्षार्थी को अपने वातावरण को पूर्ण रूप से समझने और अपने जीवन की

उत्पत्ति और विकास का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना चाहते हैं। हम इन शीर्षकों की सहायता से उसे यह बात बतलाना चाहते हैं कि वह किस प्रकार अपने जीवन तथा वातावरण के साथ संबंध स्थापित कर सकता है।

अतः विषय सूची तैयार हो जाने के बाद हमारा यह कर्तव्य है कि हम इन साधारण और विशृंखलित वस्तुओं को इस प्रकार संघटित करें कि उन्हें वास्तविक यथार्थता प्राप्त हो जाय और जब हम उन्हें अध्ययन-अंश के रूप में विद्यार्थियों के सम्मुख रखें तब वे उनके साथ अपने जीवन के संबंध का अनुभव करें। साथ ही उन्हें इस बात का ज्ञान हो जाय कि जो वस्तुएँ उनके अध्ययन के लिए सामने रखी गयीं हैं वे उनके जीवन की ही सामग्री हैं। जब तक बालक वस्तुओं के साथ अपने जीवन का संबंध नहीं अनुभव करेगा तब तक वह हमारी योजना के साथ नहीं चल सकता। पाठ्यक्रम और जीवन में वास्तविक संबंध स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि हम संकीर्ण और विस्तृत जीवन-क्षेत्र के बीच इस प्रकार का संतुलन निर्मित करें कि जीवन के एक-एक पक्ष का जब हम उद्घाटन करें तब उस बालक को अपने विश्व का अधिकाधिक अनुभव प्राप्त होता जाय, और वह जीवन के निकट पहुँचता जाय। उसे इस प्रकार क्रमशः धीरे-धीरे जीवन के एक विस्तृत तथा सम्पूर्ण क्षेत्र का अनुभव प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार की शिक्षा जीवन का एकांगी और एक पक्षीय चित्र सामने नहीं लाती। हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि जीवन एक पक्षीय और एकांगी नहीं है। जब तक हम मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को सामने रखकर अपनी शिक्षा को उससे संबंधित नहीं करते तब तक हमारी शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता।

हमें चल-चित्रों के समान अपनी शिक्षा के पाठ्यक्रम का संघटन करना होगा। जिस प्रकार चल-चित्र कभी सम्पूर्ण दृश्य और कभी एक दृश्य के एक अंश का विस्तृत चित्र सामने रखते हैं, उसी प्रकार हमें पाठ्यक्रम के द्वारा कभी सम्पूर्ण जीवन और कभी जीवन के एक अंश का

विस्तृत चित्र सामने रखना चाहिये। सामाजिक अध्ययन की यह बड़ी भारी विशेषता है कि उसकी सहायता से हम सम्पूर्ण जीवन के अंशों का तारतम्य बनाये रख सकते हैं। हमारे सामाजिक अध्ययन के पाठों को न तो संकीर्ण होना चाहिये और न ऐसा असीम ही होना चाहिये कि उनकी व्यवस्था हम न कर सकें। हमारे पाठ ऐसे होने चाहिये कि उनमें समानता, सरसता, और जिज्ञासा के लिए पर्याप्त स्थान रहे और चलचित्र के समान स्पष्टता और सरसता उत्पन्न हो जाय।

दो भिन्न सीमाओं में संबंध स्थापन

एक छोर पर शिक्षार्थी है और दूसरे छोर पर विश्व है। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह इन दो भिन्न सीमाओं में संबंध स्थापित करे। अध्यापक को बालक और विश्व के बीच इस प्रकार का संबंध उत्पन्न करने का यत्न करना चाहिये कि वे एक दूसरे के लिए पूर्ण रूप से परिचित हो जायँ और दोनों में पूर्ण संबंध स्थापित हो जाय। इस परिचय के फलस्वरूप शिक्षार्थी यह अनुभव करने लगे कि हमारा घर के कार्यों के लिए निरन्तर स्वागत है और विश्व के जीवन में हमारे योग की भी आवश्यकता है। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए हमें भावी शिक्षा और अपनी प्रणाली को नये दृष्टिकोण से देखना होगा। उसके संबंध में हमें नयी भावनाओं और नयी विचार शैली से विचार करना होगा। शिक्षा क्षेत्र में व्यक्ति को महत्व प्रदान करनेवाले शिक्षा शास्त्री इस धारणा के पोषक थे कि शिक्षा का कर्तव्य है बालक के अन्तर में निहित शक्तियों को प्रकट कर देना, परन्तु उन पर बाह्य प्रभाव न डालना और न उनके अन्तर के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत करना। इन शिक्षा शास्त्रियों की धारणा सत्य है परन्तु यह धारणा आंशिक सत्य पर आधारित है। आज हम इस बात का अनुभव करते हैं कि शिक्षा का कर्तव्य केवल आन्तरिक गुणों का प्रकटीकरण अथवा विकासमात्र ही नहीं है। आज शिक्षा को व्यक्ति और समाज के बीच एक स्थायी संबंध स्थापित करना है। उसे

व्यक्ति और साथियों के बीच घनिष्ठ सौहार्दपूर्ण भावना उत्पन्न करनी है। हमें बालक के सम्मुख वास्तविकता का स्पष्ट रूप सामने रखना है। यदि एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि आज शिक्षा की सहायता से हमें एक व्यक्ति के सम्मुख अन्योन्याभित तत्वों और घटनाओं को सामने रखना है जिसमें कि वह जीवन का पूर्ण रूप सामने रख सके।

शैक्षिक ध्येय के विस्तार की आवश्यकता का करण

हमें उन कारणों को तथा उसके महत्व को समझ लेना आवश्यक है जिसके कारण हम शैक्षिक ध्येय के विस्तार की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। पारमाणविक तथा अन्य वैज्ञानिक अनुसंधानों के कारण विश्व ने बड़ी तीव्र गति से प्रगति की है। आज मानव जीवन उस प्रगति के साथ संतुलन नहीं रख पा रहा है। इस वैज्ञानिक प्रगति का परिणाम यह हुआ है कि जीवन और हमारे शिक्षा के पाठ्यक्रम एक दूसरे से और भी अधिक दूर हो गये। इन दोनों में पर्याप्त अन्तर उत्पन्न हो गया। इस अन्तर का फल हम अपने दैनिक जीवन की समस्याओं के रूप में देख सकते हैं। आज हम यह अनुभव करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन और अपने साथियों से घबड़ाता है। वह न तो जीवन का सामना करना चाहता है और न अपने साथियों का साथ देना चाहता है। उसे निरन्तर यह भी भय रहता है कि कोई उसके साथ नहीं है। उसने अपने को भय के कारण समाज से तथा अपने वैयक्तिक समूहों से पृथक् कर लिया है। कभी-कभी वह अपनी तथाकथित रक्षा के लिए आक्रमणात्मक भी होता है। इन सब कठिनाइयों का कारण यह है कि हम लोगों ने अपने तथा अपने वातावरण के बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न नहीं किया है। हम अपने वातावरण को नहीं समझ पा रहे हैं, और वातावरण न समझ सकने के कारण हमारे हृदय में भय उत्पन्न हो गया है। मानव स्वभाव है कि वह अज्ञात तथा अनजान वस्तु के कारण सदा भयभीत रहता है। वातावरण को न समझ

सकने के कारण, हमारे में अपने को वातावरण के अनुसार उपयुक्त न बना सकने की जो दुर्बलता उत्पन्न हो गयी है उसके फलस्वरूप हमारे समाज में ऐसे असंख्य व्यक्ति हैं जो कुण्ठित क्षमता और उत्साह की सहायता से जीवन यापन कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि उनके व्यक्तित्व ने जीवन के वास्तविक और सुखद विकास के लिए कभी वास्तविक विश्व से सम्पर्क नहीं स्थापित किया है। व्यक्ति और समाज का जो संबंध टूट गया है उसके फल का प्रभाव सब पर पड़ा है और उसका कुफल सब को भोगना पड़ रहा है। व्यक्ति और समाज के संबंध का यह विघटन और विशृंखलन उस सीमा को पहुँच गया है कि अब इसका सुधार तब हो सकता है जब शिक्षा हमें पूरी तरह से सहायता दे।

व्यक्ति नहीं सामाजिक व्यक्ति का महत्व

शिक्षा का उपर्युक्त उत्तरदायित्व और कर्तव्य स्वीकार करने का अर्थ है कि हम शिक्षा के संबंध में नये दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं और हम शिक्षा की प्रगति की नवीन अवस्था पर पहुँच गये हैं। पहले शिक्षा का यह कर्तव्य था कि वह ज्ञान प्रदान करे। चाहे जिस प्रकार भी संभव हो ज्ञान प्रदान कर देना मात्र ही शिक्षा का ध्येय था। यदि इस कर्तव्य की पूर्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता पड़ती थी तो उसका भी उपयोग किया जाता था। दण्ड देकर, अथवा भय उत्पन्न कर भी यदि विद्यार्थी को ज्ञान प्रदान कर दिया जाता था तो यह बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। इस प्रथम स्थिति में उस समय परिवर्तन उत्पन्न हुआ जब शिक्षा का ध्येय व्यक्तित्व निर्माण और उसका विकास निश्चित किया गया। शिक्षा क्रम के विकास की यह द्वितीयावस्था कही जा सकती है। इस अवसर पर शिक्षाशास्त्रियों ने यह निश्चित किया कि जो भी बातें बाहर के कार्य के निर्माण अथवा विकास में बाधा डालती हैं वे अवैज्ञानिक हैं तथा उनका शिक्षा क्षेत्र से कोई संबंध नहीं। हम उस द्वितीयावस्था से एक कदम और आगे बढ़ आये हैं। आज हम यह अनुभव करने लगे हैं कि हमें एक

बालक के व्यक्तित्व के निर्माण और विकास के साथ ही उसके सामाजिक तथा वातावरण संबंधी संबंधों का भी विकास करना है। हमें इन दोनों क्षेत्रों का विकास करना आवश्यक है। हमें बालक के व्यक्तित्व को विकसित करने से तब तक कोई लाभ न होगा जब तक हम उसका संसार के साथ वास्तविक संबंध स्थापित न कर दें। हम शिक्षा का ध्येय, केवल वैयक्तिक गुणों का ही विकास नहीं स्वीकार कर सकते। हमारी धारणा तो यह है कि वैयक्तिक विकास के साथ ही हमें एक व्यक्ति की सामाजिक क्षमता और उसके विकास की योजना भी सामने रखनी होगी। हमारे शिक्षा के ध्येय का प्रयत्न व्यक्ति नहीं वरन् सामाजिक व्यक्ति का विकास होना चाहिये। क्योंकि आज समाज में व्यक्ति किस प्रकार रहता है और कार्य करता है इसका अधिक महत्व है। शिक्षा के इस नवीन दृष्टिकोण की पूर्ति के लिए हमें बालक और शिक्षा वस्तु, दोनों को नयी दृष्टि से देखना होगा और नये प्रकार से इस क्षेत्र में कार्य करना होगा।

शिक्षा की परीक्षा का मानदण्ड स्मृति शक्ति और रुचि उत्पन्न करने पर आधारित न होगा वरन् शिक्षा की परीक्षा का मानदण्ड जीवन होगा। स्मृति शक्ति का विकास और रुचि उत्पन्न करने का कार्य कम महत्व का नहीं है परन्तु यह शिक्षा का केवल एक अंशमात्र है। हमें शिक्षार्थी में वह ज्ञान उत्पन्न करना है, वह क्षमता और शक्ति उत्पन्न करनी है जिससे वह आज के जटिल समाज में अपने स्थान का निर्णय कर सके और अपनी स्थिति को वास्तविक रूप में समझ सके। जो शिक्षा आज मनुष्य को द्रुत गति से परिवर्तित होनेवाले विश्व के वातावरण के अनुकूल उसे नहीं बनाती वह कभी भी उपयुक्त नहीं कही जा सकती। अतः सामाजिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्माण के समय हमें उन्हें अनेक प्रकार की बातें बतलाने और विभिन्न कार्यों के लिए भुकाव उत्पन्न करने का कार्य ही नहीं करना है वरन् हमें शिक्षा सामग्री को भी यह रूप देना होगा कि शिक्षार्थी उन वस्तुओं के संबंध में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के साथ ही संबंध की ऐसी भावना जागरित कर ले कि अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए वह

संसार के मनुष्यों और वस्तुओं के साथ अपना संबंध स्थापित कर सके। इस प्रकार की भावना को ऐसा स्थायित्व प्राप्त होना चाहिये कि इसकी सहायता से व्यक्तित्व के बौद्धिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विकास की गति अबाध गति से आगे बढ़ती जाय।

हमें यह देखना चाहिये कि बालकों का अपने वातावरण और विश्व के साथ क्या संबंध है और उन्हें इस दिशा में किन बातों के जानने की आवश्यकता है। हमें उन बातों को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये जिनका संबंध बालक के व्यक्तित्व से है और जिनके व्यावहारिक रूप की आवश्यकता है। हम बच्चों के विभिन्न संबंधों के विषय में विचार करेंगे, लेकिन नीचे संबंधों की जो तालिका दी जा रही है वह केवल एक सुझाव के रूप में ही सामने रखी जा रही है। इन सुझावों से संबंध स्थापन में कुछ सहायता मिल सकती है। हमारी प्राथमिक योजना का यही प्रारंभिक रूप है। एक व्यक्ति के निम्नलिखित प्रकार के संबंध महत्वपूर्ण हैं :—

१—एक व्यक्ति का उसके आस-पास के वातावरण तथा स्थान से क्या संबंध है।

२—एक व्यक्ति का उसके देश के साथ क्या संबंध है।

३—एक व्यक्ति का उसकी संस्कृति और धर्म के साथ क्या संबंध है।

४—एक व्यक्ति का जीवन से और समाज से क्या संबंध है।

५—एक व्यक्ति का आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक वस्तुओं से क्या संबंध है।

६—मनुष्य की संस्कृति का भौतिक विश्व से क्या संबंध है।

७—मानव जाति का विभिन्न प्रकार के कार्यों से क्या संबंध है।

८—मनुष्य का समाज से क्या संबंध है।

वातावरण तथा स्थान से संबंध

मनुष्य जिस स्थान पर रहता है, जहाँ वह जीवन व्यतीत करता है, उस स्थान से उसका घनिष्ठ संबंध होता है। उस स्थान का पूर्ण परिचय

प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने स्थान के महत्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन चरित्र से संबंध स्थापित करे। इस परिचय के साथ ही उसे वर्तमान समय के जीवन का भी परिचय प्राप्त करना चाहिये। एक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह इस बात का पता लगाये कि उसका स्थान किस रीति से देश के विकास में योग देता है और किस रूप में उसका देश के जीवन के साथ संबंध है। उसका स्थान यदि नगर से दूर है तो वह दूरी कितनी है। यदि उसका स्थान नगर में है तो उसके स्थान से शिक्षा संस्थाएँ कितनी दूरी पर हैं। उसके नगर का क्या महत्व है। यदि उसका नगर एक छोटा नगर है तो उसे यह पता लगाना चाहिये कि उसके आस-पास कौन सा बड़ा नगर है और उस नगर का देश के जीवन के साथ क्या संबंध है। उसके नगर का प्रधान व्यवसाय क्या है। यदि नगर कृषि प्रधान है तो उसे यह पता लगाना चाहिये कि आस-पास कोई उद्योग होते हैं या नहीं। यदि वह नगर औद्योगिक केन्द्र है तो उस स्थान पर आस-पास कहीं खेती होती है या नहीं। इन बातों का पता लगाने के पश्चात् उसे यह समझना होगा कि कृषि और उद्योग का क्या संबंध है और ये किस रूप में संबंधित हैं। अपने क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान बड़ा सहायक सिद्ध होगा। लेकिन अपने क्षेत्र का भौगोलिक ज्ञान सीमित रूप में ही होना चाहिये।

देश के साथ संबंध

एक व्यक्ति का अपने देश के साथ क्या संबंध है इसका ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व जिज्ञासु को चाहिये कि वह अपने देश के सामाजिक संघटन के संबंध में ज्ञान प्राप्त करे। किस प्रकार उसके देश का संघटन हुआ, और किस रूप में उसके देश की संस्कृति का विकास हुआ, ये बातें जानना उसके लिए आवश्यक होगा। देश के साधन, शासन व्यवस्था, सामाजिक संघटन की व्यवस्था, और सामाजिक जीवन को संचालित करनेवाली महान शक्तियों के और महापुरुषों के साथ उसे संबंध स्थापित

करना होगा। देश के क्या महत्वपूर्ण उद्योग हैं, उन उद्योगों के विकास के लिए क्या साधन प्राप्त हैं, उनका मानव जाति के विकास के लिए किस रूप में उपयोग हुआ है अथवा हो सकता है, इसके समझने की बड़ी आवश्यकता है। हमारा देश दूसरे देशों के साथ और विश्व के साथ किस रूप में संबंधित है, हमारे पड़ोसी देशों का हम पर, और हमारे देश का उन पर क्या प्रभाव पड़ा है, इन बातों का अध्ययन देश के साथ संबंध स्थापन में बड़ा सहायक होगा।

संस्कृति और धर्म के साथ संबंध

आज शिक्षा क्षेत्र में धार्मिक शिक्षा अथवा धर्म की बातों को महत्व नहीं दिया जा रहा है, लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि हमारे विकास, तथा हमारे सामाजिक संघटन के लिए धर्म एक महत्वपूर्ण साधन है। धर्म की बातों की जब उपयुक्त रीति से शिक्षा दी जाती है तब सामाजिक जीवन का बड़ा ही सुन्दर रूप विकसित होता है। हमारे धर्म का क्रमशः किस प्रकार विकास हुआ है, उस धार्मिक विकास ने हमारे जीवन की अनुभूतियों की वृद्धि में किस प्रकार योग दिया है इसका अध्ययन बालक के दृष्टिकोण को उदार बनायेगा। मनुष्य आदिकाल में किस रूप में रहता था और किस प्रकार क्रमशः जीवन के संबंध में अनुभव प्राप्त कर वह समूहों में संघटित हुआ, फिर उसने समाज का निर्माण किया आदि बातें कम मनोरंजक और शिक्षाप्रद नहीं हैं। धर्म और समाज की सहायता से संस्कृति का विकास होता है। इस संस्कृति का भी क्रमशः विकास होता है। देश की प्राचीनता के अनुरूप ही एक देश की संस्कृति भी प्राचीन होती है। हमारे देश की संस्कृति ने अन्य देशों पर क्या प्रभाव डाला, विश्व के लोगों पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, हमें यह जानना चाहिये। विश्व में विभिन्न प्रकार के लोग रहते हैं, विश्व के विभिन्न प्रकार के साधन होते हैं इन सब वस्तुओं का परिचय हमारे सामाजिक अध्ययन के लिए उपयोगी होगा। किसी देश के सांस्कृतिक उत्थान-पतन, सभ्यता

के विकास, विभिन्न प्रकार की शक्तियों का विभाजन, और उन वैज्ञानिक शक्तियों को प्राप्त करने के साधनों से मनुष्य का क्या संबंध है, इसे हमें विद्यार्थी को बतलाना चाहिये। राष्ट्र का व्यापार, राष्ट्र के यातायात के साधन, स्थल और जल के मार्गों का अध्ययन और उनके कारण हमारे देश पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसका अध्ययन बड़ा ही शानवर्द्धक होगा। विश्व के साथ व्यापार करने से संस्कृतियों का किस प्रकार आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ, और हम लोगों में विश्व बन्धुत्व की किस प्रकार भावना जागरित हुई इसे भी विद्यार्थियों को बतलाना चाहिये। संस्कृति के महान तत्व और उनके उपयोग के साधन के संबंध में अनुसंधान के कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिये। विभिन्न देश की संस्कृतियों द्वारा सहयोग और सहकारिता की क्या शिक्षा मिलती है इन पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

जीवन और समाज से संबंध

जीवन और समाज के संबंध में अध्ययन करने के अवसर पर हमें निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिये :—

- १—सृष्टि के प्रारम्भ में जीव की किस रूप में उत्पत्ति हुई।
- २—कच्छ, मच्छ, वाराह आदि पौराणिक कथाओं द्वारा हम उन्हें यह बतलाएँ कि किस प्रकार जीवों का विकास हुआ।
- ३—मनु का जन्म तथा उनकी सन्तान मानव की उत्पत्ति और विवरण।
- ४—वर्तमान समय के महत्वपूर्ण जल, स्थल और आकाश में विचरण करनेवाले जीव-जन्तुओं का परिचय।
- ५—मनुष्य और अन्य जीवों के जीवन की तुलना और उनमें अन्तर।
- ६—जीवों में सुरक्षा की प्रवृत्ति और अपने को सुरक्षित रखने के साधन।

- ७—जीवों के रोगों की उत्पत्ति ।
- ८—विभिन्न उपयोगी जीवों को पालतू बनाने का कार्य ।
- ९—उनका कृषि तथा अन्य कार्यों के लिए उपयोग ।
- १०—विश्व की उपजाऊ तथा अनुर्वर भूमि का अध्ययन ।
- ११—विभिन्न प्राकृतिक साधनों का भूमि पर प्रभाव ।
- १२—अनुर्वर भूमि को उपयोगी बनाने की संभावनाओं पर विचार ।
- १३—मनुष्य द्वारा अन्य जीवों के लिए किये गये कार्यों का विवरण ।
- १४—समाज में इन विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग ।

आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक वस्तुओं से संबंध

आध्यात्मिक तथा प्राकृतिक वस्तुओं के संबंध में अध्ययन करते समय हमें प्रकृति की उन विभिन्न प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष शक्तियों का अध्ययन करना होगा जिनका हमारे जीवन पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है । इन विभिन्न प्रकार की शक्तियों का अध्ययन करने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा :—

- १—आकाश तथा आकाश की रहस्यात्मक बातें ।
- २—तारे, ग्रहों, और नक्षत्रों का अध्ययन ।
- ३—सूर्य का प्रकृति तथा मानव जीवन पर प्रभाव ।
- ४—विभिन्न ग्रहों और उपग्रहों का जन्म ।
- ५—ग्रहों और नक्षत्रों का वर्गीकरण ।
- ६—ग्रहों और नक्षत्रों की गतिविधि तथा उनकी गतिविधि का मानव जीवन पर प्रभाव ।
- ७—प्रकृति के तत्व और उनका मनुष्यों से संबंध ।

मनुष्य की संस्कृति का भौतिक जीवन से संबंध

मनुष्य की संस्कृति का भौतिक जगत से क्या संबंध है तथा इनका हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है इसके अध्ययन के लिए जो

आवश्यक वस्तुएँ हैं उनकी तालिका नीचे दी जाती है। इनका ज्ञान संस्कृति और भौतिक जगत के संबंध को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होगा।

१—पृथ्वी का जन्म और विकास।

२—जल-प्रलय अथवा जल राशि का विभिन्न स्थानों में संचित होना।

३—समुद्रों, नदियों और जलाशयों की उत्पत्ति तथा उनके द्वारा सिंचाई आदि की व्यवस्था।

४—जीवन के लिए आवश्यक स्थितियाँ और जीवन के लिए उपयोगी रसायनों का उपयोग।

५—मानव के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक स्थितियाँ।

६—उन भौतिक कारणों का अध्ययन जिनके कारण प्रारम्भ में संस्कृतियों का विकास हुआ।

मनुष्य का विभिन्न प्रकार के कार्यों से संबंध

सभ्यता और संस्कृति के क्रमशः विकास के साथ ही मनुष्य के जीवन संबंधी कार्यों का भी विकास हुआ है। मनुष्यों ने धीरे-धीरे खेती-बारी और उद्योग धंधों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया। जीवन के इस पक्ष के विकास के अध्ययन के समय हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा :—

१—जीविका और भरण-पोषण के लिए साधनों का विकास।

२—विभिन्न प्रकार के उद्योगों के साधन और यातायात के लिए अनेक प्रकार के साधनों का विकास।

३—मनुष्य द्वारा जल, वायु, और भू-गर्भ शक्तियों पर विजय प्राप्त करना।

४—उद्योग धंधों और व्यापारों का जन्म तथा विकास।

५—विभिन्न देशों के लोगों का जीविका तथा अन्य कार्यों के लिए विश्व—भ्रमण तथा नवीन स्थानों की खोज।

६—भारतीय चिकित्सा पद्धति का विकास और मनुष्य द्वारा उनका उपयोग ।

७—आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक खोज ।

८—मनुष्य की रचनात्मक कला का अध्ययन ।

९—मनुष्य की वैयक्तिक तथा पारिवारिक सुरक्षा की व्यवस्था की समस्या ।

१०—मनुष्य द्वारा स्वतंत्रता के लिए संघर्ष ।

११—आधुनिक जीवन संबंधी हमारी समस्याएँ ।

१२—हमारे सामाजिक संघटनों के रचनात्मक तत्व ।

१३—सुखद तथा संतोषपूर्ण मानव जीवन की व्यवस्था ।

१४—भविष्य में मानव जीवन को सुखद बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की संभावनाओं पर विचार ।

मनुष्य का समाज से संबंध

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह अपने वैयक्तिक जीवन को भले ही महत्व दे परन्तु वह अपने साथियों के अभाव में कभी भी सुखी नहीं रह सकता । उसकी सदा यह कामना रहती है कि उसके कार्य में अन्य लोग भी सहयोग दें तथा उसके कार्यों की प्रशंसा करनेवाले लोग भी हों । इस संबंध के अन्तर्गत हम निम्नलिखित कुछ साधारण बातों पर विचार कर सकते हैं :—

१—मनुष्यों में समूहबद्ध रहने की भावना की उत्पत्ति ।

२—वाचा शक्ति के पूर्व सांकेतिक प्रयत्नों द्वारा अपने मन के भावों की अभिव्यक्ति के रूप ।

३—वाचाशक्ति का विकास ।

४—पारिवारिक जीवन की भावना का उदय ।

५—पारिवारिक जीवन के रूप में सामाजिक जीवन का अनुभव ।

६—सामाजिक जीवन का विकास तथा उसके द्वारा मनुष्य को लाभ ।

७—सामाजिक जीवन के प्रति कर्तव्य ।

८—दूसरों के साथ कार्य करने की भावना का उदय ।

९—अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए तार्किक शक्तियों और शब्द-कोष का विकास ।

१०—विचार विनिमय की भावना का विकास ।

११—सद्व्यवहार और सद्आचरण की भावना का जन्म ।

१२—मनोरंजन के प्रारम्भिक साधनों का उपयोग ।

१३—उपयुक्त सामाजिक जीवन के प्रधान तत्वों की खोज ।

१४—दूसरों के जीवन के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा ।

१५—सूचनाएँ प्राप्त करने के साधनों का विकास ।

१६—विभिन्न प्रकार के साहित्य, संगीत और कला संबंधी शास्त्रों का जन्म और विकास ।

१७—मनोरंजन के आधुनिक साधन ।

१८—विश्व की प्रगति के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के विशिष्ट साधन (रेडियो और चलचित्र) ।

१९—अपने हित की रक्षा के लिए लोगों का संघटन ।

२०—प्रचार के साधनों का विकास (मुद्रण कला आदि का विकास)

२१—स्वार्थों के संघर्ष के कारण राजनीति का जन्म और विकास ।

२२—मनुष्य की हिंसात्मक और असामाजिक प्रवृत्तियों का जन्म तथा विकास ।

२३—हिंसात्मक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के साधन ।

२४—स्वतन्त्रता, न्याय और लोक तंत्रात्मक आदर्शों का जन्म तथा विकास ।

योजनाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान करना

सामाजिक अध्ययन के संबंध में हमने जो प्रारम्भिक योजना प्रस्तुत की है, उसकी तालिक बड़ी ही विशाल और आतंक उत्पन्न करनेवाली

प्रतीत हो सकती है। संभव है कुछ लोग यह भी कहें कि यह तो अध्ययन का बड़ा ही विकृत रूप है क्योंकि हम बालक को इतनी बातें बतला देना चाहते हैं जिनका ज्ञान प्राप्त कर सकना उसके लिए कठिन है। लेकिन यदि हम थोड़ी देर शांतिपूर्वक विचार करें तो हमारी कठिनाई दूर हो जायगी। यदि हमें इन सम्पूर्ण बातों को याद रखना हो और उन्हें स्मृति की सहायता से लिखना पड़े तो अवश्य ही यह बड़ा कठिन कार्य होगा। लेकिन जिस प्रकार अच्छी पुस्तकों के पढ़ने, तथा अच्छे चलचित्रों के देखने का अज्ञात रूप से हम पर प्रभाव पड़ता है और यद्यपि हम उनकी बातों की यथा तथ्य आवृत्ति नहीं कर सकते उसी प्रकार हम अपनी प्राथमिक योजनाओं का उपयोग करना चाहते हैं। जब हम इस दृष्टिकोण से अपने कार्य के संबंध में विचार करेंगे तब हमारा कार्य बहुत सरल हो जायगा। यदि हम विस्तार के साथ उपर्युक्त प्राथमिक योजनाओं की शिक्षा देना चाहें तो एक व्यक्ति जीवन भर इन बातों का अध्ययन करता रह सकता है। लेकिन यदि उपर्युक्त योजना का इस प्रकार साधारण ज्ञान हम विद्यार्थी को कराना चाहें कि वह इसके संबंध में कुछ अनुभव कर सके तो हमें अधिक से अधिक १२ घंटों की आवश्यकता पड़ेगी। एक किशोर इन सब की इतने थोड़े समय में किस प्रकार शिक्षा प्राप्त कर लेगा इस संबंध में हमें विचार कर लेना चाहिये। हमने जो योजना सामने रखी है उसे देखकर साधारण व्यक्ति की धारणा यह होगी कि इसकी शिक्षा की व्यवस्था करनेवाले अध्यापक का ज्ञान बहुत विस्तृत होना चाहिये। क्योंकि जब तक वह बहुश्रुत और बहुपठित न होगा तब तक पाठ्यक्रम की सामग्री का उसे ज्ञान ही न हो सकेगा।

इस प्रकार विचार करने का अर्थ होगा कि हम पुनः समस्या को अशुद्ध दृष्टिकोण से देख रहे हैं। हम यह कह चुके हैं कि सामाजिक अध्ययन के अध्यापक का केवल यह कर्तव्य है कि वह छात्र और ज्ञान की आधार पीठिका के लिए उपयोगी वस्तुओं का संबंध स्थापित करा दे और उन्हें यह समझा दे कि दोनों का क्या अन्योन्याश्रित संबंध है। इस

प्रकार के संबंध स्थापन और संबंध का परिचय कराने का यह अर्थ नहीं है कि अध्यापक को सब बातें जाननी ही चाहिये या उसे सब बातें पढ़ानी ही पड़ेंगी। हमें यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षा की व्यवस्था करनेवाला अध्यापक आंशिक रूप में अध्यापक है, आंशिक रूप में योजना का निर्माण करनेवाला है, और आंशिक रूप में ही संबंध स्थापन करनेवाला व्यक्ति है। जब अध्यापक इस स्थिति में कार्य करेगा तब वह अनेक बातें अपने विद्यार्थियों के साथ पढ़ता, सीखता, और समझता चलेगा। आंशिक रूप में अध्यापक जो कार्य करता है उसका केवल यही महत्व है कि वह विद्यार्थियों को उत्साह और जिज्ञासा प्रदान करता है। सामूहिक कार्यों में वह उनकी हिम्मत बनाये रहता है, समय पड़ने पर, कठिनाइयाँ उत्पन्न होने पर, वह मार्ग प्रदर्शन कर देता है और विषयों के साथ एक सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित कर देता है। इस स्थिति में अध्यापक भय और आतंक की वस्तु नहीं रह जाता और न वह अपने ज्ञान द्वारा दूसरों पर अधिकार प्राप्त किये रह सकता।

अब हमें अपनी मुख्य समस्या पर विचार करना चाहिये। हमारे सामने यह प्रश्न है कि हम बिना अरुचि उत्पन्न किये और साधारण तथा सुगम रीति से किस प्रकार अपनी योजना को निश्चित समय में कार्यान्वित कर लें। हम किस प्रकार अपनी योजना को कार्यान्वित करेंगे इस पर विचार करने के पूर्व हमें कुछ महत्वपूर्ण बातों को समझ लेना चाहिये।

शिक्षा का व्यावहारिक रूप

हमने प्राथमिक योजना के रूप में जो सामग्री प्रस्तुत की है उसकी विषयता और विशालता से हमें चिन्तन नहीं होना चाहिये। वे केवल देखने में ही विस्तृत और विशाल हैं। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत जो बातें कही गयी हैं उनमें आपस में अन्योन्याश्रित संबंध तो है ही साथ ही उनकी विभिन्न शीर्षकों में पुनरावृत्ति भी हुई है। इस पुनरावृत्ति और

अन्योन्याश्रय का महत्व है। जब हम किसी बात की शिक्षा देते हैं तब हमें विश्लेषण और संश्लेषण दोनों का ही उपयोग करना है। इसी लिए हमारी योजनाएँ प्रस्तुत रूप में रखी गयी हैं। अतः हमारी योजना का जो विस्तृत रूप सामने आता है उससे कहीं अधिक वह अल्प और लघु आकार की है।

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा कभी एक पृथक विषय के रूप में नहीं दी जानी चाहिये। जब हम सामाजिक अध्ययन का विभिन्न विषयों के साथ समन्वय अथवा एकीकरण करते हैं और विभिन्न विषयों के अध्यापकों के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं तब योजना की अनेक बातों की शिक्षा अन्य विषयों के घंटों में भी हो सकेगी। जब तक इस प्रकार दूसरे विषयों के साथ सामाजिक अध्ययन की शिक्षा का संबंध नहीं स्थापित किया जायगा तब तक सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के एकीकरण का सिद्धान्त सार्थक न होगा। योजना की अनेक बातों की शिक्षा विज्ञान, साहित्य, आदि के अन्तर्गत भी दी जा सकती है।

वर्तमान समय के आधुनिक वैज्ञानिक साधनों और उदार प्रणालियों की सहायता से योजना की अनेक बातें बहुत थोड़े समय में बतलायी जा सकती हैं। किसी स्थान के भ्रमण अथवा शिक्षालय में आये हुए किसी अतिथि द्वारा किये गये भाषण से बहुत सी बातें सुगम हो सकती हैं, यदि इन बातों के संबंध में विद्यार्थियों को पहले से ही तैयार रखा जाय। सृष्टि की उत्पत्ति, पृथ्वी पर जीवों का जन्म और विकास आदि की कथा चल-चित्रों और साधारण चित्रों द्वारा बहुत शीघ्रता के साथ बतायी जा सकती है। हमने अपनी आँखों और कानों पर कम विश्वास किया है अतः हमारे सामने ये कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं। हमने इस अविश्वास के कारण ही अपनी शिक्षा की गति को मंथर कर दी है। सम्यता के विकास, ऐतिहासिक महत्व पूर्ण घटनाओं की शिक्षा आदि चल-चित्रों, वार्ता और वादविवाद द्वारा बड़ी ही सरलता से दी जा सकती है।

इस शिक्षा के क्षेत्र के लिए यदि अब हम रेडियो आदि का उपयोग

करें तो हमारा कार्य और भी अधिक सरल हो जायगा । यदि सरकार का रेडियो विभाग, शिक्षा विभाग के साथ सहयोग करे तो हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं । यदि बालकों के उपयोग के छोटे-छोटे पाठ निर्मित किये जायँ और उनके द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाय तो बड़े ही सुगम रीति से सामाजिक अध्ययन की शिक्षा की व्यवस्था हो जाय । साधारण व्यापार और लेन-देन की शिक्षा तो खेल-खेल में दी जा सकती है । जब बच्चे खाली रहते हैं तब उन्हें चीजों के बेचने और खरीदने और वे कहाँ उत्पन्न होती हैं आदि बातों की शिक्षा बड़ी सरलता से दी जा सकती है ।

हमारी ऐसी धारणा है कि यदि आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग कर हम शिक्षा के प्रत्येक अंश की शिक्षा देने की व्यवस्था करें तो लड़के भी उसमें रुचि लेंगे और वे अपनी इच्छा से अधिक समय देंगे । हम साधारण जीवन में भी देखते हैं कि जब बच्चों को कोई कार्य रुचिकर हो जाता है तब वे अपनी क्षमता से भी अधिक काम कर लेते हैं और रुचिकर कामों से कभी थकते नहीं । यदि मंद बुद्धि वाले बच्चों को भी रुचिकर कार्य दिये जायँ तो वे भी बड़ी ही तीव्रता के साथ अपने कार्य को समाप्त करते हैं ।

विनय युक्त स्वतन्त्रता का उपयोग

सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम को उचित रूप से कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि छात्रों को विनय युक्त स्वतन्त्रता प्रदान की जाय । उनके जीवन में नियम और संयम का भी महत्व रहे तथा वे अपनी इच्छानुसार कार्य भी कर सकें । अध्यापक को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि सालभर में वह किन वस्तुओं और कितनी वस्तुओं का उपयोग करना चाहता है । इसके बाद उसे उदारता के साथ अपने कार्यक्रम का एक मानचित्र बना लेना चाहिये । इस मानचित्र में वह उन वस्तुओं का लेखा-जोखा तैयार रखेगा जिनका वह

अध्ययनकाल के अवसर पर उपयोग करेगा। इन सब बातों के निर्णय के बाद अध्यापक को अपनी वस्तुओं को क्रियाशीलता के साथ समन्वित करने का कार्य करना चाहिये। उसे अध्ययन अंशों का इस प्रकार का क्रम बनाना चाहिये कि वस्तु और क्रियाशीलता दोनों का साथ-साथ उपयोग हो। उसे ऐसी वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिये जो कक्षा विशेष और अवस्था विशेष के विद्यार्थियों के उपयुक्त हों। अवसर पड़ने पर उसे देश और विदेश की बातों का भी समन्वय करना चाहिये। वह अपनी शिक्षा के प्रपूरक के रूप में चलचित्र, रेडियो, वादविवाद, भाषण और प्रदर्शनी आदि का भी उपयोग कर सकता है। इन वस्तुओं और साधनों के उपयोग से उसकी शिक्षा व्यवस्था में सजीवता आ जायेगी।

सप्ताह में एकवार अथवा पखवाड़े में एकवार उसे अपने मानचित्र पर यह अंकित करना चाहिये कि उसने अपने कार्य में कितनी सफलता प्राप्त की और उस सफलता के लिए उसे किन साधनों का उपयोग करना पड़ा। मासान्त में उसे एकवार पुनः विहंगम दृष्टि से अपनी पूरी बातों का, कार्यों का, लेखा-जोखा लगा लेना चाहिये। इस लेखा-जोखा से उसे यह लाभ होगा कि उसे इस बात का अनुभव हो जायगा कि उसकी संभावनाओं के अनुसार कितना कार्य हुआ, कितना छूट गया और ज्ञान प्रदान करने में क्या कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं और क्या दोष रह गये। इन बातों का पता लगा लेने के बाद उसे छूटी हुई बातों को पूरा करने का यत्न करना पड़ेगा। कुछ समय देकर उसे विशृंखलित ज्ञान की शृंखला को तथा क्रियाशीलता को पूरा करना होगा। उसे सदा अपने कार्य और वस्तुओं में संतुलन बनाये रखने का यत्न करना होगा।

ध्येय को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार अपने कार्य और अध्ययन सामग्री का लेखा-जोखा लेते रहने से बड़ा लाभ होता है। इसका प्रधान लाभ तो यह है कि विभिन्न विशृंखलित वस्तुओं की शिक्षा में यह बात समन्वय स्थापित कर सकेगी। हम साथ ही इस बातका भी ध्यान

रख सकेंगे कि किसी विषय का अध्ययन हम असंतुलित रूप में तो नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार अपने कार्य निरीक्षण की प्रवृत्ति हमें सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम को दृष्टि से ओझल न होने देगी और इस अध्ययन के लिए क्रमशः आधार पीठिका भी तैयार हो जायगी।

अधिकतर सामाजिक अध्ययन का समय क्रियात्मक रूप से व्यय होगा अतः यदि अध्यापक दो एक घंटे भाषण देकर विभिन्न विषयों की शृंखला निर्मित कर दे तो उससे लड़कों को किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। लड़के इस प्रकार के परिवर्तन से कुछ आनन्द का ही अनुभव करेंगे। निरन्तर क्रियाशील रहने के बाद जब बालकों के सामने भाषण किया जाता है तब वे भाषणों को बड़ी तन्मयता से सुनते हैं और उनके हृदय में प्रश्न करने की जिज्ञासा का भी उदय होता है। विभिन्न समय में किये गये कार्यों के बीच शृंग्वला स्थापित करने के लिए इस प्रकार के भाषणों का, अथवा बातचीत का, बड़ा महत्व है। ऐसे अवसरों पर ही हम लड़कों को बतला सकते हैं कि मानव ज्ञान का निरन्तर सहज और स्वाभाविक विकास होता रहता है। उन्हें ऐसे ही अवसरों पर यह बात भी बतलायी जा सकती है कि वस्तुओं और तथ्यों में क्या अन्योन्याभित संबंध है और वे किस प्रकार एक दूसरे के प्रभूक हैं।

सफलता की परीक्षा के उपाय

अध्यापक परीक्षा के फल से संतुष्ट अथवा असंतुष्ट होता है। परीक्षा एक ऐसा मानदण्ड है जिसकी सहायता से वह यह समझ लेता है कि उसका अध्ययन-अध्यापन कितना सफल हुआ है। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा देने वाला अध्यापक परम्परागत परीक्षा विधि से भी अपनी सफलता का पता लगा सकता है परन्तु उसे एक बात का ध्यान रखना चाहिये। जब हम परीक्षा के फल का तुलनात्मक रीति से अध्ययन करेंगे तब बहुत से लोग सामाजिक अध्ययन की व्यवस्था की कड़ी आलोचना कर सकते हैं। क्योंकि प्राचीन परीक्षा प्रणाली के समर्थकों

के पास एक ऐसा साधन है जिससे वे इस बात का पता लगा सकते हैं कि उनकी पढ़ाई का क्या फल हुआ। परन्तु आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का यह फल उस रूप में नहीं प्राप्त हो सकता। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का आधार मेधा और स्मृति शक्ति पर आश्रित है। जो जितनी ही बातें याद रख सके और उसी रूप में पुनः लिख सके, वह व्यक्ति उतना ही योग्य समझा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण योग्यता स्मृति शक्ति पर आधारित थी। परन्तु सामाजिक अध्ययन की शिक्षा-प्रणाली द्वारा हम यह फल नहीं प्राप्त कर सकते। सामाजिक अध्ययन हमारे ज्ञान की पीठिका, दृष्टिकोण और अन्तर्दृष्टि के निर्माण पर अधिक जोर देता है और ये बातें ऐसी हैं जिनकी नाप जोख और परीक्षण नहीं हो सकती। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत विद्यार्थी, अध्ययन सामग्री क्या है और उनका कैसे अध्ययन करना चाहिये, ये सब बातें सीखते हैं, परन्तु ज्ञान के इस अर्जित रूप का कोई बाह्य स्वरूप नहीं दीख पड़ता। अतः संभव है प्राचीन परीक्षा-प्रणाली पर विश्वास करने वाले लोगों को इस क्षेत्र से हताश होना पड़े। सामाजिक अध्ययन द्वारा शिक्षार्थी पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवन की तथा जगत की बातों को अधिक सीख पाते हैं। संभव है ये विद्यार्थी पुस्तकीय ज्ञान को महत्व देनेवाले लोगों के मानदण्ड पर खरे न उतरें। क्योंकि सामाजिक शिक्षा के अन्तर्गत उपयोगी और आवश्यक शिक्षा की अधिक व्यवस्था होती है। प्राचीन परीक्षण पद्धति को महत्व देनेवाले दो बातें भूल जाते हैं। पहली बात तो यह है कि स्मृति शक्ति पर आधारित बातें धीरे-धीरे विस्मृत हो जाती हैं और दूसरी बात यह है कि साधारणतया आज का विद्यार्थी स्मृति शक्ति और रटने में चाहे निर्बल हो परन्तु वह वर्तमान गति विधि के प्रति अत्यन्त सजग होता है। साथ ही उसमें अनुसंधान करने की अधिक क्षमता होती है।

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पर आधारित शिक्षा के अन्तर्गत अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी स्मृति शक्ति को महत्व नहीं देते और न अनावश्यक

बातों को रटते ही हैं परन्तु जब वस्तुओं के प्रति उनकी रुचि उत्पन्न हो जाती है तब उसमें वे बड़ी सरलता से सिद्ध हस्त हो जाते हैं ।

समय और क्षमता के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा की व्यवस्था करनेवाले अध्यापक को समय और व्यक्तिगत क्षमता की बात का भी ध्यान रखना चाहिये । कभी-कभी समय बहुत कम रहता है और विद्यार्थी भी अत्यन्त साधारण बुद्धि का रहता है । ऐसी स्थिति में सामाजिक अध्ययन के पूर्ण पाठ्यक्रम को कार्यान्वित नहीं किया जा सकता । जब समय कम हो अथवा विद्यार्थी मंद हों तब सामाजिक अध्ययन के कुछ निश्चित क्षेत्रों को चुन लेना चाहिये । इन क्षेत्रों की जहाँ तक हो सके भली प्रकार से शिक्षा दी जानी चाहिये । यदि स्थानीय वातावरण और वस्तुओं से संबंध रखने वाली बातों की शिक्षा उसे दी जाय तो अधिक लाभ होगा । हमें सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि एकांकी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति कभी सामाजिक जीवन के लिए उपयुक्त न होगा । उसमें न तो निर्णयात्मक शक्ति उत्पन्न होगी और न वह सामाजिक समस्याओं का ही समाधान कर सकेगा ।

सामाजिक अध्ययन प्रारंभ करने का समय

अब हम सामाजिक अध्ययन की शिक्षा प्रारंभ करने के संबंध में थोड़ा विचार कर लें । देश में अनेक ऐसे विद्यालय होंगे जो सामाजिक अध्ययन की शिक्षा प्रारंभ करना चाहेंगे परन्तु उन्हें यह निरन्तर भय बना रहता है कि उनकी योजना सफल होगी या नहीं । वे यह नहीं समझ पा रहे हैं कि इस शिक्षा की योजना किस प्रकार प्रारंभ की जाय । संक्रमण काल में कठिनाइयाँ होना स्वाभाविक है अतः हमें संक्रमण कालीन व्यवस्था के संबंध में कुछ बातें कहनी हैं । सामाजिक अध्ययन की शिक्षा प्रारंभ करने के पूर्व यह आवश्यक है

कि इस शिक्षा की योजना के संबंध में सब अध्यापक विचार विनिमय कर लें। वे योजना के पक्ष और विपक्ष में पूरी तरह समझ बूझ लें। स्वाभाविक है कि अध्यापक-मंडल के बीच भिन्न-भिन्न मत के लोग होंगे। कुछ लोग योजना का स्वागत करेंगे और कुछ योजना की बातों को अरुचिकर तथा अनुपयोगी सिद्ध करने का यत्न करेंगे। ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम हमें सामाजिक अध्ययन की योजनाओं का कार्य उन व्यक्तियों और अध्यापकों के हाथ में सौंपना चाहिये जो उत्साह के साथ इस क्षेत्र में कार्य करने के लिए सन्नद्ध हों। इन अध्यापकों का यह कर्तव्य होगा कि वे विरोधियों को क्रमशः अपनी बातें समझाएँ और उनका सहयोग प्राप्त करने का यत्न करें। यदि उनका सहयोग न प्राप्त हो सके तो कम से कम उनको ऐसी स्थिति में अवश्य रखने का यत्न करना चाहिये कि वे विरोध न करें।

जहाँ तक संभव हो सामाजिक अध्ययन की शिक्षा में रुचि रखनेवाला अध्यापक ही कक्षा अध्यापक हो। यदि यह व्यवस्था न हो सके तो उस व्यक्ति को सामाजिक अध्ययन की योजनाओं को सफल बनाने का कार्य सौंपना चाहिये जो कक्षा में साहित्य आदि पढ़ाता हो या जिसका अधिक समय कक्षा में व्यतीत होता हो।

सामाजिक अध्ययन का कार्य प्रारंभ करने के पूर्व अध्यापकों और विद्यार्थियों को इतना पर्याप्त समय मिलना चाहिये कि वे उसके संबंध में, उसके पाठ्यक्रम के संबंध में, परिवर्तन तथा परिवर्तन के कारणों के संबंध में, विचार विनिमय कर सकें। नयी योजनाओं के संबंध में कक्षा में भी वाद-विवाद और विचारों का आदान-प्रदान होना चाहिये। विद्यार्थियों को यह बात भलीभाँति समझाने का यत्न करना चाहिये कि नयी योजना में उनके पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है और यदि वे अपनी शिक्षा में पूर्ण सहयोग न करेंगे तो उनकी बड़ी हानि होगी।

विचारों के आदान-प्रदान और योजना की गति विधि समझ लेने के बाद एक प्रयोगात्मक कार्यक्रम बनाना चाहिये। कम से कम एक वर्ष

तक इस प्रयोगात्मक योजना के अनुसार कार्य होना चाहिये। सप्ताह में कम से कम ६ घंटे तो इस विषय के अध्ययन के लिए अवश्य मिलना चाहिये।

सक्रिय कार्यों की प्रधानता

प्राथमिक स्थिति में हमें सक्रिय कार्यों को प्रधानता देना होगा। विद्यार्थियों को विभिन्न स्थानों का भ्रमण कराना, विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों और कार्य क्षेत्रों का निरीक्षण कराना आवश्यक होगा। यदि विद्यार्थियों को इन बातों का पूर्व अनुभव रहेगा तो कार्य सरल हो जायगा और वे बड़ी तीव्र गति से प्रगति करेंगे। लेकिन यदि उन्हें इन बातों का अनुभव न होगा तो पहले उन्हें इन कार्यों के लिए अवसर प्रदान करना होगा। प्रारम्भ में वे स्थानीय धार्मिक अथवा शिक्षा संबंधी संस्थाओं के अध्ययन का कार्य कर सकते हैं। किसी स्थानीय उद्योग के अध्ययन का भी उसे अवसर प्रदान किया जा सकता है।

सहयोग की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि कक्षा के विद्यार्थियों को समूहों में विभाजित कर दिया जाय। जहाँ तक संभव हो ५ अथवा ७ विद्यार्थियों का एक-एक समूह होना चाहिये। प्रत्येक समूह का एक नायक होना चाहिये। जहाँ तक संभव हो एक विचार के, एक प्रकार के स्वभाव के, विद्यार्थियों का समूह हो तो कार्य बड़े सुचारु रूप से चल सकेगा। नायक के पास एक नोट-बुक होनी चाहिये जिसमें स्थानीय संस्थाओं आदि के संबंध कुछ ज्ञातव्य बातें लिखी होनी चाहिये। उसी नोट बुक में वे बातें भी लिखी होनी चाहिये जिनके संबंध में विद्यार्थियों का समूह कार्य करेगा। इसके उपरान्त विद्यार्थियों को आठ अथवा दस दिन का समय देना चाहिये। इस समय के भीतर ही उन्हें अपने सक्रिय कार्य को समाप्त करने का यत्न करना चाहिये। जब विद्यार्थी आवश्यक सूचनाओं को प्राप्त कर लें तब उसके बाद कक्षा का कार्य प्रारम्भ होना चाहिये। साधारणतया कक्षा का काम नित्य प्रति चलता रहना चाहिये। जब कार्य के संबंध में तथ्यों का संकलन हो जाय तब मानचित्रों के द्वारा विभिन्न समूह के विद्यार्थियों का ज्ञान समन्वित करना चाहिये।

ये मानचित्र और चित्र वर्तमान और भूतकाल के जीवन में संबंध स्थापित करने में बड़े सहायक सिद्ध होंगे ।

विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता और विचारों को व्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति शक्ति प्रदान करने के लिए उन्हें वाद-विवाद करने का पर्याप्त अवसर मिलना चाहिये । जब विद्यार्थी आपस में विचार विनिमय करेंगे और वाद-विवाद करेंगे तब उन्हें अपने भाव व्यक्त करने की शक्ति प्राप्त होगी । इस कार्य के लिए उन्हें अधिक से अधिक समय दिया जाना चाहिये । वाद-विवाद और विचार-विनिमय के लिए ऐसे साधारण विषयों का चुनाव होना चाहिये कि उनमें बालकों की रुचि हो और बालक उनके संबंध में सोच-समझ सकें तथा विचार व्यक्त कर सकें । विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें वाद-विवाद के लिए ऐसे ही विषय दिये जायें जो उनके स्तर के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त हों । जब उन्हें अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की कला का ज्ञान हो जायगा तब क्रमशः वे भी महत्वपूर्ण बातों के संबंध में खोज करेंगे और तथ्य संग्रह करेंगे । जब विद्यार्थी एक साधारण स्तर तक क्रियात्मक कार्य के लिए क्षमता उत्पन्न कर लें और जब उन्हें अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए साधारण स्तर की शक्ति प्राप्त हो जाय तब अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्यों के संबंध में रचनात्मक कार्य प्रारंभ किया जा सकता है । सामाजिक अध्ययन क्षेत्र में कार्य करने वाले समूहों को समय-समय पर बराबर मिलते रहना चाहिये जिससे वे अपने तथ्यों के संबंध में तुलनात्मक अध्ययन कर सकें और इस बात का भी ज्ञान प्राप्त कर सकें कि विभिन्न विषयों के साथ उनके विषय का किस प्रकार एकीकरण हो सकता है ।

विद्यार्थी सक्रिय रूप से जो भी कार्य करें और अनुसंधान द्वारा वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे उसकी शिक्षालय समाज द्वारा प्रशंसा होनी चाहिये । जब कभी अवसर आये तब अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों को बच्चों को उनके कार्य के लिए बधाई देनी चाहिये । यदि अध्यापकों और विद्यार्थियों

को सहयोग पूर्वक कार्य करने का कुछ भी अनुभव है तो शिक्षालय के सामाजिक जीवन के विकास पर जोर देना चाहिये। इस प्रकार के सामाजिक जीवन से सामाजिक अध्ययन की शिक्षा में बड़ी सहायता मिलेगी।

आकस्मिक परिवर्तन हानिकर होगा

पाठ्यक्रम अथवा शिक्षण व्यवस्था में आकस्मिक परिवर्तन नहीं होना चाहिये। यदि आकस्मिक परिवर्तन किया जायगा तो अध्यापक यह समझेंगे कि उनकी सुरक्षा की भावना खतरे में है। हमें निरन्तर इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि सम्पूर्ण शिक्षालय-समाज का समान रूप से और समान स्तर का विकास हो। विकास के समय स्पर्धा के वशीभूत होकर किसी कक्षा को आगे बढ़ने देना हानिकर होगा। विद्यार्थियों और अध्यापकों में समान रूप से सक्रिय शिक्षा के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के लिए वैकल्पिक घंटों की व्यवस्था की जाय। इन वैकल्पिक घंटों की व्यवस्था से प्रत्येक अध्यापक को सक्रिय रूप से कार्य करने का अवसर प्राप्त हो जायगा। इन वैकल्पिक घंटों का कार्य यह होगा कि वे विद्यार्थी और शिक्षक को सक्रिय रूप से सहयोग पूर्वक कार्य करने का अवसर प्रदान करेंगे। यह सहयोग पूर्ण संबंध ही सामाजिक अध्ययन का सुफल कहा जा सकता है।

सामाजिक अध्ययन की शिक्षा के संबंध में यदि उपर्युक्त रीति से क्रमशः कार्य किया जाय तो बिना किसी कठिनाई और असुविधा के सामाजिक अध्ययन का कार्य प्रगति करेगा और उसकी सार्थकता स्पष्ट हो जायगी। सामाजिक अध्ययन के प्रभाव के साथ ही धीरे-धीरे विरोधी दल के विरोध की भावना भी दूर होती जायगी। जब अध्यापक और विद्यार्थी किसी रुचिकर कार्य को एक साथ करते हैं तब उसमें विचित्र प्रकार की सरसता आ जाती है और जीवन तथा कार्य के प्रति एक आकर्षक दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।

नवाँ अध्याय

कक्षा में योजना का व्यावहारिक रूप

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कितना ही मन्द क्यों न हो अपने लाभ और अपने हित की बात अवश्य सोचता है। उसे अपनी आवश्यकता, अपनी महत्वाकांक्षा और अपनी उन्नति की बातों में बड़ी रुचि होती है। बच्चों से कहीं अधिक बड़े लोग अपनी इन बातों में रुचि दिखलाते हैं। बहुत से लोग तो अपनी बातों में इतने तन्मय रहते हैं कि उन्हें अपनी बातों के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। इसलिए सामाजिक अध्ययन को प्रारंभ करने के लिए व्यक्ति एक महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। हमें प्रारंभ में ऐसे कार्य को ही हाथ में लेना चाहिये जिससे सबको आनन्द मिले और जिसके संबंध में सबको कुछ न कुछ अनुभव हो। जब हमें किसी बात का कुछ अनुभव होगा तब उसके संबंध में हम अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे। उसके संबंध में हम अपने अनुभव कह सकेंगे। अतः कक्षा में पहले व्यक्तिगत रूप से छोटे-छोटे कार्य हाथ में लेना चाहिये। उदाहरण के लिए हम एक व्यक्ति की आवश्यकताओं को ले सकते हैं और इस संबंध में विचार कर सकते हैं। सब विद्यार्थियों को एक-एक कागज का टुकड़ा दे दिया जाय और उनसे कह दिया जाय कि वे उस पर उन सभी वस्तुओं को लिख डालें जिनकी उनको नित्य प्रति आवश्यकता होती है। सब विद्यार्थी कुछ निम्नलिखित रूप से अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करेंगे :—

भोजन	वस्त्र	धन	पानी,	आग	वृत्ति
चारपाई,	ओढ़ना	बिछौना,	वायु	शिक्षा	मित्र
खेल-कूद	खिलौने	छुट्टी	व्यक्ति	आने-जाने के	साधन
शिक्षा	मशीनें	गाना-बाजाना	कागज	कलम	
दावात	कुर्सी	मेज	दीपक	साबुन	तेल

विद्यार्थी कुछ इसी प्रकार बिना कोई क्रम निर्धारित किये हुए अपनी आवश्यक वस्तुओं की तालिका बनायेंगे। इस प्राथमिक स्थिति में अध्यापक को कुछ भी निर्देश नहीं करना चाहिये। इस तालिका के बन जाने के बाद सब विद्यार्थियों को बैठकर इस बात का निश्चय करना चाहिये कि वे कौनसी सामग्रियाँ और वस्तुएँ हैं जिनकी साधारणतया सबको आवश्यकता होती है। इस संबंध में विचार करने के बाद जो वस्तुएँ प्राथमिक और समान रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण हों उन्हें रेखांकित कर देना चाहिये। कौन कौन वस्तुएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं इसका निर्णय करना जरा कठिन होगा। लोग भिन्न-भिन्न रूप से अपने मत व्यक्त करेंगे। इस प्रकार के वादविवाद द्वारा उन्हें अपनी आन्तरिक भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलेगा।

बालकों द्वारा चुनी गयी अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकताओं पर जब हम विचार करेंगे तब हमें यह स्पष्ट होगा कि इनमें कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका अन्य के साथ घनिष्ठ संबंध है। अतः हम इन आवश्यकताओं को तीन प्रमुख विभागों के अन्तर्गत रख सकते हैं। ये विभाग हैं :— (१) स्वास्थ्य (२) वृत्ति (३) समाज। हमने इन तीन विभागों का निश्चय तो किया परन्तु यदि बालकों से कहा जाय कि वृत्ति के संबंध में क्या आवश्यक बातें हैं उसकी एक सूची तैयार करो, तो हमें भिन्न भिन्न प्रकार की आवश्यकताओं का ज्ञान होगा। इसी प्रकार यदि हम समाज के संबंध में आवश्यक तत्वों को एकत्र करने की बात कहें तो भिन्न प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त होंगे। उदाहरणार्थ वृत्ति के संबंध में विचार करते समय लोग वृत्ति के लिए आवश्यक साधनों के संबंध में विचार कर सकते हैं, कुछ उसके लिए उपयोगी शिक्षा के संबंध में सोच सकते हैं और कुछ उन वस्तुओं के ही संबंध में अपने तथ्य एकत्र कर सकते हैं जिनकी सहायता से वृत्ति का संचालन होता है। परन्तु इस प्रकार सामाजिक अध्ययन के कार्य को बढ़ाने का यह अर्थ होगा कि हम अपनी योजना से बहुत आगे बढ़ गये हैं।

विषय पर विचार करने के पश्चात् हमें यह निश्चित करना होगा कि हमें किन वस्तुओं के संबंध में पहले विचार करना चाहिये और उन वस्तुओं में से सबसे पहले किस वस्तु से अपना कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। निश्चय ही वृत्ति अर्जन आदि का कार्य तब हो सकता है जब मनुष्य दृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ रहे। जब तक उसका शरीर स्वस्थ नहीं रहता तब तक वह जीविकोपार्जन का काम ही क्या कर सकता है। इसलिए हम यह निश्चय कर सकते हैं कि हमें स्वास्थ्य के संबंध में सबसे पहले विचार करना चाहिये। क्योंकि जब तक स्वास्थ्य नहीं ठीक रहेगा मनुष्य न तो जीविकोपार्जन कर सकता है और न समाज में सुखी जीवन ही व्यतीत कर सकता है। कुछ लोग वृत्ति और समाज के लिए भी इसी प्रकार की दलीलें पेश कर सकते हैं। जब हम स्वास्थ्य के संबंध में विचार करने लगते हैं तब हमारा ध्यान सबसे पहले भोजन पर जाता है। अतः हम सबसे पहले भोजन के संबंध में विचार विनिमय प्रारंभ कर सकते हैं। हमारे जीवन में भोजन का अत्यधिक महत्व है। मनुष्य के तथा समाज के विकास के लिए भोजन एक मुख्य तथा प्रधान तत्व है। इसी भोजन के कारण ही समाज के लोग जीविकोपार्जन आदि के कार्य में लगते हैं। अतः अब हम स्वास्थ्य के प्रमुख तत्व-भोजन-के संबंध में विस्तार से अध्ययन करेंगे। इसी प्रकार अन्य प्रकरणों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

कार्य की प्रथमावस्था—क्षेत्र का अध्ययन

भोजन प्रकरण का अध्ययन

अब इस प्रकरण के संबंध में हम निम्नलिखित रूप में अध्ययन करेंगे :—

अपने ज्ञान के अनुसार हम
क्या जानते हैं :—

हमें किन बातों का पता लगाना
चाहिये :—

१—हमें शक्ति के लिए भोजन की
आवश्यकता होती है।

१—स्वस्थ रहने के लिए हमें कितने
और किस प्रकार के भोजन
की आवश्यकता है ?

- २—भोजन के लिए हम अपने देश में उत्पन्न तथा विदेश से आई वस्तुओं का उपयोग करते हैं ।
- ३—कुछ वस्तुएँ, कुछ वस्तुओं की अपेक्षा अधिक शक्तिदायक और बलवर्द्धक होती हैं ।
- ४—हम विभिन्न प्रकार के रुचिकर और स्वादिष्ट भोजन की स्पृहा करते हैं ।
- ५—यदि अच्छी भोजन सामग्री भी ठीक से न बनायी जाय तो भोजन अरुचिकर तथा अस्वास्थ्यकर हो जाता है ।
- ६—अधिक मसाले से युक्त भोजन गरिष्ठ और हानिकर होता है ।
- ७—नियंत्रण द्वारा प्राप्त होनेवाला भोजन पर्याप्त नहीं होता ।
- ८—प्राचीन समय में भारत के लोग टमाटर, आलू, गोभी आदि का उपयोग नहीं करते थे । इन्हें वे अशुद्ध मानते थे ।
- २—क्या आमिष भोजन उतना ही स्वास्थ्यप्रद है जितना निरामिष भोजन ?
- ३—क्या संसार में प्रत्येक व्यक्ति के लिए पर्याप्त भोजन की व्यवस्था है या हो सकती है ?
- ४—क्या हमारे देश में इतना अन्न पुनः नहीं उत्पन्न हो सकता कि हम दूसरे देशों से अन्न अथवा अन्न की वस्तुओं का मँगाना बंद कर दें ?
- ५—क्या यह सत्य है कि पहले जमाने के लोग अधिक खाते थे और ढाई अथवा पाँच सेर तक खानेवाले लोग होते थे ?
- ६—क्या हमारे पड़ोसी देश बर्मा के लोग अधिकतर चावल ही खाते हैं ?
- ७—प्रत्येक व्यक्ति के भोजन पर कितना व्यय होना आवश्यक है ?
- ८—किन कारणों से भोजन अस्वास्थ्यकर हो जाता है ?

६—विभिन्न देश के लोगों का भोजन भी विभिन्न प्रकार का होता है ।

१०—अधिक भोजन भट्टता से मनुष्य शीघ्र मरता है और यदि पर्याप्त भोजन नहीं मिलता तो भूखों मरने लगता है ।

११—वनस्पति, तेल तथा इस प्रकार की अनेक प्रकार की वस्तुएँ मनुष्य की स्वास्थ्यकर प्रगति में बाधा पहुँचाती हैं ।

६—भोजन को रुचिकर और स्वास्थ्यकर कैसे बनाया जाय ?

१०—क्या व्यवस्था की जाय कि भोजन की सामग्री सस्ती मिलने लगे और लोगों को अच्छा भोजन प्राप्त हो सके ?

११—क्या कारण है कि आज दूध, दही, मक्खन आदि इतना महंगा हो गया है ? इन वस्तुओं को कैसे सस्ते दामों में प्राप्त किया जाय ?

भोजन के संबंध में विचार विनिमय करने के अवसर पर उपर्युक्त बातें सामने आ सकती हैं । आवश्यकता इस बात की है कि इनको पृथक्-पृथक् श्यामपट्ट पर अथवा किसी एक कागज पर लिख लिया जाय । कार्य करनेवालों को दो व्यक्तियों को मुखिया चुन लेना चाहिये । इन मुखियों को पृथक्-पृथक् रूप से दोनों तालिकाएँ बना लेनी चाहिये ।

कार्य की द्वितीयावस्था—कार्य-निर्धारण

समूहों का निर्वाचन तथा कार्य का बँटवारा

किसी कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व यह आवश्यक है कि कार्य का स्पष्टीकरण तथा वर्गीकरण कर लिया जाय । इसकी अपेक्षा कि सब विद्यार्थी एक ही काम करें विभिन्न क्षेत्र में काम करने के लिए समूहों का संघटन कर देना चाहिये । जहाँ तक संभव हो एक स्वभाव तथा एक रुचि के बालकों का संघटन एक साथ किया जाना चाहिये । कक्षा के विद्यार्थियों को कार्य के अनुसार समूहों में बाँट कर उन्हें निम्नलिखित रूप में कार्य सौंपना चाहिये :—

- प्रथम समूह—भोजन की सामग्री और उनके प्राप्त करने के उपाय ।
 द्वितीय समूह—भोजन का महत्व तथा उनके तत्व ।
 तृतीय समूह—बाहर से आनेवाला भोजन ।
 चतुर्थ समूह—देश में उत्पन्न होनेवाले अन्न ।
 पाँचवाँ समूह—अन्न के अतिरिक्त भोजन के साधन ।
 छठवाँ समूह—भारतीय खाद्य स्थिति की विषमता और उसके कारण ।
 सातवाँ समूह—विश्व की खाद्य स्थिति ।
 आठवाँ समूह—देश की खाद्य स्थिति को स्वावलम्बी बनाने के उपाय ।

कार्य की तृतीयावस्था—अनुसंधान तथा अन्वेषण

खोज संबंधी कार्यों का प्रारंभ होना

कक्षा का समूहों में विभाजन हो जाने के पश्चात् यह आवश्यक होगा कि अध्यापक उन्हें उन वस्तुओं और साधनों का निर्देश करे जिनकी सहायता से विद्यार्थी विभिन्न कार्यों के संबंध में उपयुक्त रीति से आँकड़े प्राप्त कर सकें । सुचारु रूप से कार्य संचालन के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक जिस विषय के संबंध में सामाजिक अध्ययन का कार्य संचालित करे उस विषय की पुस्तकों का अच्छा संग्रह एकत्र करे । उन पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं की सहायता से विद्यार्थी विभिन्न तथ्यों का संकलन कर सकेंगे । विद्यार्थियों को समय-समय पर चलचित्रों के द्वारा भी सहायता दी जा सकती है । विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की दूकानों में जाकर भी अनेक बातों का पता लगाना होगा । स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों की सहायता से उन्हें यह ज्ञान प्राप्त करना होगा कि कौन सा भोजन उपयुक्त होता है और किस रीति से भोजन की सामग्री की उपयोगिता ठीक रखी जा सकती है । विद्यार्थियों के अनुसंधान और खोज संबंधी कार्यों का उनके जीवन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा और वे सक्रिय होकर अपने जीवन के तथ्यों का संकलन कर सकेंगे ।

कार्य की चतुर्थावस्था—विचार विनिमय

आँकड़ों के संबंध में वाद-विवाद

विभिन्न समूहों का जब कार्य समाप्त हो जाय और जब वे अपने क्षेत्र का पूर्ण रूप से कार्य समाप्त कर लें तब विभिन्न समूहों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन होना चाहिये। इस अवसर पर प्रत्येक समूह का प्रतिनिधि अपने विशिष्ट क्षेत्र की बातों को लोगों को बतलायेगा और उसने क्या खोजपूर्ण कार्य किये हैं उनके संबंध में विवरण प्रस्तुत करेगा। स्वाभाविक है कि ऐसे अवसरों पर लोग विभिन्न क्षेत्रों के संबंध में प्रश्न करें। प्रतिनिधि, अध्यापक तथा अपने समूह के अन्य सहयोगियों की सहायता से उन प्रश्नों का उत्तर देगा। बहुत से समूह के प्रतिनिधि अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए चित्रों, आदि का भी उपयोग कर सकते हैं। कुछ विज्ञापन और सरकारी विज्ञप्तियों का भी उपयोग कर सकते हैं।

कार्य की पंचमावस्था—संकलन और अंकन

प्राप्त विवरणों का संकलन और अंकन

विभिन्न समूह के प्रतिनिधियों में जब विचार विनिमय होगा तब बहुत सी महत्वपूर्ण बातों का पता चलेगा। इन बातों को अथवा तथ्यों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि इनका अंकन और संकलन कर लिया जाय। प्रश्न उठेगा कि (अ) इन बातों में से किन तथ्यों का संकलन किया जाय और (ब) उन्हें किस प्रकार अंकित तथा संकलित किया जाय। जहाँ तक (अ) वर्ग का प्रश्न है प्रत्येक समूह निम्नलिखित प्रकार के सुझाव दे सकता है :—

प्रथम समूह—इस प्रकार के चित्र बनाये जायँ जिनसे प्रत्येक दिन के लिए आवश्यक भोजन का ज्ञान हो सके। हम क्या भोजन करते हैं इसकी तालिका बना ली जाय।

द्वितीय समूह—एक साधारण परिवार के भोजन का व्यय तथा

सरकार द्वारा परिवार के लिए प्राप्त होनेवाली सहायताओं को प्रकट करने वाला एक मानचित्र बना लिया जाय ।

तृतीय समूह—देश के मानचित्र पर उन क्षेत्रों को अंकित किया जाय जहाँ अन्न की बहुलता है और जहाँ अन्न की अल्पता है । विश्व के मानचित्र पर उन वस्तुओं का अंकन किया जाय जो हमारे देश के लिए आती हैं । इन चित्रों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक मानचित्र बनाया जाय ।

चतुर्थ समूह—एक ऐसा मानचित्र बनाया जाय जिससे भारत सरकार की योजनाएँ स्पष्ट हों तथा हम उन संभावनाओं पर विचार कर सकें जो भारत सरकार अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन के संबंध में जनता के सम्मुख रख रही है ।

पंचम समूह—अन्न संग्रह और अन्न की रक्षा के साधनों के संबंध में एक मान चित्र बनाया जाय ।

षष्ठ समूह—विभिन्न देशों की भोजन स्थिति तथा जीवन-यापन को प्रकट करनेवाला मानचित्र बनाया जाय । अपने देश की जन संख्या के अनुपात में भोजन सामग्री की आवश्यकता संबंधी चित्र बनाये जायँ ।

सप्तम समूह—दूध, घी, दही, मक्खन आदि पुष्टिकारक पदार्थों के उत्पादन के साधनों का एक मानचित्र बनाया जाय ।

अष्टम समूह—विश्व में अन्न की कमी के क्या कारण हैं और उन्हें कैसे दूर किया जाय इसको स्पष्ट करनेवाला एक मानचित्र बनाया जाय ।

जहाँ तक वर्ग (ब) का प्रश्न है विभिन्न समूह के विद्यार्थी निम्न-लिखित प्रकार के अथवा इसके अनुरूप निर्णय कर सकते हैं :—

१—कुछ इस प्रकार के चित्र और मानचित्र बना लिए जायँ जिनका प्रदर्शन किया जा सके और जिनका कक्षा में उपयोग हो सके ।

२—प्रत्येक समूह के विद्यार्थी अपने क्षेत्र के कार्य विवरण की एक हस्तलिखित पुस्तिका तैयार कर लें ।

३—समूह का प्रत्येक विद्यार्थी अपनी दैनन्दिनि में अथवा तथ्य-

संग्रह पुस्तिका में महत्वपूर्ण बातों को अंकित कर ले। अंत में प्रत्येक समूह के लोगों को अपने-अपने क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण वस्तु का प्रदर्शन करना चाहिये और समूह के सभी लोगों को उसके संबंध में अपने पास विवरण रखना चाहिये।

कार्य की षष्ठावस्था—पर्यवेक्षण

पर्यवेक्षण और भावी कार्यक्रम की संभावनाएँ

विद्यार्थियों द्वारा जब इतना रचनात्मक कार्य हो चुके और जब वे चित्र तथा मानचित्र आदि का निर्माण कर चुकें तब हमें भोजन के संबंध में उन बातों पर विचार करना चाहिये जिनके संबंध में हमने विचार नहीं किया है, अथवा उन समस्याओं और प्रश्नों के संबंध में विचार करें जिनका किन्हीं कारणों वश हम समाधान नहीं कर सके हों। भोजन के संबंध में विचार करते समय हमने कुछ पक्षों पर ध्यान नहीं दिया। उदाहरणार्थ हमने भोजन के इतिहास के संबंध में कुछ भी विचार नहीं किया और न हमने इस बात पर ही विचार किया कि आदिम काल में मनुष्य ने भोजन की किन सामग्रियों का उपयोग किया और विभिन्न भोजन सामग्रियों का किस प्रकार विकास हुआ। भोजन के अनेक अंग अचार, चटनी, तथा मुरब्बों आदि के संबंध में तथा उनकी उपयोगिता के संबंध में भी हम विचार कर सकते थे। हमने इस बात पर भी अधिक ध्यान नहीं दिया कि अन्य देशों के लोगों का क्या भोजन है और वह कहाँ तक स्वास्थ्य प्रद हैं। हम इस अंश पर भी विचार कर सकते थे कि संसार के प्रत्येक प्राणी को स्वास्थ्य वर्द्धक और पुष्ट भोजन प्रदान करने में कितना व्यय हो सकता है।

इन सब बातों पर विचार करने के बाद स्वास्थ्य के लिए अन्य आवश्यक वस्तुओं के संबंध में कार्य करने के लिए हमें तैयारी करनी होगी। स्वास्थ्य के लिए अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएँ, वस्त्र, सफाई, जल, प्रकाश,

वायु, निवास आदि हो सकते हैं। इनके संबंध में हम एक-एक कर विचार कर सकते हैं।

कार्य की विभिन्न अवस्थाएँ

हमने कार्य की जिन विभिन्न अवस्थाओं के संबंध में विचार किया है वे किसी क्षेत्र के कार्य के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। भोजन का उदाहरण लेकर हम लोगों ने योजना का एक सक्रिय और व्यावहारिक रूप सामने रखा है। इन छः अवस्थाओं की सहायता से हम किसी भी कार्य क्षेत्र में अनुसंधान का कार्य प्रारंभ कर सकते हैं। हमारी यह धारणा है कि लादे गये पाठ्यक्रम की अपेक्षा वे योजनाएँ अधिक उपयुक्त होती हैं जिन्हें सहयोग पूर्वक निर्मित किया जाता है अथवा जिनका निर्माण विचार विनिमय और संयुक्त उत्तरदायित्व पर आश्रित होता है। जब हम उपर्युक्त वर्णित छः अवस्थाओं को उपयुक्त कहते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम प्रत्येक क्षेत्र में इनका कठोरता से पालन करें। हम केवल यही कह सकते हैं कि इन विभिन्न अवस्थाओं की सहायता से बालकों को स्वाभाविक रीति से कार्य करने का तथा अध्ययन करने का अवसर मिल सकता है। इन अवस्थाओं की अब संक्षेप में हम थोड़ी आलोचना कर लें और देखें ये कहाँ तक हमारे कार्यों में सहायक हो सकती हैं।

योजना की प्रथमावस्था का विश्लेषण

प्रथमावस्था की क्रियाशीलता को निश्चित करते समय हमें कुछ बातों को ध्यान में रखना होगा। ये बातें निम्न लिखित हो सकती हैं :—

१—साधारण योजना को ध्यान में रखते हुए हम ऐसे कार्यों अथवा प्रकरणों को ही हाथ में लेते हैं जो या तो हमारे व्यक्तिगत जीवन से संबंधित होते हैं या जिनका संबंध हमारे पास पक्षी, नगर, देश आदि से होता है।

२—जीवन के नवीन क्षेत्रों का हम पर्यवेक्षण करते हैं और उन नयी बातों को समझने का यत्न करते हैं जिनका हमें ज्ञान नहीं। इस पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अनेक प्रकार से क्रियाशीलता को बनाये रखा जा सकता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत पुस्तकों का अध्ययन, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं आदि से आवश्यक सूचनाओं का संकलन, तथा चलचित्रों आदि की सहायता से हम अनेक नवीन क्षेत्रों का भ्रमण और पर्यवेक्षण कर सकते हैं।

३—हम जो कुछ भी करते हैं उसको सारांश में लिख लेना चाहिये जिससे आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक सूचनाएँ हमें प्राप्त होती रहें। इस क्षेत्र के अन्तर्गत सारांश में हमें यह लिखना चाहिये कि हम कार्य विशेष अथवा प्रकरण विशेष के विषय में क्या जानना चाहते हैं।

वातावरण का सुखद प्रभाव

जिस क्रियाशील वातावरण के अन्तर्गत हम अपना कार्य प्रारंभ करेंगे उसका हमारे ऊपर बड़ा ही अच्छा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा। यह आवश्यक है कि कार्य प्रारंभ करने के पूर्व ही बालकों को समस्या का महत्व, उसका हमारे जीवन से संबंध तथा खोज की रीति आदि के विषय में साधारण बातें बतला दी जायँ। यदि कार्य और प्रकरण का चुनाव उपयुक्त रीति से हुआ है और छात्रों को उपयुक्त रीति से निर्देशन प्राप्त हो रहा है तो अध्यापक को न तो किसी प्रकार की हैरानी होगी और न उसे अधिक श्रम ही करना पड़ेगा। हमारे आस-पास का जीवन समस्याओं से पूर्ण है परन्तु उन समस्याओं के संबंध में हमें बहुत कम ज्ञान है। इस ज्ञान की अल्पता का कारण यह नहीं है कि हम उन समस्याओं के प्रति रुचि नहीं रखते। हमारे अज्ञान का कारण यह है कि हमारे पास इतना समय ही नहीं कि हम उन समस्याओं का शान्ति पूर्वक अध्ययन कर सकें। जहाँ बच्चों का संबंध जीवन की किसी समस्या से स्थापित कराया गया वहाँ उनकी अभिरुचि बढ़ जाती है और वे

बच्ची तन्मयता के साथ ऐसी समस्याओं के समाधान का यत्न करते हैं। वे कक्षा में बैठकर अभ्यास के कार्यों को भले ही न करें परन्तु जीवन से संबंधित कार्यों के प्रति सबका आकर्षण होता है। जब कोई नया कार्य हम प्रारंभ करते हैं तब हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि पहले उसके संबंध में हम विचार विनिमय कर लें। आपसी सुझावों पर विचार कर लें। कक्षा में बैठे हुए बालकों को किसी कार्य के लिए निर्देश देना एक बात है और बालकों के साथ विचार विनिमय कर किसी कार्य की ओर अग्रसर होना दूसरी बात है। विभिन्न प्रकार की सामग्रियों का भी उनके जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। विभिन्न विषयों की पत्रिकाएँ, रंगविरंगे चित्र, मानचित्र, विभिन्न वस्तुओं के आकार आदि द्वारा एक विचित्र प्रकार का वातावरण उत्पन्न होगा।

प्रथमावस्था में जिस समय हम प्रारंभिक विचार विनिमय करते हैं उस समय यह आवश्यक नहीं कि हम सब बातों को तर्क की कसौटी पर कस लेने के बाद ही उन्हें अपनी दैनन्दिनि में लिखें। प्रथमावस्था में तो जो भी सुझाव अथवा विचार मस्तिष्क में उत्पन्न हों उन्हें अंकित कर लेना चाहिये। इस अवस्था में मस्तिष्क को खुरचने का यत्न नहीं करना चाहिये। अपूर्णावस्था में यदि हम तर्क युक्त वर्गीकरण का सिद्धान्त सामने लायेंगे तो निश्चित है कि हमारी बुद्धि के कपाट बन्द हो जायेंगे। जब किसी कार्य अथवा प्रकरण के संबंध में हम पूर्ण रूप से चैतन्य हो जायँ तब हमें उसके सैद्धान्तिक वर्गीकरण का यत्न करना चाहिये। कक्षा की शिक्षा के समय शुद्धि और अशुद्धि पर हम इतना अधिक जोर देते हैं कि कुछ दिनों के बाद बालक स्वतः अपने से किसी कार्य के लिए प्रयत्न ही नहीं करना चाहता। इसलिए यह आवश्यक है कि जब हम कोई कार्य प्रारंभ करें तब बच्चे उसके संबंध में जो भी अपने विचार प्रकट करें उन्हें हम सुझाव के रूप में अंकित करते जायँ और उसके संबंध में तब विचार करें जब सब बालकों के विचारों का हमें पता लग जाय और जब सूचना संबंधी सब सामग्री एकत्र हो जाय।

आलोचना की आवश्यकता नहीं

जिस समय प्राथमिक अवस्था का विचार विनिमय होता रहेगा बहुत से लड़के ऐसे सुझावों को सामने रखेंगे जो अनावश्यक प्रतीत होंगे और जिनका विषय से कुछ भी संबंध न होगा। अध्यापक को चाहिये कि वह ऐसी अनावश्यक और असम्बद्ध बातों की आलोचना न करें। उन्हें चाहिये कि वे उन्हें केवल चुपचाप सुन लें। इसका पहला कारण यह है कि कार्य की इस प्रथमावस्था में ये बातें अध्यापक के लिए भले ही अनावश्यक प्रतीत हों परन्तु वे बच्चों के लिए बड़े महत्व की हैं क्योंकि वे उनके जीवन में उद्बोधन उत्पन्न करती हैं और आवश्यक तथा अनावश्यक का निर्णय तो हम तब कर सकते हैं जब हम विभिन्न बातों का तार्किक रीति से वर्गीकरण करें। इस प्रकार का तार्किक वर्गीकरण तब हो सकता है जब अध्ययन की सब सामग्री को हम एकत्र कर लें और सामग्री के एकत्र करने का कार्य समाप्त हो जाय।

प्रथमावस्था में अध्यापक को बालकों के मार्ग-प्रदर्शन का भी कार्य नहीं करना चाहिये। उसे केवल एक कार्य-कर्ता के रूप में चुपचाप काम करना चाहिये। प्रथमावस्था में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछ कर उन्हें अपनी निश्चित धारणा के मार्ग पर ला खड़ा करने का यत्न बड़ा ही हानिकर होगा। इस प्रकार के प्रयत्न का यह अर्थ होगा कि हम एक तस्कर के समान उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर रहे हैं। क्यों कि यदि अध्यापक निरन्तर प्रश्न पूछता रहता है तो न तो छात्र तटस्थ होकर कुछ सोच सकते हैं और न अपने मार्ग को छोड़ कर दूसरे मार्ग का अवलम्बन ही कर सकते हैं।

जब हम यह कहते हैं कि अध्यापक को प्रश्न नहीं पूछना चाहिये तब इसका यह अर्थ नहीं है कि अध्यापक को आवश्यक स्थिति में भी प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं है। अध्यापक उपयुक्त अवसर पर दो-एक प्रश्न अवश्य पूछ सकता है लेकिन उसके प्रश्न का कार्य सटीक उत्तर

प्राप्त करना नहीं होना चाहिये, वरन् इन प्रश्नों की सहायता से उसे बालकों को उद्बोधन प्रदान करना चाहिये। उसके प्रश्न ऐसे होने चाहिये कि वे बालकों की कल्पना, उनके विचारों, और उनकी भावनाओं को, जागरित करें। प्रथमावस्था में अध्यापक के प्रश्नों का इसी सीमा तक महत्व है।

द्वितीयावस्था का विश्लेषण

द्वितीयावस्था के कार्य प्रारंभ करने के पूर्व हमें निम्न लिखित बातों पर विचार करना होगा :—

१—प्रथमावस्था से उस प्रश्नावली का चयन जो हमारे कार्य के लिए आवश्यक हैं। हमने प्रथमावस्था में जो कुछ कार्य किया है उसके आधार पर ही प्रश्नों का निर्माण होना चाहिये।

२—जिन बातों को हम महत्वपूर्ण समझे उन्हें विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत कर लेना चाहिये।

३—इस अवस्था में हमें इस बात का निर्णय करना होगा कि प्रश्नावली अथवा समस्याओं का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति कार्य करेगा अथवा कुछ समूह इस कार्य में लगेंगे अथवा कुछ विशेष समस्याओं पर वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप से कार्य करना होगा। हमें इस बात का भी पता लगाना होगा कि किसी समस्या के निर्णय का सबसे महत्वपूर्ण और सरल साधन क्या है। हमें उन प्रकारों की भी खोज करनी पड़ेगी जिनकी सहायता से हम ये कार्य पूरे कर सकते हैं।

आवश्यक तथा महत्वपूर्ण बातों का संकलन मनोरंजक और विचारोत्तेजक कार्य होगा। इस कार्य में कक्षा के सब विद्यार्थी योग दे सकते हैं। संकलित बातों को श्यामपट्ट पर लिख दिया जा सकता है और उसके बाद संबंधित और आवश्यक बातों और वस्तुओं के नामों को रेखांकित किया जा सकता है। किन कारणों से और किन बातों को सोचकर बच्चे किसी वस्तु को आवश्यक अथवा महत्वपूर्ण समझते हैं इस संबंध में भी चयन के

समय उनसे प्रश्न पूछा जाना चाहिये। इसी प्रकार विभिन्न शीर्षकों के निर्णय के समय भी हमें सब विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये।

अध्यापक को शीर्षक आदि निर्णय के अवसर पर अपनी बातों को महत्व प्रदान कराने का यत्न नहीं करना चाहिये। इस प्रकार के कार्यों में त्वरा की भी आवश्यकता नहीं। विचार विनिमय और धैर्य पूर्वक कार्य करने से, कल्पनाओं, भावनाओं की वृद्धि होती है तथा योजनाओं का विकास होता है।

विभिन्न प्रकार के बच्चों द्वारा सामाजिक अध्ययन के अवसर पर विभिन्न रूप के कार्य किये जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि जो बालक मौखिक कार्यों में सबसे अधिक सहयोग करते हैं वे यह आवश्यक नहीं है कि खोजपूर्ण कार्यों, संकलन अंकन, आदि में भी उसी रूप में सहयोग करें। बहुत से छात्र संकोची होते हैं। वे कक्षा में अधिक बोलना-चालना नहीं पसन्द करते लेकिन कक्षा में जब विचार विनिमय होता है तब उस समय उनका मुख प्रकाश से दीप्त हो उठता है और वे अपनी कक्षा की बात-चीत में बड़ा रस लेते हैं।

कार्य निर्धारण और काम के बँटवारे के समय भी विचार विनिमय की आवश्यकता है। किन समूहों को अथवा किन व्यक्तियों को क्या काम दिया जाय यह कम महत्व की बात नहीं है। समूहों के आकार में विविधता होने से लाभ होता है। यह आवश्यक नहीं है कि सब समूहों में समान संख्या के छात्र हों। जहाँ पढ़ने-लिखने अथवा उदाहरणों के संकलन का काम होता है वहाँ दो-तीन बालकों का समूह अधिक अच्छा सिद्ध होगा। यदि हम बड़े समूहों का निर्माण करेंगे तो बालक स्वतः अपनी इच्छानुसार अपने को छोटे-छोटे समूहों में विभाजित कर लेंगे। इस प्रकार के विभाजन का काम हमें उन्हीं पर छोड़ देना चाहिये। कभी-कभी हमें यह देखकर आश्चर्य होगा कि एक ही कक्षा में समान रूप के बालकों में क्षमता और शक्ति संबंधी कितनी विविधता और भिन्नता है। कुछ बालक ऐसे होंगे जो निर्धारित कार्य को अध्यापक की आज्ञा के अथवा

निर्देश के अभाव में भी आपस में विभाजित कर लेंगे और उसे सुचारु रूप से करेंगे। कुछ ऐसे बालक होंगे जो उसी प्रकार की स्थिति में रहते हुए भी निर्देशन की अपेक्षा करेंगे और उन्हें कार्य प्रारम्भ करने के लिए अनेक प्रकार से उत्साहित करना होगा। इस प्रकार के अनुभवों से यह निष्कर्ष निकलता है कि क्षमता बहुत कुछ कक्षा के बालक की प्रकृति पर भी निर्भर करती है। वातावरण अथवा कार्य के बैठवारे का प्रभाव तो पड़ता ही है लेकिन प्रकृति का महत्व कम नहीं है।

ऐसे छात्र-समूह जिनमें सामाजिक कार्यों की रुचि अथवा सामाजिक तत्त्वों की कमी हो उन्हें एक समूह के छोटे-छोटे कार्यों को वैयक्तिक रूप से बाँट देना चाहिये। इस प्रकार के वैयक्तिक कार्यों का भी सामूहिक उपयोग होगा और वे सामूहिक कार्य के समान ही उपादेय होंगे। वैयक्तिक और सामूहिक जीवन के बीच जो दीवार खड़ी हो जाती है उसको दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि समूहों के कार्य संचालन के लिए छोटी-छोटी उपसमितियाँ बना दी जायँ और वे कार्य का संचालन और निर्देशन करें। इन उपसमितियों का एक मंत्री होना चाहिये जो समिति के निर्णयों का विवरण रखे। इन विवरणों पर साधारण बैठक के अवसर पर विचार विनिमय होना चाहिये। ऐसी बैठकों के अवसर पर सब व्यक्तिगत प्रयत्नों को एक सूत्र में ग्रथित किया जा सकता है।

सहयोगी कार्यों की प्राथमिक स्थिति

बहुधा लिखित अथवा व्यावहारिक रूप की अपेक्षा सहयोगी कार्य मौखिक रूप में ही प्रारम्भ होता है। खोजपूर्ण तथा अनुसंधान संबंधी कार्यों के समय तो बहुत से लोग एक सहयोगी की अपेक्षा करते हैं। यदि उनके साथ कोई सहयोगी रहता है तो उनका काम और भी अच्छी तरह होता है। बहुत से अध्यापक यह कहते हैं कि बच्चे पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त जब कुछ पढ़ना ही नहीं चाहते तब ऐसी स्थिति में पुस्तकालयों की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे अवसरों पर लड़के पुस्तकों के संबंध में कुछ

समझ बूझ न सकेंगे। लेकिन सामाजिक अध्ययन की कार्यप्रणाली के अन्तर्गत हम भिन्न स्थिति पाते हैं। व्यक्तिगत रूप से बालक पुस्तकालयों की पुस्तकों का उपयोग न करना चाहें परन्तु जब उनके साथ सहयोगी रहता है तब वे एक दूसरे से उत्साह प्राप्त करते रहते हैं। कभी-कभी तो वे ऐसी पुस्तकों से अपने उपयोग की सामग्री एकत्र कर लेते हैं जो प्रौढ़ों के उपयोग की होती हैं। शिक्षक को चाहिये कि वह बालकों को यह बतला दें कि उन्हें किन पुस्तकों से क्या क्या बातें एकत्र करनी हैं। पहले तो छात्र ऐसी पुस्तकों के चित्रों और मानचित्रों को देखते हैं। जब चित्र आदि देखने से उनका मन भर जाता है तब वे काम की बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। अध्यापक को बालकों को यह बात स्पष्ट रूप से बतला देना चाहिये कि किस अध्याय में उनके उपयोग की सामग्री प्राप्त होगी। यह आवश्यक है कि अध्यापक उन वस्तुओं से पूर्णरूप से परिचित रहे जिनके सम्बन्ध में वह बालकों का निर्देशन करता है। पुस्तकों आदि के उपयोग के सम्बन्ध में उन्हें निश्चित रूप से मार्ग प्रदर्शन करना चाहिये और पठन-पाठन का काम छात्रों पर छोड़ देना चाहिये। जब बालक स्वतन्त्र रूप से पढ़ने पढ़ाने के लिए छोड़ दिये जाते हैं तब वे एक दूसरे की भलीभाँति सहायता करते हैं। अध्यापक को स्पष्ट रूप से यह कह देना चाहिये कि वह छात्रों की सहायता के लिए प्रति क्षण प्रस्तुत है परन्तु वह उनके कार्यों का निर्देशन नहीं करेगा। उन्हें अपने मार्गों का निर्धारण स्वयं करना होगा।

तृतीयावस्था का विश्लेषण

अन्वेषण तथा अनुसंधान संबंधी कार्यों के लिए हमारे सामने विस्तृत क्षेत्र है। हमें अपने अनुसंधान के कार्यों के लिए क्षेत्र का निर्धारण कर लेना चाहिये। अनुसन्धान तथा अन्वेषण के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं :—

१—कक्षा से बाहर बाह्य जगत के सम्पर्क में आकर जाँच-पड़ताल करना और नवीन बातों का पता लगाना।

२—शिक्षालय तथा शिक्षालय के बाहर के लोगों के सम्पर्क में आकर अनेक बातों के संबंध में परिचय प्राप्त करना ।

३—चित्रों, चलचित्रों, पुस्तकों आदि का उपयोग करना तथा उनके आधार पर प्रयोगात्मक कार्य करना ।

यात्राओं और पर्यटनों का बड़ा महत्व होता है । लड़कों को पर्यटन आदि के कामों में आनन्द भी आता है । उनसे बराबर लाभ ही हो यह बात भी नहीं हो पाती । क्योंकि यात्राओं की योजना अधिकतर ठीक से नहीं बनायी जाती और न उनका संघटन ही ठीक से किया जाता है । बहुत से अध्यापक ऐसे हैं जो छात्रों को बाहर नहीं ले जाना चाहते । बहुत से ऐसे कल-कारखाने और महत्वपूर्ण स्थान हैं जहाँ के अधिकारी उन स्थानों के निरीक्षण का अवसर नहीं देना चाहते । अतः अध्यापकगण अनेक बहानों को सामने रखकर इनसे दूर भागना चाहते हैं । लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि जब कक्षा के बाहर विद्यार्थी जाते हैं तब उन्हें अनेक प्रकार के नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं । उनके मस्तिष्क के लिए नवीन भोजन प्राप्त होता है । उनकी चेतना और मनोभावों को विस्तृत क्षेत्र के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है ।

पर्यटन और यात्राओं की उपयोगिता

सामाजिक अध्ययन के संबंध में जब हम यात्राओं और पर्यटनों का संघटन करते हैं तब वे उसी स्थिति में लाभकर हो सकती है जब कक्षा के छात्र पर्यटन के लिए उत्सुक हों और नवीन बातों का पता लगाने के लिए बाहर जाना चाहते हों । पर्यटन का लाभ तब होगा जब उन्हें यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात हो कि वे बाहर जाकर क्या जानना चाहते हैं और उन बातों को वे किस प्रकार जान सकते हैं । पर्यटन का उस स्थिति में भी लाभ होगा जब हम इस ध्येय से बाहर जायँ कि यात्रा का हम विवरण तैयार करेंगे और उनका उपयोग करेंगे । यात्रा की व्यवस्था और संचालन के सम्बन्ध में भी हमें साधारण बैठकों के अवसर पर निर्णय करना

चाहिये । यात्रा में जो छोटे-छोटे समूह जायँगे वे किस प्रकार काम करेंगे इसकी भी हमें योजना बना लेनी चाहिये । यात्रा के समाप्त हो जाने के बाद सब छात्रों को एक स्थान पर मिलकर अपनी यात्रा के संबंध में विचार विनिमय करना चाहिये और उन अनुभवों का वर्णन करना चाहिये जो यात्रा के समय उन्हें प्राप्त हुए हैं । इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि यात्रा के समय हम क्या करना चाहते हैं और किसकी सहायता से हमारी आवश्यकताएँ पूरी होंगी, इसके संबंध में हमें स्पष्ट निर्देश प्राप्त होने चाहिये । यात्राओं के अवसर पर अपने कार्य के लिए हम विभिन्न स्थानों के प्रमुख व्यक्तियों की भी सहायता ले सकते हैं । प्रमुख व्यक्तियों के भाषण आदि की सहायता से विद्यार्थी अत्यधिक लाभ उठा सकते हैं ।

प्रयोगात्मक कार्य के अवसर पर हम विभिन्न वस्तुओं की आकृतियाँ और चित्र बना सकते हैं । कारखानों, अस्पतालों आदि के सुन्दर चित्र अथवा आकार बनाये जा सकते हैं । प्रयोगात्मक कार्य के अवसर पर लकड़ी, मिट्टी, पेरिस का प्लास्टर आदि का उपयोग किया जा सकता है । दफती और कागज की सहायता से भी मकान आदि के ढाँचे बनाये जा सकते हैं । इन सब कार्यों के अवसर पर अध्यापक को अपने पर बड़ा संयम रखना होगा । उसे निरन्तर इस बात का ध्यान रखना होगा कि वह बालकों के कार्यों में हस्तक्षेप न करे और उन्हें सहयोग पूर्वक कार्य करने का अवसर प्रदान करे ।

चतुर्थावस्था का विश्लेषण

बालकों द्वारा व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से जो सूचनाएँ अथवा वस्तुएँ प्राप्त की गयी हैं उनको संग्रहीत करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करना चाहिये । कार्य की यह वह स्थिति है जब कि योजना के संबंध में सब लोग मिल कर विचार करें तथा विभिन्न साधनों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की प्रमुख बातों का ज्ञान प्राप्त करें । उन्हें इसी अवस्था

में इस बात का ज्ञान प्राप्त होगा कि किसी समूह विशेष द्वारा प्राप्त की गयी सूचनाओं और बातों का कार्य अथवा प्रकरण-विशेष के लिए क्या महत्व है। विभिन्न दलों के विवरण का रूप पृथक-पृथक हो सकता है। कुछ विद्यार्थी अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए चित्रों का उपयोग कर सकते हैं, कुछ विद्यार्थी मानचित्रों, पुस्तकों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने विवरण तैयार कर सकते हैं। विवरण प्रदान करने का कार्य समूह का मुखिया कर सकता है, परन्तु यथावसर प्रत्येक व्यक्ति को इसका अवसर देना चाहिये। इस प्रकार के विचार विनिमय को सदा गोष्ठी का रूप प्रदान करना चाहिये और समूह के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सम्मति और अपनी अनुभूति के संबंध में विचार प्रकट करने का अवसर देना चाहिये। इस अवस्था में अध्यापक का बहुत महत्व पूर्ण कार्य होगा। प्रत्येक समूह का विवरण सुन लेने के पश्चात् अध्यापक का यह कर्तव्य होगा कि वह विवरण की अशुद्धियों को ठीक करे और जो बातें छूट गयी हों उन्हें पूरा करे। इस कार्य से भी अधिक महत्व पूर्ण कार्य यह होगा कि वह विभिन्न विवरणों के अन्योन्याश्रित संबंधों को स्पष्ट करे तथा उनको एक सूत्र में बाँधने की चेष्टा करे। वह उन्हीं बातों को महत्व प्रदान करेगा जिनका वास्तव में महत्व है और अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करने की चेष्टा भी करेगा।

पंचमावस्था का विश्लेषण

पंचमावस्था में हम अपने विवरणों का संकलन और अंकन करते हैं। लेकिन जिस समय हम अन्वेषण और अनुसंधान करते रहते हैं उस समय भी हम अंकन और संकलन का कार्य करते रहते हैं। लेकिन उस समय अंकन अथवा संकलन की प्रथमावस्था रहती है। इस अवसर पर हम अपने अनुभवों और वस्तुओं का संकलन तथा अंकन उपयुक्त रीति से करेंगे। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति अथवा प्रत्येक समूह एक ही प्रकार का संकलन और अंकन का कार्य करे। इस प्रकार

के कार्यों में वैयक्तिकता को महत्व प्रदान किया जा सकता है। हम जो कुछ भी संकलित अथवा अंकित करें उनका रूप व्यावहारिक ही होना चाहिये। इस अवसर पर हमें विभिन्न विवरणों के चित्र, ग्राफ, मानचित्र और ढाँचे आदि बनाने का कार्य करना चाहिये। अपने चित्रों आदि को आकर्षक और उपयोगी बनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगों का उपयोग किया जा सकता है। जो वस्तुएँ अथवा जो विवरण प्राप्त किये जायँ उनका उपयोग छोटे-छोटे अभिनय के समय अथवा कथोपकथनों के रूप में भी किया जा सकता है। अनुभवों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए उनके आधार पर खेलों का संघटन अथवा काल्पनिक दूकानों आदि का संघटन कम लाभ प्रद न होगा।

षष्ठावस्था का विश्लेषण

वास्तव में किसी प्रकार का अध्ययन अपने में पूर्ण नहीं हो सकता। अध्ययन की जो भी सामग्री हम लें उसका कोई न कोई अंश अछूता रह ही जाता है। यह दुख की बात है कि शिक्षा के लिए निर्मित कुछ पुस्तकें ऐसी भी होती हैं कि वे अधिकतर उन बातों के संबंध में कोई निर्देश नहीं करती जिन्हें उन्होंने छोड़ दिया है। बहुत सी पुस्तकें ऐसी होती हैं जिन्हें लोग हर दृष्टि से पूर्ण समझते हैं लेकिन इस प्रकार की पुस्तकें ज्ञान के द्वार को खुला रखने की अपेक्षा तत्काल बन्द करने की व्यवस्था करती हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम अध्ययन के समय जिन प्रकरणों के संबंध में विचार करें उन्हें विस्तृत पीठिका पर आधारित रखें तथा कुछ उन समस्याओं के संबंध में भी संकेत कर दें जिनका स्पर्श नहीं किया गया है और जो हमारे भावी जीवन के लिए आवश्यक हों। इस प्रकार के संकेतों से हमें यह भी लाभ होगा कि हम नवीन प्रकरण का चुनाव सरलता से कर सकेंगे और अपना भावी कार्यक्रम निश्चित कर सकेंगे।

दसवाँ अध्याय

आकृतिक प्रणाली का उपयोग

जब हमें किसी बात को समझाने का यत्न करना होता है तब हम अनेक प्रणालियों का अनुसरण करते हैं। हम उदाहरणों द्वारा अथवा व्याख्या द्वारा किसी बात को समझाते हैं। कभी-कभी किसी कठिन प्रश्न को समझाने के लिए हम मानचित्र खींचते हैं अथवा विभिन्न वस्तुओं की आकृति बनाकर अपने भावों को स्पष्ट करते हैं। यदि हमें यह बतलाना होता है कि एक व्यक्ति खान में अथवा कारखाने में काम कर रहा है तो हम एक व्यक्ति की कार्य करते हुए आकृति बना देते हैं। इस प्रकार अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार की जो आकृतियाँ हम खींचते हैं उन्हें आकृतिक प्रणाली कह सकते हैं। हम अधिकतर आकृतियाँ दूसरे के लाभ के लिए बनाते हैं। इन आकृतियों की सहायता से लोग किसी विषय विशेष के प्रति आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करते हैं। किसी प्रकरण अथवा किसी समस्या को स्पष्ट करने के लिए इन आकृतियों का निर्माण किया जाता है। व्यापार को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अनेक प्रकार के विज्ञापन इसी प्रणाली के अन्तर्गत बनाये जाते हैं। कभी-कभी इन्हीं आकृतियों की सहायता से बड़े-बड़े कारखानों और संघटनों की बातें संक्षेप में समझायी जाती हैं। कुछ आकृतियाँ इस प्रकार की भी बनायी जाती हैं जो संदेह तथा अव्यवस्थाएँ उत्पन्न करती हैं। कुछ ऐसी आकृतियाँ होती हैं जिनसे बातें स्पष्ट नहीं होतीं।

सामाजिक अध्ययन के लिए आकृतियों का प्रयोग

इन आकृतियों का सामाजिक अध्ययन के लिए भी हम प्रयोग कर

सकते हैं। अनेक प्रकार की आकृतियों से हम इस क्षेत्र में भी लाभ उठा सकते हैं। इन आकृतियों की सहायता से हम आलोचनात्मक प्रवृत्ति और प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति को विकसित कर सकते हैं। बने बनाये चित्रों का भी अपना महत्व है। ये चित्र हमें साधारण अध्ययन क्षेत्र का एक सीमित दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। लेकिन हमें उन्हें अपने कार्य का निर्णायक या अन्तिम रूप नहीं स्वीकार कर लेना चाहिये। निर्जीव आकृतियों की अपेक्षा सजीव आकृतियों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन सजीव आकृतियों का उपयोग चलचित्रों आदि में होता है। चलचित्रों में चूहों, खरगोशों आदि का कार्य इन्हीं आकृतिक प्रणाली की सहायता से दिखलाया जाता है। जब इन सजीव आकृतियों की सहायता से विज्ञान अथवा गणित की बातों को हम समझने का यत्न करते हैं तब हमारे काम में बड़ी सरलता आ जाती है। इन आकृतियों की सहायता से हमें व्यावहारिक रूप का तो ज्ञान नहीं होता परन्तु इनकी सहायता से सैद्धान्तिक बातें सरस और मनोरंजक अवश्य हो जाती हैं। इसी प्रकार जब विश्व के मानचित्र पर अथवा भारत के मानचित्र पर हम अपनी समस्याओं के सांकेतिक चिन्हों को चलते फिरते देखते हैं तब उनके भाव हमें बड़ी सरलता से स्पष्ट हो जाते हैं। यह कार्य निर्जीव आकृतियों द्वारा नहीं सम्पन्न किया जा सकता है।

आकृतियों का प्रयोजन

शिक्षालयों में आकृतियों का भिन्न उपयोग होता है। यहाँ जो आकृतियाँ बनायी जाती हैं उनका दूसरों के लिए नहीं बरन् बनाने वाले के लिए ही महत्व होता है। बनी बनायी आकृतियों या मानचित्रों का तो सीमित महत्व अथवा उपयोग होता है परन्तु अपनी इच्छा के अनुरूप अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए जो आकृतियाँ बनायी जाती हैं उनका शैक्षिक महत्व होता है और उनसे बड़ी ही महत्व पूर्ण शैक्षिक अनुभूति प्राप्त होती है। किसी दूसरे के द्वारा बनायी गयी आकृति

अथवा मानचित्र से अधिक हमें अपने द्वारा बनायी गयी आकृतियों से लाभ होता है। आकृतियों का बनाना एक वह साधन है जिसके द्वारा हम उन बातों को जान सकते हैं जिनका हम पता लगाना चाहते हैं। निबंध लिखने वाले अथवा शब्दों द्वारा भाव व्यक्त करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा आकृति निर्माण करने वाले व्यक्ति के लिए यह बहुत ही आवश्यक बात होती है कि वह किसी वस्तु की पूर्ण आकृति अथवा पूर्ण रूप सामने रखे। आकृति निर्माण की सहायता से अपनी बातों को स्पष्ट करने का यह अर्थ है कि मनुष्य अपनी बातों को बड़े ही स्पष्ट रूप से तथा गंभीरता के साथ व्यक्त कर सकने की क्षमता रखता है। जीवन में अनेक अवसरों पर हमें संक्षेपीकरण की आवश्यकता होती है और संक्षेपीकरण के लिए यह आवश्यक होता है कि हम विशेष बातों के तात्पर्य और महत्व को समझें। इन आकृतियों की सहायता से हमें संक्षेप में अपनी बातें कहने का और महत्वपूर्ण तत्वों को सामने रखने का, सरल साधन प्राप्त हो जाता है। किसी निबंध को स्मरण कर सकना कठिन होता है लेकिन हम विभिन्न आकृतियाँ अथवा मानचित्रों को सरलता से स्मरण रख सकते हैं।

इस आकृतिक प्रणाली द्वारा हमें जो रचनाएँ प्राप्त होती हैं उनकी आवृत्ति बड़ी सरलता से काँ जा सकती है। अध्यापक भी इनकी सहायता से अपने कार्य की देख-भाल बड़ी सरलता से कर सकता है। जहाँ लड़कों को वाक्यों अथवा अनुच्छेदों का स्मरण रख सकना कठिन होता है वहाँ इस आकृतिक प्रणाली द्वारा उन्हें साधारण रेखाचित्रों की सहायता से बहुत सी बातें बतलायी जा सकती हैं। इन रेखाचित्रों अथवा आकृतियों की सहायता से थोड़े समय में अधिक बातें समझायी जा सकती हैं। यदि पहले आकृति द्वारा एक बात को स्पष्ट कर दिया जाय और उसके बाद यदि लिखने का कार्य कराया जाय तो लिखने का कार्य भी सरल हो जाता है। पहले लड़के इस अपरिचित प्रणाली से घबड़ाते हैं परन्तु जब वे इससे परिचित हो जाते हैं और उन्हें आकृतियों के खींचने का अभ्यास हो जाता है तब

उनको बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। विशेषतः वे लड़के जो लिखने के कार्यों से घबड़ाते हैं अथवा उसमें असफल होते हैं, वे इस आकृतिक प्रणाली से अधिक संतोष प्राप्त करते हैं। इस प्रणाली से उन बालकों को भी आत्मतुष्टि का अनुभव होता है जो सांकेतिक चिह्नों द्वारा अपने भावों और विचारों को स्पष्ट करना चाहते हैं।

यह आकृतिक प्रणाली एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रीति से अपना कार्य पूरा करने का अवसर मिल सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता और शक्ति के अनुरूप क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर सकता है, क्योंकि उसके द्वारा निर्मित आकृतियाँ अपने रूप में अपने भावों को व्यक्त करनेवाली होंगी और उन्हें अशुद्ध नहीं कहा जा सकता। लिखने के कार्य की अपेक्षा आकृतिक प्रणाली कार्य के प्रति अधिक सम्मान की भावना उत्पन्न करती है, क्योंकि आकृतिक प्रणाली विविधता और विचार भिन्नता के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती है।

आकृतिक और लिखने की प्रणाली में अन्तर

बालक जब कक्षा में कार्य करते हैं तब अध्यापक को उसे जाँचना पड़ता है और ठीक करना पड़ता है। इस प्रकार के लिखित कार्यों की अन्य बालकों के कार्यों से तुलना नहीं की जा सकती। सम्पूर्ण लिखित कार्य को दृष्टि के सम्मुख नहीं रखा जा सकता और किसी सम्पूर्ण लिखित कार्य के साथ उसकी तुलना भी नहीं की जा सकती। परन्तु इसके विपरीत आकृतिक प्रणाली की भिन्न स्थिति होती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत जो आकृतियाँ बनायी जाती हैं उनकी दूसरी आकृतियों के साथ तुलना की जा सकती है। सम्पूर्ण आकृति को दृष्टि के सामने रखा जा सकता है और उनके संबंध में विचार विनिमय किये जा सकते हैं और सुझाव रखने के साथ ही उनकी आलोचना भी की जा सकती है।

आकृतिक प्रणाली में जब रंगों और चित्रों का उपयोग किया जाता है तब इसका और भी आकर्षक रूप सामने आता है। इनकी सहायता से

हमारी आकृतिक प्रणाली बहुत ही रुचिकर और सुखद हो जाती है। साधारणतया हमने यह अनुभव किया है कि जिन पुस्तकों में रंगीन चित्रादि रहते हैं उनकी ओर हम अधिक आकर्षित होते हैं। हमने यह भी अनुभव किया है कि अधिकतर वे पत्र अथवा पत्रिकाएँ अधिक लोक-प्रिय होती हैं जो सचित्र होती हैं। अतः हमें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इस आकृतिक प्रणाली का विकास करें और उसके स्तर को और भी अधिक उच्च करें।

आकृतिक प्रणाली लिखने के कार्य का स्थानापन्न नहीं

जब हम आकृतिक प्रणाली के पक्ष में अपनी दलीलें पेश करते हैं तब इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसे लिखने के कार्य के स्थान पर महत्व देना चाहते हैं। नहीं, हमारा सुझाव यह है कि हमारे अनुभवों के अंकन के समय आकृतिक प्रणाली का उपयोग भी एक साधन के रूप में होना चाहिये। इसकी सहायता से हमारे कार्य सरल हो जायेंगे। आकृतिक प्रणाली का उपयोग करनेवालों को सतर्क रहने की भी आवश्यकता है। आकृतिक प्रणाली के उपयोग के समय कुछ खतरे भी उत्पन्न हो सकते हैं। इन कठिनाइयों और दोषों पर भी हमें ध्यान रखना चाहिये। आकृतिक प्रणाली के प्रयोग से संभव है शिक्षा का रूप ही पल्लवग्राही हो जाय और उसमें कोई गंभीरता ही न रह जाय। दूसरी बात यह है कि आकृतिक प्रणाली के अधिक उपयोग से अति सरलता का दोष भी उत्पन्न हो सकता है। इन दोषों के अतिरिक्त सबसे बड़ा दोष तो यह है कि कहीं लोग इन चित्रों और आकृतियों के निर्माण में ही अधिक समय न व्यय करने लगें। हमें इन बातों पर नियंत्रण रखना होगा और यह प्रयत्न करना होगा कि आकृतिक प्रणाली की बुराइयों हमारी शिक्षा-प्रणाली में न घुसने पायें। पल्लवग्राहिणी तथा अति सरलता संबंधी कठिनाई को लिखित कार्य, परीक्षण संबंधी प्रश्न और मौखिक व्याख्या आदि की सहायता से दूर

किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हमें यह बात तो स्मरण रखना ही चाहिये कि आकृतियाँ हमें सारांश रूप प्रदान करती हैं और वे कभी हमारा लक्ष्य नहीं हो सकतीं। वे विषय को स्पष्ट करने के लिए साधन मात्र है, साध्य नहीं। आकृतिक प्रणाली एक ऐसी प्रणाली है जिसके उपयोग से महत्वपूर्ण बात कभी छूट नहीं सकती। जो बातें लिखित कार्यों द्वारा कभी स्पष्ट नहीं की जा सकतीं उन बातों को भी यह प्रणाली स्पष्ट कर देती है।

आकृतिक प्रणाली की प्रारम्भिक व्यवस्था

प्रारम्भ में जब शिक्षार्थी आकृतिक प्रणाली के संबंध में अभ्यास करते हैं तब उन्हें कठिनाइयाँ होती हैं। उनके चित्र भद्दे होते हैं तथा रंगों का उपयोग ठीक नहीं होता है। आकृति के निर्माण और रंगों के सद-उपयोग की शिक्षा प्राप्त करने में उन्हें थोड़ा समय लगाना पड़ता है। परन्तु जब वे अभ्यस्त हो जाते हैं तब अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा वे इस क्षेत्र में अधिक तीव्र गति के साथ प्रगति करते हैं। एक विद्यार्थी कुछ दिनों में अपनी सफलता की स्वतः कल्पना कर लेता है और उसके अनुमान अशुद्ध नहीं होते। यह आवश्यक है कि छात्रों को उपयुक्त आकृति निर्माण संबंधी नियमों और कला की शिक्षा दी जाय। हमें उन्हें यह भी बतलाना होगा कि आकृति प्रणाली द्वारा वे किन वस्तुओं की आकृतियाँ अथवा किन वस्तुओं के संबंध में सांकेतिक चिह्न बना सकते हैं।

आकृति निर्माण के साधारण नियम

एक अच्छी आकृति का सर्वप्रथम गुण आकर्षण होना चाहिये। हम जो भी चित्र बनायें यदि वे आकर्षक नहीं हैं और अपनी ओर हमें आकर्षित नहीं करते तो उनसे हमारा कोई लाभ नहीं होगा। आकर्षण के साथ ही उनमें यह गुण होना चाहिये कि उन्हें देखते ही देखनेवाला उसका सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने लगे। उसके संबंध में विस्तृत विवरण

जानने के लिए उत्सुक हो जाय । आकृति को सरल, सटीक तथा प्रसाद गुण सम्पन्न होना चाहिये । उनमें इतनी सरलता होनी चाहिये कि बिना किसी श्रम के हम जो बात जानना चाहते हैं वह स्पष्ट सामने आ जाय । उनमें इतनी सटीकता होनी चाहिये कि हम जो बात कहना चाहते हैं अथवा व्यक्त करना चाहते हैं वह ठीक-ठीक उसी रूप में सामने आये । आकृतियों में किसी प्रकार की जटिलता नहीं होनी चाहिये । आकृतियाँ जहाँ गोरखधन्धा हुईं तहाँ उनका उचित उपयोग न हो सकेगा ।

विद्यार्थी को कार्य करने के लिए, आकृति के निर्माण के लिए, निम्नलिखित साधन प्राप्त होंगे । इन माध्यमों द्वारा वह अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकेगा । (१) शब्द, (२) चित्र, (३) रेखाचित्र, (४) रंग, (५) पेन्सिल, (६) तूलिका, (७) कलम, (८) कैंची और (९) कागज ।

आकार के अनुरूप स्थान का उपयोग

आकृतियों को आकर्षक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें उपयुक्त आकार-प्रकार का बनाया जाय । प्रारंभ में जब विद्यार्थी आकृति निर्माण का कार्य करते हैं तब उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं हो पाता कि वे कितने बड़े कागज पर कितनी बड़ी आकृति बनायें । अतः विद्यार्थियों को कार्य प्रारंभ करने के पूर्व यह बात बतलानी चाहिये कि कितने बड़े कागज पर कितने बड़े शब्दों अथवा सांकेतिक चिन्हों का उपयोग होना चाहिये । नौ-सिखुए लोग चित्र बनाने के समय कागज के एक भाग में ही अपने सांकेतिक चिन्हों की भीड़ लगाने लगते हैं । वे बाईं ओर तो स्थान छोड़ते हैं परन्तु दाहिनी ओर स्थान छोड़ना भूल जाते हैं । उन्हें इस बात का भी ध्यान नहीं रहता कि वे एक समान अथवा एक आकार की वस्तुएँ समान रूप से बनायें । इसलिए शिक्षार्थी जब पहले काम प्रारम्भ करें और उनके लिए कागज पर हाशिया आदि छोड़ना आवश्यक हो तब उन्हें स्पष्ट रूप में यह बतला देना चाहिये कि वे हलकी पेंसिल से कागज के दायें और बायें एक हलकी रेखा खींचकर हाशिया बना लें ।

शिक्षार्थियों को यह भी बतलाना होगा कि अक्षरों को सरलता से पढ़ने की सुविधा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें स्पष्ट रूप से लिखा जाय तथा उनके बीच-बीच में पर्याप्त रूप से स्थान छोड़ा जाय। सब अक्षरों और सब शब्दों के बीच उपयुक्त रीति से स्थान छोड़ना चाहिये। सामाजिक अध्ययन के लिए इस प्रकार के लेखन कला की आवश्यकता होगी अतः यह अच्छा होगा कि कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व बालकों को उपयुक्त रीति के तथा कागज के अनुरूप अक्षरों के लिखने की शिक्षा प्रदान की जाय। यदि इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था न हो सके तो बालकों को साधारण रूप में बड़े-बड़े तथा स्पष्ट अक्षरों के लिखने की शिक्षा दी जाय। यद्यपि कुछ अवसरों पर चित्रों को एक पंक्ति में लगाना ठीक प्रतीत होता है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि चित्रों को सदा एक ही पंक्ति में लगाया जाय। जब चित्रों का हम प्रदर्शन करते हैं तब हमारा कुछ विशेष मन्तव्य होता है। कुछ विशेष बातें हम स्पष्ट करना चाहते हैं।

आकृतियों अथवा चित्रों के भाव को व्यक्त करने के लिए वाक्यों का उपयोग नहीं होना चाहिये। जहाँ तक संभव हो आकृतियों के नीचे एक अथवा दो शब्दों का ही उपयोग होना चाहिये। जहाँ व्याख्या के लिए अथवा भावाभिव्यक्ति के लिए अधिक वाक्यों की आवश्यकता होती है वहाँ आकृतियाँ अथवा चित्र बनाना बहुत उपयुक्त नहीं होता। जहाँ अनेक प्रकार की वस्तुओं अथवा भावों को एक साथ व्यक्त करने की बात हो वहाँ एक ही तरह के शब्दों का उपयोग होना चाहिये। यदि एक वस्तु के लिए हम संज्ञा का उपयोग करते हैं तो सब वस्तुओं के लिए संज्ञा का ही उपयोग होना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि हम इस बात के आंकड़े एकत्र करें कि लोग अपने समय का किस प्रकार उपयोग करते हैं तो हम कुछ इस प्रकार अपने भाव व्यक्त करेंगे :—खाना-पाना, सोना-जागना, कितना पढ़ना, खेलने-कूदने जाना, घूमने-फिरने जाना आदि। परन्तु जब हम आकृति के लिए इनका उपयोग करें तब

हमें जहाँ तक संभव हो एक शब्द का ही उपयोग करना चाहिये । उदाहरणार्थ खाना, पीना, सोना, जागना, पढ़ना, खेलना, घूमना आदि । इनके द्वारा क्रिया और वस्तु दोनों की अभिव्यक्ति हो जाती है । कभी-कभी भावों को व्यक्त करने के लिए हमें लम्बे-लम्बे अथवा अधिक जटिल शब्दों की आवश्यकता पड़ सकती है जैसे शासन-व्यवस्था-संचालक, अनुसंधानकर्ता, आदि । ऐसे शब्दों के भाव व्यक्त करने के लिए यदि उनके साथ कोई चित्र भी हो तो अर्थ स्पष्ट करने में कठिनाई न होगी । क्योंकि शब्दार्थ के साथ दृष्टि के लिए भी एक वस्तु सामने आती है । जब कोई चित्र अथवा हमारी दृष्टि पर प्रभाव डालने वाली कोई सामग्री सामने आती है तब उसकी सहायता से शब्दों का अर्थ स्मरण रखना बहुत कठिन नहीं होता ।

किसी वाक्य में किसी शब्द विशेष के महत्व को प्रकट करने के अनेक साधन हैं । कभी हम उस शब्द को बड़े टाइप में छपवा देते हैं । कभी उसी शब्द को रेखांकित कर देते हैं और कभी उसी शब्द को दूसरे रंग में छपवा देते हैं । इस प्रकार अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए हम अनेक प्रकार के साधनों का उपयोग करते हैं । पुराने समय में भी जब लोग हाथ से ही पुस्तकें लिख-लिखकर रखते थे तब महत्वपूर्ण शब्दों अथवा अंशों को लाल रंग अथवा किसी रंग विशेष से रंग दिया करते थे ।

सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग

जब हम कोई मानचित्र बनाते हैं तब अपने भावों को व्यक्त करने के लिए अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्नों का उपयोग करते हैं । इन सांकेतिक चिह्नों द्वारा भावों को व्यक्त करना सरल होता है । उदाहरण के लिए जब कभी हम किसी देश का मानचित्र बनाते हैं तब वहाँ की गेहूँ की पैदावार के लिए कभी एक त्रिकोण बना देते हैं, कभी एक तारे द्वारा गेहूँ की उपज व्यक्त करने का यत्न करते हैं । इसी प्रकार की

रेखाओं की सहायता से, सीधी रेखाओं के उपयोग से हम मनुष्य की आकृति बना देते हैं और उसके हाथ में हल देकर यह भाव व्यक्त करना चाहते हैं कि वह मनुष्य खेती करता है। अपनी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के भाव को व्यक्त करने के लिए प्रतीक के रूप में हम अनेक प्रकार के रंग और त्रिकोण, वृत्त, आदि का उपयोग करते हैं। जहाँ तक संभव हो सांकेतिक चिह्नों को स्पष्ट और सरल होना चाहिये। अनुमान कीजिए कि हम एक ऐसा मानचित्र बनाना चाहते हैं जिसमें यह दिखलाना चाहते हैं कि २० विद्यार्थी पढ़ने गये, १५ दुकानों में काम करने गये। १० खेतों में काम करने गये और ५ अपने माता-पिता की सहायता के लिए घर पर ही रह गये। इन बातों को हम संकेतों द्वारा इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। जैसे :—

□ □ □ □ □ □ □ □ □ □	□ पढ़ना
□ □ □ □ □ □ □ □ □ □	△ दुकान में
△ △ △ △ △ △ △ △	* खेत में
△ △ △ △ △ △ △	○ घर में
* * * * *	
○ ○ ○ ○ ○	

जहाँ संख्याएँ अधिक हों अथवा जहाँ अनुपात के रूप में संख्याओं को प्रकट करना कठिन हो वहाँ सांकेतिक चिह्नों के नीचे संख्या भी लिख देना हानिकर न होगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि सांकेतिक चिह्नों का कोई मूल्य नहीं। सांकेतिक चिह्नों का स्पष्ट तथा तात्कालिक प्रभाव पड़ता है।

आकृति निर्माण में ज्यामिति का प्रयोग

प्राचीन समय में वैदिक काल में भी सुन्दर आकृतियों के निर्माण के

लिए ज्यामिति कला का उपयोग होता था। यज्ञ की वेदी और यज्ञ स्थल को सुसज्जित करने के लिए ज्यामिति कला से बड़ी सहायता ली जाती थी। सामाजिक अध्ययन के लिए कार्य करने वाले विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह ज्यामिति के विभिन्न आकारों को खींचने, बनाने की क्षमता प्राप्त कर लें। जब कभी हम कोई मानचित्र बनाते हैं तब हमें विभिन्न प्रकार के आकार बनाने पड़ते हैं अतः यह आवश्यक है कि बालकों को कोण, त्रिकोण, वृत्त, अर्द्धवृत्त, षट्कोण तथा अन्य प्रकार के साधारण आकार खींचने का ज्ञान होना चाहिये। इनका ज्ञान होने से वह समय-समय पर अपनी बातों को बड़ी सरलता से व्यक्त कर सकेगा। कभी-कभी हम अपनी बातों को व्यक्त करने के लिए तीरों का भी उपयोग करते हैं। इन तीरों का आकार स्पष्ट और सुन्दर होना चाहिये।

वर्णों का उपयोग

आकृतियों और चित्रों आदि के निर्माण में वर्णों का भी उपयोग किया जाता है। लेकिन सामाजिक अध्ययन के विद्यार्थी को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसे आकृतियों को सुन्दर और आकर्षक बनाने मात्र के लिए ही वर्णों का उपयोग नहीं करना चाहिये। भावों को स्पष्ट करने, भावों को वर्णों में विभाजित करने तथा भावों अथवा विचारों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए वर्णों का उपयोग होना चाहिये। शिद्दालय में वर्णों के प्रयोग के लिए अनेक साधन प्राप्त होते हैं, विद्यार्थी पेन्सिल, रंग-विरंगी खड़िया, रंग-विरंगे कागजों आदि का उपयोग कर सकते हैं।

अधिकतर बच्चे उसी नकशे अथवा मानचित्रों को रुचिकर समझते हैं जो पूर्ण रूप से चित्रित होते हैं। छोटी कक्षा के विद्यार्थी चित्र बनाने में असमर्थ होते हैं। वे खेल-कूद में भी अपनी कल्पनाओं के चित्र बनाते रहते हैं लेकिन इन काल्पनिक चित्रों का उपयोग मानचित्रों अथवा

भावों के स्पष्ट करने के लिए बनायी गयी आकृतियों के लिए नहीं किया जा सकता। मानचित्रों के लिए सटीकता की आवश्यकता होती है। वहाँ कल्पना के लिए बहुत कम स्थान होता है। ऐसे मानचित्रों के निर्माण के अवसर पर हमें अपनी वस्तुओं की यथातथ्य आकृति बनाने की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह आवश्यक है कि प्रारंभ में छोटी-छोटी कक्षाओं में बालकों को दूसरों द्वारा बनाये गये चित्रों की नकल करने, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निकलने वाले चित्रों आदि को काटकर अपनी कापियों में चिपकाने आदि का काम सिखाना चाहिये। क्रमशः वे स्वतः आकृतियाँ बनाने लगेंगे। इस प्रकार क्रमशः प्रगति करते हुए वे आवश्यक चित्रों और मानचित्रों का निर्माण करने लगेंगे।

आकृतियों के प्रकार

आकृतियों के भी अनेक प्रकार होते हैं। सुविधा के लिए, आकृतियों को हम निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

१—आँकड़े व्यक्त करनेवाली आकृतियाँ—इन आकृतियों का निर्माण कई प्रकार से हो सकता है। किसी देश का उत्पादन, किसी देश की जनसंख्या, किसी देश की आर्थिक स्थिति, आदि स्पष्ट करने के लिए इस प्रकार की आकृतियों का निर्माण किया जाता है। आँकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक ही सांकेतिक रूप को हम विभिन्न आकार में सामने रख सकते हैं।

२—स्पष्टीकरण और वर्गीकरण व्यक्त करनेवाली आकृतियाँ—अनेक प्रकार की वस्तुओं की सूची तथा विभिन्न वर्गों और प्रकारों की तालिका को स्मरण रखने के लिए अथवा भावनान्त्रों के स्पष्टीकरण के लिए इन आकृतियों का उपयोग होता है। केन्द्र के वृत्त में प्रधान विषय का उल्लेख होता है और उसी केन्द्र से रेखाएँ निकल-निकलकर विभिन्न प्रकार के प्रयोगों, भावों और उपयोगों को व्यक्त करती हैं।

३—वैज्ञानिक आकृतियाँ—इस आकृति के अन्तर्गत अधिकतर वे

मानचित्र हैं जो विज्ञान की बातों को स्पष्ट करने के लिए अथवा किसी यंत्र के चलने, चलाने की क्रिया को व्यक्त करने के लिए निर्मित किये जाते हैं ।

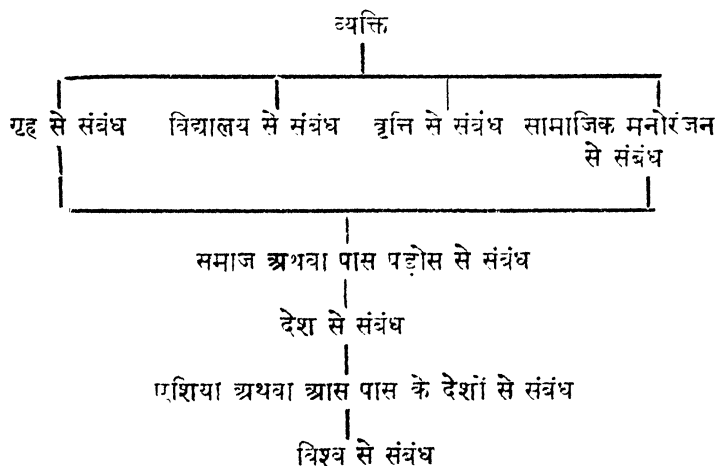
४—प्रगतिशील स्थिति को व्यक्त करनेवाली आकृतियाँ—किसी वस्तु के निर्माण की क्रमशः कैसे प्रगति हुई, इस बात को व्यक्त करने के लिए इस प्रकार के मानचित्रों का उपयोग होता है । उदाहरण के लिए यदि हमें मोटर के निर्माण का क्रमिक विकास दिखलाना होगा तो हम इसी आकृतिक प्रणाली का उपयोग करेंगे । विभिन्न मानचित्रों द्वारा यह स्पष्ट करेंगे कि प्रारम्भ में मोटर का क्या रूप था और क्रमशः वह किस प्रकार वर्तमान रूप में विकसित हो गयी ।

५—समस्याएँ व्यक्त करनेवाली आकृतियाँ—इस प्रकार की आकृतियाँ समाज की किसी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्या के रूप को व्यक्त करने के लिए बनायी जाती हैं । आजकल समाचार पत्रों में जो कार्टून अथवा व्यंग चित्र निकलते हैं वे इसी आकृतिक प्रणाली के अन्तर्गत आयेंगे । ये व्यंग्य चित्र समस्याओं के संबंध में अधिक सूचनाएँ प्रदान करते हैं और उनके समाधान के लिए संभावित प्रयत्नों का भी संकेत करते हैं । इस प्रकार हम आकृतियों का विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग कर सकते हैं । आज के युग में शिक्षा-प्रणाली को प्रभावकर बनाने का यह एक महत्वपूर्ण साधन है । सामाजिक अध्ययन का कार्य और उसकी सफलता बहुत कुछ आकृतिक प्रणाली पर निर्भर करती है ।

ग्यारहवाँ अध्याय

सामाजिक अध्ययन की विस्तृत योजनाएँ

प्रारंभिक योजना के अन्तर्गत सामाजिक अध्ययन के कुछ मुख्य विषयों की ओर संकेत किया गया है। इस अध्याय में हम सामाजिक अध्ययन की विस्तृत योजना के संबंध में विचार करेंगे। सामाजिक अध्ययन का प्राथमिक सोपान व्यक्ति है। इस व्यक्ति के विकास के साथ ही उसके वातावरण और उसकी सीमा तथा क्षेत्र का विस्तार होता है। व्यक्ति का क्रमशः किस प्रकार विकास होता है इसको निम्नलिखित रूप में हम समझ सकते हैं :—



व्यक्ति अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपने विश्व का 'मंथन' करता है। जीवन रक्षा और जीवन को सुचारु रूप से चलाने

के लिए दुनिया की खाक छानता है। अपनी सहायता के लिए, अपने जीवन को सुगम बनाने के लिए वह प्राकृतिक साधनों का उपयोग करता है तथा उस पर विजय प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास करता रहता है। विश्व का यह नियम है कि बलवान ही जीवित रह सकता है। अतः मनुष्य अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपने वातावरण, अपनी स्थिति तथा अपने आस-पास के जीवों से संघर्ष करता है। इसे वह जीवन संघर्ष कहता है। जीवन संघर्ष के साथ ही वह अपने भाग्य का स्वतः निर्माण करता है। इस प्रकार हम मनुष्य के जीवन को चार सत्रों में विभाजित कर सकते हैं, १—जीवन के लिए विश्व का मंथन, २—जीवन के लिए प्राकृतिक साधनों का उपयोग, ३—जीवन के लिए संघर्ष, ४—जीवन के लिए अपने भाग्य का निर्णय।

अपनी योजना को सरल रूप प्रदान करने के लिए हम अपनी जिज्ञासाओं को प्रश्न के रूप में सामने रखेंगे और उसके उत्तर प्राप्ति का प्रयत्न ही हमारे सामाजिक अध्ययन को आगे बढ़ायेगा। जहाँ तक संभव हो ऐसी वस्तुओं का संग्रह होना चाहिये जो आकर्षक हों तथा जिनका संबंध हमारी दृष्टि के सम्मुख स्पष्ट होता रहे।

सचित्र पुस्तकों की आवश्यकता

सामाजिक अध्ययन के कार्य संचालन के लिए यह आवश्यक है कि हमारे पास सचित्र पुस्तकें हों, सचित्र, सुन्दर और रंग-विरंगी आकृतियों के चित्र हों। इस प्रकार की पुस्तकों और आकृतियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। उनको देखने मात्र से ही बालक सहसा उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। प्रश्न यह उठेगा कि इन पुस्तकों को कहाँ से लाया जाय? हमारी मातृभाषा में इस प्रकार की पुस्तकों का नितान्त अभाव है। इसका उत्तर हम यह देंगे कि अब धीरे-धीरे हमारी मातृभाषा में भी मनोवैज्ञानिक पुस्तकों का निर्माण प्रारंभ हो गया है और योग्य अध्यापक का यह काम होगा कि अपनी कक्षा में वह हस्तलिखित पुस्तकों

और चित्र-संग्रहों का निर्माण कराये। प्रारंभ में अवश्य यह कार्य बड़ा कठिन प्रतीत होगा परन्तु धीरे-धीरे जब हम इस क्षेत्र में कार्य करने लगेंगे और वस्तुएँ निर्मित करने लगेंगे तब कुछ दिनों के बाद हमारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी।

सरकार की आर्थिक अवस्था सुदृढ़ होने पर हम सरकार से भी इस क्षेत्र में सहायता ले सकते हैं। ऐसे प्रकाशक जो शिक्षा क्षेत्र संबंधी पुस्तकें प्रकाशित करते हैं उन्हें ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन में सहायता दी जानी चाहिये। यदि पुस्तकों की खपत का आश्वासन प्रकाशकों को प्राप्त हो जाय तो वे इस क्षेत्र में अपना धन व्यय कर सकेंगे। यह अध्यापक का कर्तव्य होगा कि विभिन्न क्षेत्रों और सत्रों के प्रश्नों के उत्तर की वह व्यवस्था करे। उसे उपयोग की सामग्री प्रदान करनी होगी। इसके बाद सब काम विद्यार्थियों पर छोड़ दिया जाना चाहिये। अध्यापक को चाहिये कि वह उन पुस्तकों का तथा उन अंशों का विद्यार्थी को निर्देश करें जिन्हें उसे पढ़ना है। यदि इस प्रकार का वह निर्देश नहीं करेगा तो बालक अपने समय का दुरुपयोग करेंगे और अपने लिए आवश्यक सामग्री का पता लगाने में ही उनका अत्यधिक समय नष्ट होगा।

हम जिन प्रकरणों का वर्णन करने जा रहे हैं उनका हम अनेक बार अध्ययन कर सकते हैं। जब हम सामाजिक प्रगति के अनुसार उन प्रकरणों का पुनः अध्ययन करेंगे तब क्रमशः उनकी सीमाओं का भी विस्तार होता जायगा। एक प्रकरण के साथ अनेक शाखाएँ होती हैं। आवश्यकतानुसार उन शाखाओं का भी अध्ययन किया जा सकता है। इन कार्यों में हमें पुस्तकों, वाद-विवाद, विचार-विनिमय, पर्यटन आदि से सहायता मिल सकती है। चल-चित्रों की सहायता से हमारा कार्य और भी अधिक सरल हो सकता है। जो भी राष्ट्र अपने समाज का उत्थान चाहता है उसे इस प्रकार की समाजोपयोगी चित्रों का निर्माण करना होगा। सामाजिक अध्ययन के कार्य के लिए हम जो कुछ

उदाहरण अथवा नमूने सामने रख रहे हैं उनको पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के साधन हैं। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बालक समाज के बीच पर्यटन कर और लोगों से सम्पर्क स्थापित कर आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। प्रकृति के निरीक्षण, समाज और विभिन्न ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थानों के अध्ययन से हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ दूर होंगी। जब शिक्षक, बालकों को प्रश्नावली के उत्तरों का पता लगाने के लिए कार्य सौंपें तब उन्हें यह अवश्य निर्देश करना होगा कि किन पुस्तकों, किन चल-चित्रों और साहित्य के किन अंशों द्वारा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

सामाजिक कार्यों के कुछ उदाहरण

व्यक्ति द्वारा अपना अध्ययन

- १—किन तत्वों से हमारा निर्माण हुआ ?
- २—हमारा शरीर कैसे बढ़ता है ?
- ३—हमारी इन्द्रियाँ कितनी हैं ?
- ४—इन्द्रियों के भेद क्या हैं ?
- ५—बच्चे अपने अभिभावकों के प्रतिरूप क्यों होते हैं ?
- ६—हम घर के वातावरण से कैसे परिचित होते हैं ?
- ७—हमारा बाह्यजगत से कैसे सम्पर्क बढ़ता है ?
- ८—मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ?
- ९—मनुष्य और यंत्रों में क्या भिन्नता है ?
- १०—हम जीवन का आनन्द कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?
- ११—मनुष्य सब जीवों में सर्वोत्तम क्यों समझा जाता है ?

व्यक्ति द्वारा क्रिया शक्ति का विकास

- १—शिशु इतना अनजान और असहाय क्यों होता है ?

२—शिशु किस प्रकार अपनी आस-पास की वस्तुओं का उपयोग सीखता है ?

३—शिशु पहले किन कौशलों अथवा कार्यों की शिक्षा प्राप्त करता है ?

४—मनुष्य को किन कौशलों की जीवन में आवश्यकता होती है ?

५—मनुष्य किन कौशलों और कार्यों को सीख सकता है ?

६—क्या एक साधारण व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त कौशलों और कार्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है ?

७—मनुष्य की क्षमता का क्या महत्व और उपयोग है ?

८—मनुष्य अपनी प्रतिभा से क्या लाभ उठाता है ?

९—मनुष्य की शारीरिक और बौद्धिक शक्ति का क्या महत्व है ?

व्यक्ति का जीवन संघर्ष

१—जीवन यापन के लिए किन वस्तुओं की आवश्यकता है ?

२—क्या स्थान, काल और वातावरण के अनुसार मनुष्य की आवश्यकताओं में अन्तर होता है ?

३—मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में क्या समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं ?

४—क्या ये कठिनाई सदा से वर्तमान है ?

५—क्या स्वतंत्र रूप से हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं ?

६—रोगों के क्या कारण हैं और उनसे कैसे दूर रहा जा सकता है ?

७—वे कौन से साधन हैं जो हमें स्वस्थ रहने में सहायता प्रदान करते हैं ?

८—हमारे जीवन में औषधियों का क्या महत्व है ?

९—जीवन संघर्ष में दुर्बल की क्या स्थिति होती है ?

१०—जीवन संघर्ष में बलवान ही क्यों विजयी होता है ?

व्यक्ति द्वारा चरित्र निर्माण का यत्न

- १—मनुष्य की साधारण समान मनोभावनाएँ क्या हैं ?
- २—मनुष्य को उचित अनुचित आदि का कैसे बोध होता है ?
- ३—आत्मा का क्या महत्व है ?
- ४—आत्मा के विकास के क्या साधन हैं ?
- ५—मनुष्य के वे कौन से गुण हैं जिनकी सहायता से वह अपने भाई तथा अपने साथियों के साथ प्रेम पूर्वक रह सकता है ?
- ६—मनुष्य के कौन से सर्व मान्य गुण हैं ?
- ७—मनुष्य के कौन से सर्व निन्दित दुर्गुण हैं ?
- ८—सदाचार और सद्गुणों का क्या अर्थ है ?
- ९—मनुष्य के जीवन में ये किस प्रकार सहायक होते हैं ?
- १०—मनुष्य के जीवन में आदर्शों का क्या मूल्य है ?
- ११—आदर्शों का निर्णय किस प्रकार किया जाय ?
- १२—आत्म संयम से क्या लाभ होता है ?
- १३—किन आदर्शों और ध्येयों को स्वीकार कर लेने के बाद हम समाज में अपने साथियों के साथ सुखपूर्वक रह सकते हैं और उनके जीवन में भी हमारे जीवन का उपयोग हो सकता है ?

व्यक्ति का पारिवारिक जीवन

- १—पारिवारिक जीवन का क्या अर्थ है ?
 - २—क्या मनुष्यों के अतिरिक्त और किसी का भी पारिवारिक जीवन हो सकता है ?
 - ३—क्या जड़, चेतन और पशु आदि में भी पारिवारिक समानता की कोई बातें पायी जाती हैं ?
 - ४—मनुष्य का कैसे विकास हुआ ?
 - ५—उसने पारिवारिक जीवन की भावना का कैसे विकास किया ?
 - ६—पशुओं का अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार होता है ?
- १२

७—मनुष्य का अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार होता है ?

८—मनुष्य और पशुओं के व्यवहार में क्या अन्तर है ?

परिवार के लिए सुरक्षा की आवश्यकता

१—परिवार को सुरक्षा की क्यों आवश्यकता होती है ?

२—परिवार के लिए गृह की क्यों आवश्यकता होती है ?

३—परिवार के लिए कितने स्थान की आवश्यकता होती है ?

४—मनुष्य के गृह की क्या आवश्यकताएँ हैं ?

५—पुराने समय में किस प्रकार गृह-निर्माण हुआ करता था ?

६—कच्चे और पक्के मकानों में क्या सुविधाएँ और असुविधाएँ होती हैं ?

७—मनुष्य पर जलवायु का क्या प्रभाव पड़ता है ?

८—जलवायु से बचने में गृह किस प्रकार सहायक होता है ?

९—विभिन्न देशों के मकानों में अन्तर का क्या कारण है ?

१०—सुखद गृह के लिए किन साधनों की आवश्यकता है ?

११—क्या गृह के लिए उद्यानों की आवश्यकता होती है ?

१२—उद्यानों से क्या लाभ होते हैं ?

१३—पुराने और नये ढंग के मकानों में क्या अन्तर है ?

परिवार का भरण-पोषण

१—पारिवारिक जीवन से क्या लाभ है ?

२—संयुक्त परिवार के क्या लाभ-हानि हैं ?

३—एक परिवार की क्या सीमा है ?

४—भूतकाल और वर्तमानकाल के पारिवारिक जीवन में क्या अन्तर है ?

५—आज के परिवार में संघटन विहीनता के क्या कारण हैं ?

६—क्या पारिवारिक जीवन मनुष्य की सब आवश्यकताओं को हर अवस्था में पूरा कर सकता है ?

७—पारिवारिक जीवन में समाज का किस रूप में सहयोग प्राप्त होता है ?

८—समाज परिवार को क्या सहायताएँ प्रदान कर सकता है ?

९—भूतकाल में एक व्यक्ति परिवार पर क्यों अधिक आश्रित रहा करता था ?

१०—क्या आज का व्यक्ति भूतकाल की अपेक्षा वर्तमानकाल में पारिवारिक जीवन पर कम आश्रित है ?

११—एक साधारण परिवार का क्या व्यय है ? •

१२—पारिवारिक जीवन को संघटित और उपयोगी बनाये रखने के लिए क्या करना चाहिये ?

परिवार का सामाजिक रूप

१—वे कौन से तत्व हैं जिनके द्वारा परिवार के व्यक्ति संघटित रूप में रहते हैं ?

२—माता-पिता में कौन से गुण होने चाहिये जिनके कारण पारिवारिक जीवन सुखी हो ?

३—बच्चों में कौन से गुण होने चाहिये जिनकी सहायता से वे परिवार में सुख से रह सकें ।

४—परिवार में किस प्रकार कर्तव्यों का बँटवारा किया जाय ?

५—परिवार में किस प्रकार जीवन-यापन किया जाय कि किसी के अधिकारों का अपहरण न हो ?

६—बड़े परिवार का सदस्य होने में क्या सुविधाएँ और असुविधाएँ होती हैं ?

७—छोटे परिवार के सदस्य होने में क्या सुविधाएँ और असुविधाएँ होती हैं ?

८—परिवार में बालकों पर नियन्त्रण रखना उचित है या नहीं ?

९—बच्चों पर नियन्त्रण रखने के क्या साधन हैं ?

१०—क्या बच्चों को मारना-पीटना ठीक है ?

पास-पड़ोस की भावना का विकास

१—मनुष्य क्यों साथ रहना चाहता है ?

२—साथ रहने की भावना का क्रमशः कैसे विकास हुआ ?

३—पास पड़ोस के स्थानों का कैसे अध्ययन किया जाय ?

४—पास पड़ोस की भूमि, जलवायु और वातावरण का कैसे अध्ययन किया जाय ?

५—हमारे पास-पड़ोस में किस प्रकार का प्राकृतिक वातावरण है ?

६—हमारे पास-पड़ोस में किस प्रकार की खेती-बारी हो सकती है ?

७—हमारे पास-पड़ोस में किस प्रकार के व्यापार होते हैं ?

८—लोगों की जीविका के क्या साधन हैं ?

९—पास-पड़ोस में यातायात के क्या साधन हैं ?

मनुष्य द्वारा पड़ोस की व्यवस्था

१—हमारे पड़ोस की क्या स्थिति है ?

२—नगर में हमारे पड़ोस का क्या स्थान है ?

३—मुहल्ले का नगर के अन्य क्षेत्रों से क्या संबंध है ?

४—पड़ोस में सड़कों की क्या स्थिति है ?

५—मुहल्ले में यातायात के क्या साधन हैं ?

६—मुहल्ले का ऐतिहासिक महत्व क्या है ?

७—मुहल्ले में किस प्रकार के निवास की व्यवस्था है ?

८—क्या मुहल्ले की निवास व्यवस्था उपयुक्त रूप से संघटित गयी है ?

६—मुहल्ले से शिक्षालय, सरकारी कार्यालय, और कल-कारखाने कितनी दूर हैं ?

१०—क्या हमारे पड़ोस का पुनर्निर्माण हो सकता है ?

११—पुनर्निर्माण के समय क्या परिवर्तनों की आवश्यकता होगी ?

मुहल्ले के जीवन का अध्ययन

१—हमारे मुहल्ले में कितने लोग रहते हैं ?

२—क्या मुहल्ले की जन-संख्या घनी है ?

३—यदि आबादी घनी है तो इसका क्या कारण है ?

४—क्या मुहल्ले की जन-संख्या कम है ?

५—यदि कम है तो क्या कारण है ?

६—मुहल्ले के लोगों की जीविका का क्या प्रबन्ध है ?

७—शिक्षा समाप्त करने के बाद बालकों को जीविका के क्या साधन प्राप्त हैं ?

८—क्या मुहल्ले में विभिन्न प्रकार की वृत्ति की शिक्षा के लिए कोई उचित व्यवस्था है ?

९—क्या आवश्यकता की सभी वस्तुएँ हमें मुहल्ले में प्राप्त हो जाती हैं ?

१०—उपयोग की कितनी वस्तुएँ बाहर से मँगायी जाती हैं ?

११—मुहल्ले में लोगों के स्वास्थ्य की क्या व्यवस्था है ?

१२—क्या मुहल्ले का वातावरण स्वास्थ्यप्रद है ?

१३—यदि मुहल्ले का वातावरण अस्वास्थ्यकर है तो उसे उपयुक्त बनाने के क्या साधन हैं ?

१४—मुहल्ले में प्रति वर्ष जन्म और मरण की क्या संख्या है ?

१५—यदि अधिक मृत्यु होती है तो मृत्यु का क्या कारण है ?

१६—शिक्षालय, चिकित्सालय, सड़क आदि का कौन प्रबन्धक है ? इनके आय-व्यय की क्या व्यवस्था है ?

पड़ोसियों का सामाजिक जीवन

- १—मुहल्ले की समस्याओं का किस प्रकार समाधान किया जाता है ?
- २—कठिनाइयाँ उत्पन्न होने पर उन्हें कौन दूर करता है ?
- ३—मुहल्ले की बातों के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति अपने सुझाव किस प्रकार दे सकता है ?
- ४—मुहल्ले की कार्य-प्रणाली में एक व्यक्ति का क्या स्थान है ?
- ५—नगरपालिका अथवा अन्य जनोपयोगी संस्थाओं के लिए प्रतिनिधियों का किस प्रकार चुनाव होता है ?
- ६—वे कौन-सी महत्वपूर्ण बातें हैं जिनके संबंध में हमारी नगरपालिका व्यवस्था नहीं करती ?
- ७—मुहल्ले के लोग अपने अवकाश के समय का किस रूप में उपयोग करते हैं ?
- ८—मुहल्ले के लोगों की धार्मिक भावना क्या है ?
- ९—धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए कौन से साधन प्राप्त हैं ?
- १०—उन साधनों का किस रूप में उपयोग होता है ?
- ११—हमारी मातृभाषा क्या है ? हमारी घर की बोली क्या है ? हमारी राष्ट्रभाषा क्या है ?
- १२—क्या मुहल्ले में कोई ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक महत्व की वस्तुएँ हैं ?
- १३—क्या मुहल्ले में किसी मेले, पर्व-विशेष अथवा उत्सव का आयोजन होता है ?
- १४—क्या मुहल्ले में कोई महापुरुष हुआ है ? उस महापुरुष का देश में क्या स्थान है ?
- १५—मुहल्ले के जीवन को उन्नत बनाने के लिए क्या आपके कोई सुझाव हैं ?

राष्ट्र और राष्ट्रीय जीवन

- १—हमारे राष्ट्र का नाम क्या है ? इस नाम की क्या ऐतिहासिकता है ?
- २—हमारे राष्ट्र का प्राचीन इतिहास क्या है ?
- ३—राष्ट्र की प्राचीनता के संबंध में क्या बातें ज्ञात हैं ?
- ४—दूसरे देशों की तुलना में हमारे राष्ट्र की क्या सीमाएँ हैं ?
- ५—हमारे राष्ट्र के रूप का कैसे संघटन हुआ ?
- ६—वर्तमान समय में संघटन में क्या कुछ परिवर्तन हुए ?
- ७—इन परिवर्तनों के क्या कारण हैं ?
- ८—हमारे देश की जलवायु कैसी है ? उसका हमारे जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है ?
- ९—क्या अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश का जलवायु अधिक अच्छा है ?
- १०—हमारे राष्ट्र के लोग अधिक परिश्रमी क्यों नहीं हैं ?
- ११—हमारे देश में कितने प्रकार की फसलें होती हैं ?
- १२—हमारे देश में खानों की क्या स्थिति है ?
- १३—किन धातुओं की खानें हमारे देश में पायी जाती हैं ?
- १४—हमारे देश के प्रसिद्ध जीव-जन्तु क्या हैं ?
- १५—क्या इस देश के रहनेवाले सभी लोग एक ही जाति अथवा वर्ण के हैं ?
- १६—जाति और वर्ण भेद के कारण क्या समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं ?
- १७—इन समस्याओं का हमारे देश पर क्या प्रभाव पड़ा है ?
- १८—जाति और वर्ण भिन्नता के क्या कारण हैं ?
- १९—हमारे स्थान से समुद्र कितनी दूर है ?
- २०—समुद्र से हमारे देश को क्या लाभ है ?
- २१—हमारे देश की मुख्य भाषाएँ क्या हैं ?
- २२—भाषा की भिन्नता के क्या कारण हैं ?

२३—इन भाषाओं की क्या एक ही भाषा से उत्पत्ति हुई है ?

२४—एक देश में भिन्न भाषाओं और भिन्न संस्कृतियों के विकास का क्या कारण है ?

राष्ट्र का प्राकृतिक साधनों से संबंध

१—हमारे राष्ट्र में प्राकृतिक साधनों का कितना उपयोग किया जाता है ?

२—इन प्राकृतिक साधनों के उपयोग के कारण हमारे देश में क्या परिवर्तन उत्पन्न हुए हैं ?

३—क्या हमारे देश में लोहे और कोयले की खानें हैं ?

४—क्या हमारे देश में बहुमूल्य धातुओं की भी खानें हैं ?

५—खानों का क्या रूप होता है ?

६—हमारे देश में विद्युत उत्पन्न करने के क्या साधन प्राप्त हैं ?

७—इन साधनों का क्या उचित उपयोग हो रहा है ?

८—यदि उचित उपयोग नहीं हो रहा है तो उसकी किस प्रकार व्यवस्था की जा सकती है ?

९—देश के किसानों का कैसा जीवन है ?

१०—उनके जीवन स्तर को उठाने की क्या व्यवस्था की जा सकती है ?

११—हमारे देश में जीविकोपार्जन के कौन-कौन से मुख्य साधन हैं ?

१२—देश के व्यापार की स्थिति कैसी है ?

१३—हमारे देश में यंत्रों का उपयोग होता है या नहीं ?

१४—यंत्र निर्माण की क्या व्यवस्था है ?

१५—यातायात के क्या साधन हैं ? इन साधनों में उन्नति की क्या संभावनाएँ हैं ?

१६—हमारा देश भोजन और वस्त्र के संबंध में कितना पराश्रित है ?

१७—इस पराधीनता का क्या कारण है ?

१८—इस कठिनाई से हम कैसे मुक्ति पा सकते हैं ?

१६—हमारा देश किन वस्तुओं का निर्यात और किन वस्तुओं का आयात करता है ?

२०—क्या बाहर से मँगानेवाली वस्तुओं का हम उत्पादन नहीं कर सकते ?

२१—हमारा देश किस प्रकार पुनः धन-धान्य पूरित हो सकता है ?

राष्ट्र-निधि-जनता की व्यवस्था

१—हमारे देश में जीविकोपार्जन के कौन से साधन प्राप्त हैं ?

२—क्या हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन के साधन प्राप्त हैं ?

३—क्या बेकारों की समस्या भी हमारे देश में है ?

४—क्या कार्य की स्थिति और समय निर्धारण निश्चय करने का अधिकार हमें प्राप्त है ?

५—क्या अस्वास्थ्यकर और कार्य की अप्रगतिशील, विधियों में अन्तर उत्पन्न किया जा सकता है ?

६—कल-कारखानों में मनुष्यों के पशुवत् जीवन को कैसे सुखी बनाया जाय ?

७—क्या देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए भोजन, वस्त्र और निवास की उपयुक्त व्यवस्था है ?

८—क्या यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति इतना अर्जित कर लेता है कि वह अपने भोजन, वस्त्र और निवास की व्यवस्था कर सके ?

९—यदि वह इनकी व्यवस्था नहीं कर पाता तो इसका क्या कारण है और उन कारणों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है ?

१०—कल, कारखानों और औद्योगिक केन्द्रों के विकास का क्या कारण है ?

११—इनके विकास से हमें क्या लाभ और हानि हुई है ?

१२—राष्ट्र के जीवन में धन संचय का क्या महत्व है ?

- १३—धन संचय का क्या उपयुक्त साधन है ?
 १४—संचित धन का किस प्रकार उपयोग किया जाय ?
 १५—क्या लोगों को अधिक धन प्राप्त हो जाने से जीवन की सब सुविधाएँ प्राप्त हो जायँगी ?
 १६—किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति कैसे सुदृढ़ की जा सकती है ?
 १७—राष्ट्र का धन कैसे बढ़ाया जा सकता है ?
 १८—क्या भारत में भूतकाल की अपेक्षा वर्तमानकाल में अधिक धनी लोग हैं ?
 १९—राष्ट्र की जनता का स्वास्थ्य कैसा है ? साधारण बीमारियों की क्या स्थिति है ? उनके दूर करने के क्या उपाय हैं ?
 २०—स्वस्थ जीवन के विकास के लिए किन साधनों का उपयोग हो रहा है ?
 २१—देश के वृद्ध, अपाहिज और शरीर से लाचार लोगों के जीवन-यापन की क्या व्यवस्था है ?
 २२—राष्ट्र के औद्योगिक विकास की क्या संभावनाएँ हैं ?

राष्ट्र की परम्परा और संस्कृति

- १—हमारे देश की कौन-कौन सी मुख्य परम्पराएँ हैं ?
 २—हमारे देश की संस्कृति का किन स्थितियों में विकास हुआ है ?
 ३—हमारे देश के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक नियमों का जन्म किस प्रकार हुआ ?
 ४—इन नियमों का निर्माण करनेवाले आचार्य और महापुरुष कौन थे ?
 ५—वर्तमान समय में नियमों के निर्माण का क्या रूप है ?
 ६—क्या हम प्राचीन परम्पराओं में परिवर्तन कर सकते हैं ?
 ७—इन परम्पराओं के परिवर्तन का लोकप्रिय प्रकार क्या है ?
 ८—हमारे देश की शासन-व्यवस्था कैसी है ?

- ९—देश के शासकों का निर्णय कौन करता है ?
- १०—इन शासकों का निर्वाचन अथवा मनोनयन कैसे होता है ?
- ११—किसी लोकतंत्र देश की क्या विशेषताएँ हैं ?
- १२—लोकतंत्रीय व्यवस्था का कौन सा रूप हमारे देश के लिए उपयोगी होगा ?
- १३—क्या हमारा देश लोकतंत्र शासन व्यवस्था के लिए उपयुक्त है ?
- १४—हमारा देश किस सीमा तक लोकतंत्रवादी है ?
- १५—हमारा देश अपने संबंध में निर्णय करने के लिए कहाँ तक स्वतंत्र है ?
- १६—वे कौन से लोग हैं जिन्होंने हमारे देश की संस्कृति और परम्परा का निर्माण किया ?
- १७—क्या हमारे देश की कला और साहित्य अन्य देशों से भिन्न है ?
- १८—इस भिन्नता का क्या कारण है ?
- १९—हमारे देश के लोग अध्यात्मवादी क्यों हैं ?

एशिया महाद्वीप का अध्ययन

- १—एशिया में कौन-कौन से देश हैं ?
- २—एशिया के किन देशों से भारत का घनिष्ठ संबंध रहा है ?
- ३—एशिया महाद्वीप का क्या क्षेत्रफल है ?
- ४—एशिया में विश्व जन-संख्या का कितना अंश निवास करता है ?
- ५—एशिया में कितने प्रकार के लोग रहते हैं ।
- ६—एशिया की प्राकृतिक दृश्यावली, जल-वायु आदि कैसा है ?
- ७—एशिया के प्राचीन निवासियों का जीवन कैसा था ?
- ८—एशिया के निवासी किन-किन देशों में गये और वे वहाँ क्यों रहने लगे ?
- ९—एशिया के निवासियों ने अपने किन साधनों का उपयोग किया है ?

१०—एशिया के किन देशों की संस्कृति भारत की संस्कृति से प्रभावित हुई है ?

११—आजकल एशिया के देशों से हमारा कैसा संबंध है ?

१२—संबंध वृद्धि के किन प्रयत्नों की आवश्यकता है ?

१३—एशिया खंड ने विश्व संस्कृति के निर्माण में क्या योग दिया है ?

एशिया के लोगों द्वारा अपनी भूमि का विकास

१—एशिया के निवासियों का रहन-सहन कैसा है ?

२—एशिया के लोग किस प्रकार के घरों में रहते हैं ?

३—एशिया में प्रसिद्ध नगरों का विकास किस प्रकार हुआ ?

४—एशिया के कौन-कौन से मुख्य नगर हैं ?

५—एशिया के नगरों का क्या स्वरूप है ?

६—क्या यह सत्य है कि एशिया में कच्चे माल की बहुतायत से उत्पत्ति होती है ?

७—क्या इन कच्चे मालों का उचित उपयोग हो रहा है ?

८—इन वस्तुओं के उपयोग की क्या व्यवस्था की जा सकती है ?

९—एशिया के लोगों के गमनागमन के क्या साधन हैं ?

१०—इन देशों के लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के कौन से साधन हमें प्राप्त हैं ?

११—क्या एशिया के देशों के साथ हमारा व्यापारिक संबंध है ?

१२—क्या एशिया में इतना अन्न उत्पन्न होता है कि सबको भोजन प्रदान किया जा सके ?

विभिन्न राष्ट्रों से सौहार्द्र-पूर्ण संबंध

१—क्या एशिया के विभिन्न राष्ट्रों को वे ही अधिकार प्राप्त हैं जो भारत को प्राप्त हैं ?

२—क्या एशिया की जनता को अपने कर्तव्यों और अधिकारों का पूर्ण रूप से ज्ञान है ?

३—अपने देश की शासन व्यवस्था सँभालने और वास्तविक दृष्टि में स्वराज्य की स्थापना में किन बातों की आवश्यकता होती है ?

४—एशिया के देशों ने इस संबंध में कितनी प्रगति की है ?

५—विभिन्न राष्ट्रों के बीच भाषा के कारण क्या कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं ?

६—विभिन्न देशों की धार्मिक भावना की भिन्नता के कारण क्या कठिनाइयाँ सामने आती हैं ?

७—एशिया के देश आपस में किन विषयों के संबंध में निर्णय कर सकते हैं ?

८—एशिया के देशों से हम क्या सीख सकते हैं ?

९—एशिया के देशों ने भारत की सहायता से किन क्षेत्र में क्या-क्या लाभ उठाया है ?

१०—वे कौन-सी बातें और समस्याएँ हैं जिनका एक देश स्वतः निर्णय कर सकता है ?

११—यूरोप के देशों ने एशिया की संस्कृति से क्या लाभ उठाया है ?

१२—एशिया में कौन-कौन से राष्ट्रों का जन्म हुआ है ?

१३—प्राचीन काल में एशिया में कौन-कौन से देश थे और उनकी प्रगति का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा था ?

विश्व का अध्ययन

१—विश्व के जन्म का इतिहास क्या है ?

२—विश्व के वर्तमान रूप का कैसे विकास हुआ ?

३—प्रारंभ में मानव जाति कहाँ आकर बसी ?

४—किस प्रकार मनुष्य ने विश्व का रूप परिवर्तित किया ?

५—मनुष्य की कला और विज्ञान में क्या अन्तर है ?

६—विश्व की पाँच महा व्याधि—अज्ञान, आवश्यकताएँ, रोग, अकर्मण्यता और मलिनता से किस प्रकार बचा जाय ?

७—विश्व के कुछ भागों में लोग दीर्घजीवी क्यों होते हैं ?

८—क्या विश्व के विभिन्न देशों की समान क्षमताएँ हैं ?

९—क्या विश्व के सभी बच्चों की शिक्षा व्यवस्था है ?

१०—क्या विश्व के देशों में सौहार्द उत्पन्न किया जा सकता है ?

११—वसुधैव कुटुम्बकता की भावना और विश्व-भाषा का निर्माण कहाँ तक व्यावहारिक है ?

१२—विश्व के महान उदार धर्म कौन-कौन हैं ?

१३—इन महान धर्मों में कहाँ तक समानता है ?

१४—इन धर्मों के सार्वभौम सिद्धान्त क्या हैं ?

१५—कौन सी बातें हैं जिनके कारण विश्व का सौहार्दपूर्ण संबंध संकट में पड़ जाता है ?

१६—मनुष्य के लिए किन स्वतंत्रताओं की आवश्यकता है ?

बारहवाँ अध्याय

कुछ बातें परीक्षा के संबंध में भी

आज का प्रगतिशील शिक्षा शास्त्री परीक्षा की परम्पराओं में विश्वास नहीं करता। कुछ लोगों का यह आरोप है कि प्रगतिशील किसी प्रकार के ठोस कार्य और उसके परीक्षण की विधि को बच्चे के स्वभाव के विरुद्ध महान अपराध समझता है। वे यह भी आरोप लगाते हैं कि प्रगतिशील शिक्षा में विश्वास रखने वाला व्यक्ति परीक्षा नाम से ही घृणा करता है और वह किसी प्रकार की परीक्षा को मान्यता नहीं प्रदान करना चाहता।

इस प्रकार की बातों में कुछ सत्यांश है परन्तु इन में अत्यधिक अत्युक्ति भी है। इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक अध्ययन की सरलता को अधिक महत्व दिया जाता है और यह प्रयत्न किया जाता है कि विद्यार्थी कार्य करते समय आनन्द का अनुभव करें। सामाजिक अध्ययन की बातें निश्चित और संकीर्ण सिद्धान्तों पर आधारित नहीं रहती हैं अतः उनकी प्रयोगावस्था सदा वर्तमान रहती है। ऐसी स्थिति में उन्हें किसी संकीर्ण पाठ्यक्रम की सीमा में बाँध कर उनकी परीक्षा की व्यवस्था करना वास्तव में अन्याय होगा। प्रयोगावस्था की परीक्षा उसी के अनुरूप हो सकती है। अपने कार्य के फलों के संबंध में परीक्षा कर हम अपनी बुराइयों को दूर कर सकते हैं और इस प्रकार हम संभवतः अपने ध्येय के निकट भी पहुँच सकें। अतः इस अध्याय में हम उन प्रकारों पर विचार करेंगे जिनकी सहायता से हम परीक्षण का कार्य संचालित कर सकें। हमें यह देखना होगा कि एक बालक अपने निश्चित ध्येय तक

पहुँचने में कितनी सफलता प्राप्त कर चुका है। इन परीक्षाओं में वे हमें बड़ी सहृदयता से कार्य करना होगा।

परीक्षा की व्यवस्था क्यों

परीक्षा की चली आती परम्परा आज जितनी लोक-अप्रिय हो गयी है उतनी वह कभी न थी। आज लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं। इस कुख्याति का कारण यह नहीं है कि पुरानी परीक्षण प्रणालियों में अब कोई उपादेयता ही नहीं रह गयी है अथवा अब उससे कोई काम नहीं लिया जा सकता। इसका प्रधान कारण यह है कि हमने उसकी उपादेयता की सीमा को खींच-खींच कर हठात् बढ़ाने का प्रयत्न किया। जहाँ उनका उपयोग नहीं हो सकता था वहाँ भी उन्हें ठूसने का यत्न किया। आज हम यह देखते हैं कि शिक्षालय में पढ़ाये जाने वाले विषय और वास्तविक जीवन में कोई संतुलन नहीं है। बालक जब उच्च माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर किसी वृत्ति की खोज में निकलता है तब उस समय उसे उन विषयों की आवश्यकता नहीं होती जो वह शिक्षालय में पढ़ता रहा है। पुस्तकीय ज्ञान का वह कार्य क्षेत्र में कोई उपयोग नहीं कर पाता। पहले तो ऐसी साधारण शिक्षा वालों के लिए कोई विशिष्ट वृत्ति की व्यवस्था नहीं और यदि भाग्य से उसे कहीं कोई स्थान मिल गया तो उसके सामने कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि उसे किसी दूकान में काम मिल गया। अब उस दूकान में काम करने के लिए उसे कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता है। उसे गणित के साधारण सिद्धान्तों को जानना चाहिये। उसे समाज की साधारण रुचि का ज्ञान होना चाहिये। जिन वस्तुओं का वह लेन-देन करता है उसके संबंध में उसे कुछ बातें मालूम होनी चाहिये। सर्वोपरि उसे इस प्रकार के व्यवहार का अनुभव होना चाहिये कि वह क्रयकर्ता को अपनी दूकान से खाली हाथ न जाने दे और उसको प्रसन्न रखे जिससे पुनः वह ग्राहक उसकी दूकान में बराबर आता रहे। इन

गुणों की परीक्षा प्रचलित परीक्षण-प्रणाली द्वारा नहीं हो सकती और न प्रचलित प्रणाली द्वारा इन गुणों को नापा जा सकता है।

आधुनिक युग में वृत्ति और व्यवसाय के अनुरूप जिन गुणों की आवश्यकता होती है उनके कारण परीक्षा की स्थिति में भी अन्तर उत्पन्न हो गया है और हमें आज भी उसके संबंध में पुनः विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। आज हमें परीक्षा को वह रूप प्रदान करना है जिसकी सहायता से हम उन बातों की परीक्षा कर सकें जिनकी वास्तव में हम परीक्षा करना चाहते हैं। आज हम इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि परीक्षा के संबंध में निश्चय करने के पूर्व हमें यह निश्चित कर लेना है कि हम जिन पाठ्यक्रमों का अनुसरण कर रहे हैं उनका क्या ध्येय है और उनके द्वारा हम किन फलों की आशा करते हैं? इसके बाद हमें यह निश्चय करना होगा कि हम किस सीमा तक उन फलों को प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार परीक्षा, परीक्षार्थी और पाठ्यक्रम दोनों के महत्व को बढ़ाती है और दोनों के स्तर की वृद्धि होती है।

इस प्रकार की धारणा, अथवा परीक्षा के संबंध में इस प्रकार की विचारधारा हमें वह गुर प्रदान करती है जिसके आधार पर हमें परीक्षा का संघटन करना चाहिये। विशेषतः सामाजिक अध्ययन के लिए तो इस प्रकार की परीक्षाओं की बड़ी आवश्यकता है। यह बात हमें परीक्षा के महत्व के संबंध में भी निर्देश करती है। हमने सामाजिक अध्ययन के ध्येय के संबंध में पर्याप्त रूप से विचार किया है। सामाजिक अध्ययन द्वारा हम किस फल की आशा करते हैं इस संबंध में भी हमने विचार विनिमय किया। अतः अब हमें परीक्षा की ऐसी विधि का अनुसरण करना होगा जिसकी सहायता से हमें वे दृष्टिकोण, वे विचारधाराएँ तथा वे ज्ञान प्राप्त हो सकें जिनकी सहायता से हम वे फल प्राप्त कर सकें जिनकी हम अपेक्षा करते हैं। यदि परीक्षाओं का कार्य ठीक से संचालित किया जाय तो उसकी सहायता से हमें पाठ्यक्रम की दुर्बलताओं

का भी पता लग जायगा। सामाजिक अध्ययन के शिक्षार्थी की परीक्षा और सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम की परीक्षा दोनों साथ-साथ इस प्रकार चलनी चाहिये कि हम अपने ध्येय के समीप पहुँचते जायँ और इन परीक्षाओं का यह परिणाम हो कि हमारी त्रुटियाँ दूर होती जायँ तथा हम अपने ध्येय की प्राप्ति के मार्ग में पड़ने वाली सब बाधाओं को दूर कर सकें।

परीक्षा का विषय क्या है

‘सामाजिक अध्ययन की शिक्षा’ के प्रथम अध्याय में ही हमने सामाजिक अध्ययन के ध्येय और कार्यों के संबंध में विचार किया था। उन बातों का यदि हमें स्मरण हो तो हमें यह निश्चय करने में कोई कठिनाई न होगी कि हमारी परीक्षा का क्या विषय होगा। संभव है हमारे कार्य और ध्येय के संबंध में कुछ मतभिन्नता हो परन्तु कार्य प्रारम्भ करने में हमें कोई कठिनाई न होगी। हमने सामाजिक अध्ययन के संबंध में विचार करते हुए यह कहा था कि सामाजिक अध्ययन का ध्येय यह है कि वह इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र तथा पाठ्यक्रम के अन्य विषयों की आवश्यक वस्तुओं का इस प्रकार समन्वय और एकीकरण करे कि जीवन के लिए एक साधारण ज्ञान-पीठिका तैयार हो जाय और इस ज्ञान-पीठिका द्वारा विद्यार्थी जीवन की विभिन्न बातों का अन्योन्याश्रित संबंध समझ सके। इस ज्ञान के द्वारा उसे यह भी अनुभव हो जाय कि उसका भूत और भविष्य से क्या संबंध है। सामाजिक अध्ययन, उन्हें भूतकाल के महापुरुषों की सफलता के अध्ययन द्वारा वह शक्ति भी प्रदान करता है जिसकी सहायता से वे जीवन संघर्ष में सफल हो सकते हैं। सामाजिक अध्ययन भविष्य के निर्माण में भी योग देने का उन्हें उत्साह प्रदान करता है।

सामाजिक अध्ययन की विशेषता के संबंध में जब हमने विचार किया था तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि विशेष प्रकार की शिक्षा

व्यवस्था करने वाले अध्यापक को भी विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना चाहिये। इस एकीकरण से विशेष प्रकार की शिक्षा के लिए एक दृढ़ आधार प्राप्त हो सकेगा। इन आधारों की सहायता से वे विभिन्न प्रकार के कला-कौशलों का भी अध्ययन कर सकेंगे। यह के वातावरण में परिवर्तन हो जाने के कारण हमें बालकों को उन चेतनाओं और भावनाओं की शिक्षा की भी व्यवस्था करनी होगी जिनकी सहायता से वे सामाजिक चेतना, उत्तरदायित्व की भावना, मानवीय संबंध के तत्वों की मुख्य बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। सामाजिक अध्ययन की सहायता से उन्हें हम सहयोग पूर्वक कार्य करने, सक्रिय रहने, समूह में रहकर कार्य करने, आत्मिक विकास प्राप्त करने, की शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। सामाजिक अध्ययन की शिक्षा द्वारा हम एक व्यक्ति में ऐसी भावना उत्पन्न करने की कामना करते हैं जिनकी सहायता से वह वर्तमान समय के अनुरूप ज्ञान, विज्ञान और जीवन के संबंध में उपयुक्त दृष्टिकोण उत्पन्न कर सके। साथ ही वह इतिहास की सामग्री तथा मनुष्य के अनुभवों को एक क्रमिक विकास के रूप में देखे।

पिछले अध्यायों में सामाजिक अध्ययन के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए हमने ध्येय के रूप में उन बातों को भी सामने रखा जिनकी सहायता से मनुष्य के सहज गुण, आत्म-निर्भरता, मस्तिष्क की उदारता, साहसिक दृष्टिकोण, वीरता के साथ समस्याओं का सामना करने की क्षमता, रचनात्मक क्रियाशीलता द्वारा आनन्द की प्राप्ति, वसुधैव कुटुम्बकता की भावना, मनुष्य जीवन के ध्येय और दर्शन का विकास हो सके।

सामाजिक अध्ययन सदा इस बात को भी ध्यान में रखता है कि वह मनुष्य को जीवन का एक ऐसा स्तर और अध्ययन का एक ऐसा अनुभव प्रदान कर दे कि वह जीवन में अध्ययन के प्रति उदासीन न हो।

हमने पिछली बातों का संक्षेप में इसलिए सिंहावलोकन किया है कि हम पुनः अपने ध्येय और अपने निश्चयों को ताजा कर लें। यदि हम अपनी बातों को संक्षेप में कहना चाहें और अपने ध्येयों के स्वरूप

निर्मित करना चाहें तो हम निम्नलिखित वर्गों में अपने ध्येयों का वर्गीकरण कर सकते हैं :—

(अ) जीवन यापन के लिए कुछ आवश्यक तथा विशेष बातों की सूचना प्रदान करना ।

(आ) बच्चों को वातावरण और जीवन में क्या संबंध है यह बतलाने के लिए आवश्यक सामग्री प्रदान करना ।

(इ) आधुनिक युग के नागरिक के लिए किन विचारों और दृष्टिकोणों की आवश्यकता होती है इसकी शिक्षा प्रदान करना ।

(ई) ऐसे मानदण्डों की स्थापना करना जिनकी सहायता से चरित्र के उन गुणों का विकास हो सके जो लोकतंत्रवादी जीवन व्यतीत करने में सहायक हों और मनुष्य को सुख प्रदान कर सकें ।

केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से यह वर्गीकरण किया गया है । व्यावहारिक दृष्टि से सामाजिक अध्ययन में इस प्रकार का कोई वर्गीकरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि सामाजिक अध्ययन का अनुभव एकांगी नहीं होता । प्रत्येक वर्ग एक दूसरे से ग्रथित रहते हैं और उनका सामूहिक रूप ही हमारे सामने आता है । हमने जो वर्गीकरण किया है वह केवल एक ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस वर्गीकरण द्वारा हम अपनी सफलता को नाप जोख करने की कला का विकास कर सकेंगे ।

अतः वर्गीकरण के (अ) अंश के अंतर्गत हम अपने से तथा परीक्षक से निम्नलिखित बातें जानना चाहेंगे :—

क्या बच्चे अपने आस-पास के लोगों के जीवन और जीवनयापन के संबंध में कुछ जानते हैं ?

क्या उन्हें अपने देश की आधुनिक संस्थाओं के कार्यों और कर्तव्यों का कुछ ज्ञान है ?

क्या विद्यार्थी को आधुनिक सभ्यता की गतिविधि का ज्ञान है ?

क्या युवकों को अपने क्षेत्र तथा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के जीवन और रहन-सहन के विषय में सूचनाएँ प्राप्त हैं ?

क्या विद्यार्थियों को विश्व की भौगोलिक स्थिति, जलवायु और प्राकृतिक साधनों का ज्ञान है ?

क्या विद्यार्थियों को आधुनिक युग की महत्वपूर्ण समस्याओं का कुछ अनुभव और ज्ञान है ?

क्या विद्यार्थी को भारतीय संविधान, नियम, परम्परा और धार्मिक भावनाओं का ज्ञान है ?

क्या विद्यार्थी यह जानता है कि लोकतंत्रवादी सरकार के अन्तर्गत किस प्रकार कर्तव्य और अधिकारों का उपयोग किया जाता है ?

वर्गीकरण के (आ) अंश के अंतर्गत हमें निम्नलिखित बातें जानने की आवश्यकता होगी :—

क्या विद्यार्थियों को अपने मुहल्ले, देश और विश्व का अन्योन्याश्रित संबंध ज्ञात है ?

क्या उन्हें भूतकाल और वर्तमानकाल की सभ्यता का अन्तर और साम्य ज्ञात है ?

क्या उन्हें कृषि और उद्योगों के पारस्परिक संबंध का अनुभव है ?

क्या उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन और विश्व के सामाजिक जीवन के प्रयत्नों के संबंध में कुछ बातें ज्ञात हैं ?

क्या उन्हें यह ज्ञात है कि आधुनिक विश्व किन आवश्यकताओं और किन प्रयत्नों के लिए संघर्ष कर रहा है ?

क्या उन्हें यह ज्ञात है कि मानव जीवन निरन्तर गतिशील है और वे इस गतिशीलता के केवल एक अंश मात्र हैं ?

वर्गीकरण के (इ) अंश के लिए हमें निम्नलिखित बातें समझनी होंगी :—

क्या ज्ञानार्जन द्वारा उनके विचारों और भावनाओं के क्षितिज का विस्तार हो रहा है ?

क्या विश्वनिर्माण में वे अपने किये गये कार्यों का महत्व समझते हैं ?

क्या उन्हें यह ज्ञात है कि समाज में मनुष्य को तब स्वतंत्रताएँ प्राप्त होती हैं जब समाज का निर्माण करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति प्रभाव-कर रीति से कार्य करता है ?

क्या वे स्पष्ट तथा निर्द्वन्द्व रूप से चिंतन करने की क्षमता उत्पन्न कर चुके हैं ?

क्या वे ज्ञान को जीवन का चरम लक्ष्य न समझकर केवल एक संबंधित अंश मात्र समझते हैं ?

क्या उन्हें विश्व की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा और प्रगति का कुछ परिचय है ?

वर्गीकरण के (ई) अंश के अन्तर्गत हमें निम्नलिखित बातें पूछने की आवश्यकता होगी :—

क्या भारतीय युवक सहयोगपूर्वक जीवन व्यतीत करने की कला का परिचय प्राप्त कर रहे हैं ?

क्या उन्हें मानवीय संबंधों के विषय में आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया है ?

क्या उन्हें सच्चाई, सहिष्णुता, अक्रोध, दूसरे के प्रति सौहार्द, तथा स्नेह की भावना का ज्ञान है ?

क्या उनमें सामाजिक उत्तरदायित्व समझने की शक्ति का क्रमशः विकास हो रहा है ?

क्या जीवन की अनेक समस्याओं के समाधान में वे आत्म-निर्भर हैं ?

क्या उनका दृष्टिकोण साहसिक और मनोभाव उदार हो रहा है ?

क्या वे सामाजिक प्रगति के साथ युगधर्म को समझते हैं ?

क्या उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता, उदारता और दूसरों के धर्मों के प्रति आदर की भावना उत्पन्न कर ली है ?

सामाजिक अध्ययन का अभ्यापक जब अपने पाठ्यक्रम का निर्णय कर लेगा तब उसके लिए इस प्रकार के प्रश्नों की तालिका बनाना कठिन

न होगा। उपर्युक्त तालिका पूर्णतः अपूर्ण है। हम क्या प्रश्न पूछ सकते हैं इस संबंध में केवल सुझाव मात्र प्रदान किये गये हैं। लेकिन इस प्रकार की तालिका की सहायता से अध्यापक परीक्षण का कार्य ठीक से कर सकेगा और परिणामों पर भी नियंत्रण रखा जा सकता है। परीक्षण तथा जाँच-पड़ताल के लिए भी उसे इन तालिकाओं और वर्गीकरणों से सुविधा होगी। जहाँ तक जाँच-पड़ताल का संबंध है उसे निम्नलिखित कुछ और बातों का पता लगाना होगा :—

क्या पाठ्यक्रम शिक्षा और विचारशक्ति के लिए एक पूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है ?

क्या पाठों का आयोजन इस रीति से किया गया है कि प्रत्येक पाठ की समाप्ति के बाद बालक यह अनुभव करे कि उसने कुछ सीख लिया है और वह अपने काम में सफल हो रहा है ?

क्या उसे यह अनुभव होता है कि जो कुछ उसने सीखा है वह महत्व की बात है और उसका जीवन में महत्व है ?

क्या धनी और दरिद्र दोनों को शिक्षा के पाठ्यक्रम से समान सुविधा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त होता है ?

क्या प्रत्येक बालक को इस प्रकार शिक्षा दी जा रही है कि वह जो कुछ भी पढ़ता लिखता है उसे पूर्ण रूप से ग्रहण करता चले तथा उसकी सहायता से अपने वातावरण से संबंध स्थापित कर आधुनिक युग की समस्याओं के समाधान का यत्न कर सके ?

परीक्षा का रूप क्या हो

यदि हमें सामाजिक अध्ययन के परीक्षण की व्यवस्था करनी है तो यह स्पष्ट है कि परम्परा से चली आती प्रश्नोत्तर-प्रणाली से हमारा काम नहीं चलेगा, क्योंकि कक्षा में जो कुछ उसने सीखा है अथवा समझा है उसकी वह शब्दशः पुनरावृत्ति नहीं कर सकता। जो कुछ भी उसने समझा है उसका कुछ ही अंश वह लिख सकता है। सामाजिक अध्ययन के लिए

आयोजित किसी भी परीक्षा प्रणाली को केवल इस बात की परीक्षा नहीं लेनी चाहिये कि विद्यार्थी क्या जानता है ? उसे यह भी पता लगाना चाहिये कि विद्यार्थी का किस रूप में विकास हो रहा है और वह क्या हो रहा है ? परीक्षा को उनकी चेतना और समझ की परीक्षा के साथ ही इस बात को भी जाँचने का यत्न करना चाहिये कि विद्यार्थी की तार्किक शक्ति और समस्याओं के समाधान की शक्ति का कितना विकास हुआ है ? यदि सामूहिक प्रगति की परीक्षा के स्थान पर हम अपने परीक्षा की सीमा अथवा क्षेत्र को संकीर्ण करते हैं तो इसका यह अर्थ होगा कि हम पाठ्यक्रम की सफलता के लिए ही एक खतरा उत्पन्न कर रहे हैं । क्योंकि किसी विषय के पाठ्यक्रम का निर्धारण परीक्षण कला को भी ध्यान में रखकर किया जाता है । दूसरी बात यह है कि परीक्षा का रूप ऐसा होना चाहिये कि वह बालक के ज्ञान का उपयोग तो करे ही साथ ही उसे कुछ सफलता प्राप्ति की भावना का भी अनुभव कराये । परीक्षा का रूप आतंकवादी और मस्तिष्क में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाला नहीं होना चाहिये । आज की परीक्षाएँ शान्ति प्रदायिनी नहीं होतीं । उनके नाममात्र से ही ज्वर हो आता है । परीक्षा की भावना के साथ जहाँ असफलता की विभीषिका खड़ी हो जाय वहाँ उसका उचित रीति से उपयोग नहीं हो सकता । पाठ अथवा पाठ्यक्रम की भाँति ही परीक्षा का रूप भी आनन्द-प्रद और सुखद होना चाहिये ।

क्या परीक्षा आनन्दप्रद और सुखद हो सकती है ? इस प्रश्न का तो केवल यही उत्तर होगा कि वर्तमान स्थिति में और वर्तमान परीक्षा नियमों का पालन करते हुए तो वह कभी भी आनन्दप्रद और सुखद नहीं हो सकती ! परन्तु यदि अपने ध्येय को ध्यान में रखते हुए हर परीक्षाओं का हम पुनर्संघटन करें तो हमारी कामना पूर्ण हो सकती है । परीक्षा को सुखद तथा आनन्दप्रद बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा रहे हैं । संभव है इनके उपयोग से परीक्षा की प्रणाली में अन्तर उत्पन्न हो जाय और वह वर्तमान समय के लिए उपयोगी सिद्ध हो :—

अशुद्धियाँ रेखांकित करने की प्रणाली

इस परीक्षण विधि के अन्तर्गत बहुत से तथ्यों और भावनाओं को अशुद्ध रूप में बालकों के सामने रखा जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि वे उन तथ्यों और विचारधाराओं को शुद्ध करें। उदाहरणार्थ :—

(अ) हिमालय पहाड़ पर इसलिए सर्द होती है क्योंकि वहाँ बहुत सी कंदरायें हैं ?

(आ) पुलिस का थानेदार कुछ दिनों बाद जज हो जाता है ।

(इ) बिजली के अभाव में रेडियो नहीं चल सकता ।

(ई) भारत के लोग इसलिए काले हैं क्योंकि वे अन्न बहुत खाते हैं ।

विद्यार्थी इन वाक्यों में आयी हुई अशुद्धियों को जिस तत्परता से शुद्ध करता है उसकी सहायता से हमें इस बात का पता लग जायगा कि उसका साधारण ज्ञान और तार्किक शक्ति का कितना विकास हुआ है । यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रारंभिक स्थिति में प्रत्येक वाक्य में कुछ न कुछ अशुद्धियाँ अवश्य रहनी चाहिये । शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार के वाक्यों को साथ रखने में वे घपले में पड़ जायेंगे । जब उनकी बुद्धि का कुछ विकास हो जाय तब दोनों प्रकार के वाक्य साथ रखे जा सकते हैं ।

समस्यात्मक स्थिति प्रणाली

परीक्षा की इस विधि के अन्तर्गत बालकों को एक काल्पनिक समस्या दे दी जाती है और उनसे यह पूछा जाता है कि वे उस समस्या अथवा कठिनाई को दूर करने के लिए क्या सुझाव देंगे । जहाँ तक संभव हो बालकों को ऐसी ही समस्याएँ देनी चाहिये जिनके संबंध में वे अपने पाठ्यक्रम में पढ़ चुके हों । उदाहरणार्थ :—

काशी में ग्रहण का मेला हुआ । दूकानों पर अनेक प्रकार की

खाने की वस्तुएँ खुली स्थिति में बिकती रहीं, बाहर से अनेक लोग आये हैं। नगर में हैजे का प्रकोप हो गया है। इसका क्या करण हो सकता है और उसे आप किन प्रयत्नों से दूर कर सकते हैं? भविष्य के लिए आप क्या व्यवस्था करेंगे कि पुनः ऐसी कठिनाइयाँ न उत्पन्न हों?

काल्पनिक योजना प्रणाली

बालकों को भारतवर्ष का एक सादा मानचित्र दे दिया जाय और उसकी भौगोलिक तथा सामाजिक स्थिति, प्राकृतिक साधनों के संबंध में सभ विवरण, बतला दिये जायँ। इसके बाद उनसे मानचित्र में वे वस्तुएँ अंकित करने के लिए कहा जाय जिनके संबंध में वे विचार विनिमय और अध्ययन कर चुके हों। उदाहरणार्थ :—

(अ) भारत अपने औद्योगिक कार्यों का विकास करना चाहता है। उसके लिए सर्वोत्तम स्थान कहाँ है? किस स्थान पर मिलें और कारखाने बनाये जा सकते हैं? अपने सुझाव देने का कारण बतलाइये।

(आ) भारत अपनी खाद्य स्थिति कैसे सुदृढ़ कर सकता है? किन क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने से भोजन की समस्या हल हो सकती है?

(इ) भारत के यातायात के साधनों का आप किस प्रकार विकास करेंगे?

(ई) उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच क्या स्थल मार्ग द्वारा गमना-गमन की व्यवस्था हो सकती है? उत्तरभारत और दक्षिण-भारत का संबंध स्थापित करने के लिए एक ऐसी सड़क बनाने की योजना बतलाइये जो सबसे सरल और सुविधाजनक हो।

‘क्यों और कैसे’ प्रणाली

जीवन के साधारण अनुभवों के संबंध में बालकों से कुछ बातें पूछी जाती हैं। इन बातों के कई कारण हो सकते हैं वे सब दिये जाते

हैं और यह देखा जाता है कि बालक उनमें से कितनी बातों को ठीक-ठीक बतला पाता है। उदाहरणार्थ :—

मनुष्य इसलिए स्वस्थ रहता है—क्योंकि वह शुद्ध वायु का सेवन करता है, शुद्ध जल पीता है, संयमित भोजन करता है, समय पर काम करता है, समय पर सोता है, समय पर जागता है। इस प्रकार के प्रश्नों के लिए अनेक प्रकार के उत्तर दिये जा सकते हैं और इन उत्तरों की कोई सीमा नहीं हो सकती। अगर इन प्रश्नों पर हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करें तो अनेक वैज्ञानिक उत्तर भी हो सकते हैं। इसी प्रकार हम अनेक विषयों के संबंध में प्रश्न पूछ सकते हैं।

सामाजिक समस्या प्रणाली

सामाजिक समस्या प्रणाली के अन्तर्गत समाज की एक समस्या की कल्पना कर ली जाती है और उसके अनेक उत्तर प्रदान कर दिये जाते हैं। विद्यार्थी का यह कर्तव्य होता है कि वह जिस उत्तर को ठीक समझता है उस पर सहमति का चिह्न बना देता है और अन्य को काट देता है। इस प्रकार मान लीजिए बालकों के सम्मुख खाद्य समस्या का प्रश्न रखा जाय और यह पूछा जाय कि इस समस्या को सुलझाने के क्या प्रयत्न उपयुक्त हो सकते हैं :—

१—क्या समस्या के समाधान के लिए बाहर से अन्न मंगाया जाय ?

२—क्या बढ़िया हलों का उपयोग किया जाय ?

३—क्या आधुनिक यंत्रों का उपयोग किया जाय ?

४—क्या खेतों की उपज बढ़ाने के लिए उनमें अधिक खाद डाली जाय ?

५—क्या परती भूमि में खेती की जाय ?

६—क्या सब उद्यानों को खेत में परिवर्तित कर दिया जाय ?

७—क्या लोगों को कम से कम भोजन दिया जाय ?

इसी प्रकार अनेक प्रकार की समस्याओं की कल्पना की जा सकती

है ? उदाहरण के लिए हम विज्ञान द्वारा संहारक प्रवृत्ति की समस्या ले सकते हैं और उस पर विचार कर सकते हैं। मान लीजिए हमारी समस्या यह है कि आज का वैज्ञानिक अनेक प्रकार के संहारक अस्त्र बना रहा है। इन संहारक अस्त्रों से रक्षा का क्या उपाय किया जाय ?

(अ) क्या वैज्ञानिक अनुसंधान पर नियंत्रण रखा जाय ?

(आ) क्या वैज्ञानिक अनुसंधान की बातों को गोप्य न रखा जाय ?

(इ) क्या सब वैज्ञानिकों को मार डाला जाय ?

(ई) क्या वैज्ञानिकों को रचनात्मक कार्य करने के लिए ही वैज्ञानिक अनुसंधान का अवसर दिया जाय ?

(उ) क्या ऐसे गुप्तचरों की नियुक्ति कर दी जाय जो वैज्ञानिक पर कड़ी दृष्टि रखें।

(ऊ) क्या ऐसे विशेषज्ञों की समितियाँ बना दी जायँ जो वैज्ञानिक आविष्कारों पर नियन्त्रण रखें ?

इस प्रकार के उत्तरों से अथवा इस प्रकार की परीक्षा के फलों से यह बात स्पष्ट न हो सकेगी कि विद्यार्थी ठोक प्रगति कर रहा है या नहीं परन्तु इस प्रकार की परीक्षा से यह तो स्पष्ट हो ही जायगा कि विद्यार्थी जीवन संबंध रखने वाली साधारण समस्याओं के संबंध में स्पष्ट रूप से सोच सकता है या नहीं ? इस प्रकार के कुछ प्रश्नों द्वारा ही हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि विद्यार्थी समाज को ध्यान में रख कर विचार करता है या केवल व्यक्तिगत रूप से विचार करता है। हमें यह भी ज्ञात हो जायगा कि समस्याओं के संबंध में विचार करने के लिए उस मस्तिष्क में कुछ मान दण्डों का निर्माण हो रहा है या वह अव्यवस्थित रूप में ही विचार करता है। हाँ, समस्याओं के संबंध में विचार करते समय हमें विद्यार्थी के बुद्धि के अनुरूप ही प्रश्नों और भाषा का उपयोग करना चाहिये। यदि विद्यार्थी प्रश्नों के दिये गये उत्तरों से सहमत नहीं है तो उसे अपना उत्तर देने का अवसर दिया जाना चाहिये।

उपर्युक्त उदाहरणों से हमें यह स्पष्ट हो जायगा कि हम एक र

१, धारणा और विचारशक्ति का किस प्रकार उपयोग कर सकते समाजिक अध्ययन का कार्य संचालन करने वाले अध्यापक को परीक्षा की नयी प्रणाली का निर्माण करने वाला होना चाहिये।
 २, पाठ्यक्रम के अनुरूप परीक्षा के रूप का भी निश्चय कर लेना।
 ३, जहाँ एक बार प्राचीन शिक्षा प्रणाली के स्थान पर नवीन प्रणाली का उपयोग हुआ और विद्यार्थियों में सहयोगी रुचि को न दिया गया वहाँ पुनः प्राचीन शिक्षा प्रणाली का भी उपयोग हो सकता है। परन्तु विद्यार्थियों के हृदय में हमें यह बात बैठानी। परीक्षा की व्यवस्था हम केवल इस लिए करते हैं कि उन्हें प्राप्त हो और वे अपनी प्रगति का अनुमान लगा सकें। परीक्षा योग उनकी मूर्खता के प्रकाशन के लिए कदापि न होना चाहिये।
 शिक्षा के बाद अध्यापक को बालक की प्रगति पर संतोष प्रकट चाहिये और उसे उत्साहित करने के लिए कुछ वाक्यों का उपयोग चाहिये। उन बालकों को बड़ी सहृदयता के साथ यह बतलाना कि परीक्षा के समय किन दुर्बलताओं का पता चला है और इस प्रकार दूर किया जा सकता है। जब कभी बालक परीक्षा दें हैं अपने से ही स्पर्धा करने की शिक्षा दी जानी चाहिये। एक को कार्य करने के समय जब अपनी स्थिति का ज्ञान होता है, प्रगति का उसे अनुमान करने का अवसर मिलता है, तब उसे प्रानन्द प्राप्त होता है।

